प्रथम हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन

"यथा स्त्रीणां तथा वाचां साधुत्वे दुर्जनो जनः ।"

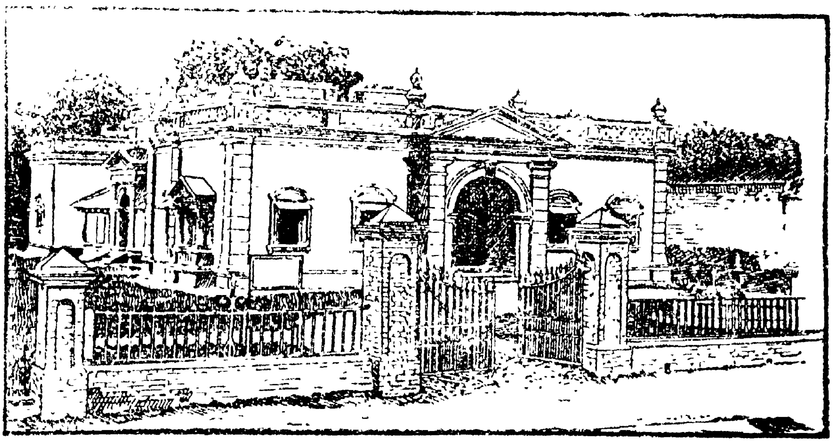
भवभूति ।

प्रथम हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन

काशी ।

कार्यविवरण—दूसरा भाग ।

[सम्मेलन में उपस्थित लेखों और कविताओं का संग्रह ।]



सम्मेलन की स्वागतकारिणी समिति द्वारा प्रकाशित ।

१९१०

इंडियन प्रेस, प्रयाग में मुद्रित ।

PRINTED BY PANCHKORY MITTER AT THE INDIAN PRESS, ALLAHABAD.

सूचीपत्र।

——:०:——

निवेदन ।

सकलदेहभृताम्मतिरूपिणीम्   निखिललोकसमुन्नतिसाधिनीम् ।
सुजनमानसहंसनिवासिनीम्   अतितराम्प्रणमामि सरस्वतीम् ॥

कवीन्द्र ।

हिन्दी के इतिहास में यह पहिली बात है कि उसके प्रेमियों का एक सम्मेलन हो जिसमें दूर दूर से आए हुए हिन्दी के प्रेमी एक दूसरे से मिलने और परस्पर परिचित होने का आनन्द प्राप्त करें और साथ ही अपनी मातृभाषा की उन्नति के उपायों पर विचार करें। यह सम्मेलन हिन्दी-साहित्य-सम्बन्धी था। अतएव यह आवश्यक और उचित ही था कि हिन्दी के विद्वान् उसके साहित्य से सम्बन्ध रखनेवाले अनेक विषयों पर अपने सारगर्भित लेख उपस्थित करते। इस सम्मेलन के जन्मदाताओं ने अपना आदर्श युरोप की इण्टरनैशनल कांग्रेस आफ ओरियण्टलिस्ट्स (International Congress of Orientalists = पुरातत्त्वज्ञों का सार्वदैशिक परिषद्) रक्खा था और उसी के अनुरूप वे इस हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन को चलाना चाहते हैं, परन्तु अभी तो इसका पहिला ही अधिवेशन हुआ है, इस लिये यह नहीं कहा जा सकता कि उन उद्देश्यों और मनोरथों में कहाँ तक सफलता प्राप्त होगी। भविष्य के गर्भ में क्या है इसे मानवी शक्ति से कौन जान सकता है, परन्तु इस स्थान पर इस उद्देश्य का निर्देश कर देना इस लिये आवश्यक है कि जिसमें इस हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के नियन्ता अपनी कार्य-प्रणाली में उसे कहीं भूल न जाँय। युरोपीय पुरातत्त्वज्ञों के सार्वदैशिक परिषद् में बड़े बड़े गम्भीर विषयों पर विचार किया जाता है और प्रत्येक विद्वान् की यह इच्छा रहती है कि वह अपने आविष्कारों और सिद्धान्तों को सर्वसाधारण के सम्मुख प्रकाशित करने के पहिले इस परिषद् के अधिवेशन में उपस्थित करे। इससे परिषद् और पुरातत्त्वज्ञ दोनों के कार्य को बहुत कुछ गौरव प्राप्त हो जाता है और यही कारण है कि इस परिषद् के निश्चित सिद्धान्तों पर बड़े सम्मान की दृष्टि से ध्यान दिया जाता है तथा जहाँ तक सम्भव होता है प्रत्येक देश में उनके अनुसार कार्य करने का उद्योग किया जाता है। हमारे हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का तो अभी बीज बोया गया है। ईश्वर करे आगे चलकर इस वृक्ष से वाञ्छित फल उत्पन्न हों।

अपने उद्देश्य का ध्यान रख कर हमारे सम्मेलन की स्वागत-कारिणी समिति ने हिन्दी के अनेक विद्वानों से अनेक विषयों पर लेख लिखने की प्रार्थना की। यह बड़े आनन्द की बात है कि इनमें से अनेक महानुभावों ने समिति की प्रार्थना को स्वीकार भी किया। परन्तु आरम्भ की अवस्था होने के कारण सब लेख पढ़े न जा सके और न उनमें वर्णित विषयों पर विचार ही हो सका। आशा है कि सम्मेलन के आगामी अधिवेशनों में इसका उपयुक्त प्रबन्ध किया जायगा और कम से कम एक दिन का समय साहित्य-सम्बन्धी विषयों पर विचार करने के लिये अलग नियत किया जायगा।

स्वागत-कारिणी समिति इस वर्ष इसका उपयुक्त प्रबन्ध न कर सकने के कारण अपने को दोषी समझती है और यदि पूर्णतया नहीं तो किञ्चित् अंश में ही उसके मार्जन का उसने यही उपाय देखा कि जो लेख आये हैं वे जहाँ तक शीघ्र हो सके छाप कर प्रकाशित कर दिए जाँय जिसमें हिन्दी के विद्वानों और प्रेमियों को उनके पढ़ने और मनन करने का अवसर प्राप्त हो। यदि सम्मेलन के कार्य-विवरण के साथ इसके छापने का प्रबन्ध किया जाता तो इनमें विशेष विलम्ब हो जाने की आशंका थी। इसलिये यह संग्रह कार्यविवरण का दूसरा भाग मान कर प्रकाशित किया जाता है। पहिले भाग में १०, ११ और १२ अक्तूबर को जो कार्य हुआ है और जो प्रस्ताव स्वीकृत हुए हैं उनका पूरा वर्णन रहेगा।

इस संग्रह में २२ लेखों का समावेश है जिनमें से पाँच पद्यात्मक और शेष गद्यात्मक हैं। इन सब लेखों और उनके लेखकों की सूची पर ध्यान देने से यह स्पष्ट विदित होगा कि जिन जिन विद्वानों ने जिन जिन विषयों पर लेख लिखने की कृपा की है, उनमें अधिकांश ऐसे हैं जिनसे बढ़ कर उन विषयों के ज्ञाता हिन्दी-संसार में दूसरे कठिनता से मिलेंगे। पण्डित चन्द्रशेखरधर मिश्र रचित "निवेदन" पढ़ कर हिन्दी का कौन ऐसा प्रेमी है जो प्रसन्न न होगा और हिन्दी के एक प्राचीन सेवक का पुनः कार्य्यक्षेत्र में स्वागत न करेगा। पण्डित अयोध्यासिंह उपाध्याय की कविता को पढ़ कर किस हिन्दी-प्रेमी का हृदय आनन्द से परिपूर्ण न होगा। पण्डित श्रीधर पाठक के लेख में खड़ी बोली की कविता की आवश्यकता और उपयोगिता के कारणों पर विचार करने के साथ ही उपाध्यायजी की सुन्दर मनोहर कविता को पढ़ कर हिन्दी-प्रेमी-मात्र को उसकी भविष्य सफलता के स्वीकार करने में संदेह का स्थान बाक़ी न रह जायगा।

इसी प्रकार गद्य भाग में वर्तमान नागरी लिपि की उत्पत्ति के विषय में पण्डित गौरीशङ्कर हीराचन्द ओझा से बढ़कर और कौन लिख सकता है। इस समय जब कि नागरी लिपि को राष्ट्रीय आसन पर बैठाने की चारों ओर चेष्टा हो रही है एक ऐसे लेख की नितान्त आवश्यकता थी। क्या ही अच्छा होता यदि अन्य प्रचलित लिपियों के विषय में भी कोई लेख लिखा जाता और उनका स्पष्ट सम्बन्ध नागरी लिपि से दिखाया जाता तथा प्रत्येक के इतिहास पर पूरा पूरा विचार किया जाता। निस्संदेह पण्डित केशवदेव-शास्त्री का लेख इस अभाव की बहुत कुछ पूर्ति करता है और अपने ढंग का एक अमूल्य प्रबन्ध है जिससे बहुत कुछ ऐतिहासिक ज्ञान होता है पर विवादग्रस्त विषय का यह वर्तमान रूप में निर्णायक नहीं हो सकता। आशा है, मेरी इच्छा की पूर्ति अगले सम्मेलन में हो जायगी। खड़ी बोली की कविता के विषय पर अनेक वर्षों से आन्दोलन हो रहा है और धीरे धीरे लोग इसकी उपयोगिता और आवश्यकता को स्वीकार करते जाते हैं। यह गौरव पण्डित श्रीधर पाठक आदि दो चार चुने हुए विद्वानों को ही प्राप्त है कि उन्होंने इस प्रकार की कविता को अनेक गुणों से अलंकृत किया है। इस अवस्था में यह उपयुक्त ही था कि पाठकजी इस विषय पर विचार कर अपनी सम्मति को प्रकट करते। आशा है पाठकजी के विचारों और सिद्धान्तों पर हिन्दी के कविगण ध्यान देंगे और हिन्दी-साहित्य के इस अभाव की पूर्ति का उद्योग करेंगे। महामहोपाध्याय पण्डित

सुधाकर द्विवेदी ने अपने लेख में अनेक बातें ऐसी लिखी हैं जो नई और विलक्षण हैं। हिन्दी के उत्पत्ति के विषय में उनके सिद्धान्त यद्यपि अन्य विद्वानों से विपरीत हैं तथापि हिन्दी के लिये यह बड़े सौभाग्य की बात है कि एक संस्कृत के विद्वान् का और विशेष कर काशी मण्डली के एक प्रकाशमान् नक्षत्र का, हिन्दी से इतना अगाध प्रेम हो कि वह उसके काव्य के विषय में कहे कि 'संस्कृत काव्य से हिन्दी-काव्य में अधिक आनन्द मिलता है" जब कि अन्य पण्डितगण उसे "भाखा, भाखा" कह कर घृणा की दृष्टि से देखने में ही अपना महत्त्व समझते हैं और उसके प्रचार से संस्कृत की हानि समझते हैं। द्विवेदीजी के विचारों पर, आशा है हिन्दी विद्वन्मण्डली में उचित विचार किया जायगा। द्विवेदीजी के लेख को मिश्रबन्धुओं के लेख के साथ मिला कर पढ़ने से निस्सन्देह बहुत कुछ सामग्री हिन्दी-साहित्य के विषय पर विचार करने को मिल जायगी। द्विवेदीजी ने हिन्दी-भाषा और साहित्य के सम्बन्ध में अपने विचारों को विस्तारपूर्वक वर्णन किया है और मिश्रबन्धुओं ने उसके साहित्य के इतिहास का संक्षेप में उल्लेख किया है। कदाचित् यह कहना अनुचित न होगा कि यह इतिहास अति ही संक्षेप में लिखा गया है जिससे उस विषय के बहुत कुछ जानने की इच्छा बाक़ी रह जाती है। इस सम्बन्ध में मैं बाबू विन्ध्येश्वरीप्रसादसिंह के "हिन्दी भाषा" शीर्षक लेख पर ध्यान दिलाए बिना नहीं रह सकता। हिन्दी के आधुनिक विकास का इन्होंने अच्छा चित्र खींचा है। मुझे आशा है कि इन तीनों लेखों पर पूरा पूरा विचार किया जायगा।

व्रजभाषा पर पण्डित राधाचरण गोस्वामीजी के लेख में इसके माहात्म्य और भविष्यत् का बहुत ही संक्षेप में वर्णन किया गया है। यदि उसके साथ ही गोस्वामीजी अपने विचारों को सविस्तर वर्णन करते और इस भाषा के गुणों और महत्त्व का विशेष रूप से उल्लेख करते तो निस्संदेह अधिक उपकार होता। गोस्वामीजी का विचार सम्मेलन में स्वयं उपस्थित होने का था। पर अंत में उनके पुत्र के रुग्ण हो जाने के कारण वे अपनी इच्छा पूर्ण न कर सके। कदाचित् यही कारण हो कि वे अपने लेख को सर्वाङ्ग पूर्ण भी न कर सके। आशा है कि गोस्वामीजी किसी समय व्रजभाषा के विषय में अपने विचारों को विस्तृत रूप से लिख कर हिन्दीप्रेमियों का उपकार करेंगे।

दादूदयाल और सुन्दरदास के विषय में पण्डित चन्द्रिकाप्रसाद त्रिपाठी का लेख अनेक नई बातों से भरा है जो अब तक हिन्दी-प्रेमियों को विदित नहीं थीं। त्रिपाठीजी ने इस संप्रदाय के ग्रंथों का विशेष रूप से अवलोकन किया है और इसलिये यह उचित ही था कि वे अपने ज्ञान से हिन्दी-भाषा का उपकार करते।

राष्ट्रभाषा और राष्ट्रलिपि के उद्योग में बाबू शारदाचरण मित्र इस समय अग्रगण्य हो रहे हैं और कलकत्ते का एक-लिपि-विस्तार-परिषद् उनके उद्योग का फल है। यद्यपि कई बेर यह सन्देह लोगों ने किया है कि वास्तव में मित्र महाशय नागरी लिपि के राष्ट्रियत्व के साथ हिन्दी-भाषा को भी वह स्थान दिया चाहते हैं या नहीं, परन्तु इस लेख में इस सम्बन्ध में उनके स्पष्ट वाक्यों को पढ़ कर अब किसी को किसी प्रकार के सन्देह करने की जगह बाक़ी न रह जायगी। इस लेख से मित्र महाशय के हिन्दी-भाषा और नागरी लिपि पर असीम प्रेम और उनके राष्ट्रियत्व पद पाने के लिये उत्कंठित और उद्योगी देख कर किस हिन्दी-प्रेमी का हृदय गद्गद् न होगा। मित्र महाशय का कथन है कि हिन्दी-भाषा के व्याकरण में कुछ परिवर्तन करने की आवश्यकता होगी। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि यदि हम लोगों की यह इच्छा है कि हिन्दी राष्ट्र-भाषा और नागरी राष्ट्र-लिपि के आसन को सुशोभित करे तो हमें अवश्य इस बात पर विचार करना होगा कि अन्य भाषा-भाषियों को किस किस बात पर कठिनता उपस्थित होती है और हम लोग कहाँ तक हिन्दी के शरीर को पुष्ट रख कर उसके

ग्राह्य रूपादि में ऐसा परिवर्तन कर सकते हैं कि जिसमें वह सब के लिये मनोहर और ग्राह्य हो जाय। इस संसार में कोई भी दुराग्रह करके सफलता नहीं पा सकता। यह संसार एक हाथ देने और दूसरे हाथ लेने का है। अतएव इस विषय में सब प्रकार का हठ छोड़ कर हमें पहिले यह जानने का उद्योग करना चाहिये कि अन्य भाषा-भाषी विद्वान् कौन कौन वास्तविक आपत्तियाँ उपस्थित करते हैं और हम कहाँ तक उनकी इच्छा पूर्ण करने में समर्थ हैं। इस बात के कहने की आवश्यकता नहीं है कि हिन्दी हमें प्यारी है और हम याथातथ्य उसकी उन्नति चाहते हैं पर हमें साथ ही इस बात पर भी ध्यान रखना चाहिए कि संसार स्थिर नहीं है, वह आगे बढ़ रहा है, उसमें नित्य नए विकास हो रहे हैं और मनुष्य अपनी वर्तमान स्थिति के अनुसार अपनी आवश्यकताओं को पूरा करता है जिसमें बहुत सी पुरानी बातें उलट पुलट या छूट जाती हैं और उनका स्थान नई और कदाचित् किसी समय में अचिन्त्य बातें ग्रहण कर लेती हैं। कदाचित् इन्हीं सब बातों को स्मरण करके सम्मेलन ने यह निश्चय किया है कि हिन्दी को राष्ट्र-भाषा और नागरी को राष्ट्र-लिपि बनाने के

"कार्य में विशेष सफलता प्राप्त करने के लिये इस सम्मेलन की सम्मति में यह उचित जान पड़ता है कि बँगला, मराठी, गुजराती, उर्दू और हिन्दी साहित्य-सम्मेलनों के प्रतिनिधियों का एक संघ शीघ्र ही कहीं मिले और राष्ट्र-भाषा तथा राष्ट्र-लिपि के सम्बन्ध में विशेष रूप से विचार करे।"

आशा है बाबू शारदाचरण मित्र इस कार्य को सांगोपांग उतारने में कोई बात उठा न रक्खेंगे।

इन लेखों को छोड़ कर शेष ९ (१३ से २१ संख्या तक) लेखों का सम्बन्ध विशेष कर हिन्दी की उन्नति और प्रचार से है। मुंशी देवीप्रसाद के ऐतिहासिक लेख से हमें यह पूर्णतया विदित हो जाता है कि मुसलमानों के राज्य काल में हिन्दी की क्या अवस्था थी और अब हमारा क्या कर्तव्य है यह अन्य लेखों से सूचित होता है। इन सब लेखों के ध्यानपूर्वक पढ़ने से हमें विचार करने की बहुत कुछ सामग्री मिल जाती है और यदि हम इनका मनन कर अपने सिद्धान्तों को दृढ़ करें और उन पर अटल भाव से कुछ काल तक चलते रहें तो इसमें कोई सन्देह नहीं कि हमें अपने उद्देश्यों में बहुत कुछ सफलता प्राप्त हो जायगी।

निदान ऊपर लिखी बातों पर विशेष रूप से ध्यान दिलाने में मेरा उद्देश्य इस बात को स्पष्ट करने का है कि जो जो लेख सम्मेलन में उपस्थित किए गए थे वे उच्च श्रेणी के थे और उनके लेखकों ने अपना कर्तव्य पालन करने में कोई त्रुटि नहीं की। मुझे विश्वास है कि हिन्दी के प्रेमीगण इन महानुभावों के अनुगृहीत होंगे और इनके परिश्रम से लाभ उठावेंगे। साथ ही मैं यह निवेदन पुनः किए बिना नहीं रह सकता कि हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के नाम को चरितार्थ करने के लिये यह आवश्यक है कि जो जो लेख भविष्यत् सम्मेलनों में उपस्थित किए जाने वाले हों वे पहिले से छाप कर सम्मेलन में उपस्थित किए जाँय और उपस्थित महानुभावों को उन पर विचार करने का अवसर दिया जाय जिसमें साहित्य-सेवियों को अपने विचारों और सिद्धान्तों को परिमार्जित करने की सामग्री मिले और साथ ही हिन्दी का विशेष उपकार साधन हो सके। आशा है मेरी इस प्रार्थना पर उचित ध्यान दिया जायगा। अलं किं बहुना।

जम्बू २४-११-१०. { श्यामसुन्दरदास।

प्रथम हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन

कार्य-विवरण—दूसरा भाग।

——:०:——

निवेदन।

[पंडित चन्द्रशेखरधर मिश्र रचित]

(मालिनीछन्दः संस्कृते)

अनुदिनमनुभूय स्वाञ्जनान् दीनदीनान्।
प्रकृतिसरलभावे भाषितेऽपीहहीनान्॥
सपदि परिषदा यो कर्तुमीष्टे कृतार्थान्।
प्रभवतु नतिपात्रं कोऽपि देवो दयालुः॥ १॥

(हिन्दी बरवा छन्द में आशय)

अनुदिन देख दशा कों, मेरी दीन।
प्रकृति सरल हिन्दी-वर्णन में हीन॥२॥
रचि 'साहित्य-महा सम्मेलन' सार्थ।
सम्प्रति करते हैं जो देव कृतार्थ॥३॥
ऐसे देव देव शुचि करुणाधाम।
तिनको सविनय साञ्जलि कोटि प्रणाम॥४॥
फिर जो ईश्वररूप, महीसुर रूप।
हैं प्रणाम उनके गुन के अनुरूप॥५॥
ईश्वर के जो सत्य दया गुणधाम।
बार बार है उनको कोटि प्रणाम॥६॥

(संस्कृते—वसन्ततिलका छन्दः)

श्रीमान् सभापति महीपति माननीयो-
मैत्रो महान् मदनमोहन मालवीयः।
यो दीन दुःखहरविस्तृतकीर्तिधामा
तस्मै लसन्तु सततं शतशः प्रणामाः॥७॥

(हिन्दी—बरवा)

अनियत आगम जिनके, अनियत नाम।
परोपकारक विद्या, बुद्धि ललाम॥८॥
हिन्दी भाषा विदुवर, कविता-धाम।
यथायोग्य साञ्जलि है, तिन्हैं प्रणाम॥९॥
सभी सुजन को भी है सुधन्यवाद।
जिन्हैं रुचै उनको है आशीर्वाद॥१०॥

(रोला छन्द हिन्दी)

छोड़ि सकल गृहकृत्य, दूर से जो आये हैं।
समय व्यय कर अधिक अर्थ व्यय अधिकाये हैं॥
सभा मध्य जो कथन श्रवण के हैं अधिकारी।
धन्य धन्य वे पुरुषरत्न सम्मेलनचारी ॥११॥
कुटिल भाग्य-फल का अपने क्या वृत्त कहूँ मैं।
कहूँ नहीं तो यों भी कैसे मौन रहूँ मैं॥
यद्यपि हिन्दी प्राण सदृश मेरी है प्यारी।
सकल वर्ण से यदपि नागरी महिमा भारी॥१२॥
यदपि नागरी की उन्नति में समय बिताया।
विद्याधर्म दीपिकादिक पत्रादि चलाया॥
विना मूल्य ही जिसका वितरण करता आया।
हुए वर्ष बाईस विशेष प्रचार कराया ॥१३॥
सम्मेलन के लिये विशेष रहा उत्कण्ठित।
भाषा-मर्मज्ञों के दर्शन हेतु अकुण्ठित॥
सपरिवार बहुधा काशी ही में रहता हूँ।
सम्मेलन का तदपि वियोगज दुख सहता हूँ॥१४॥
क्या दुर्गापूजा का यही सुफल मिलना था।
वा दुष्कृत का कोइ विशेष कुफल मिलना था॥
जिससे सम्मेलन से मेरा मिलन छुड़ाया।
बहुत दिनों के सदभिलाष को दूर हटाया॥१५॥

(बरवा छन्दः संस्कृते)

हे दुर्गे दुर्गापूजन अस्तु फलमस्तु।
सफलमिदं सम्मेलनमविकलमस्तु ॥१६॥

(रोला छन्द हिन्दी)

दुर्गापूजा हेतु विवश निज सदन रहा हूँ।
सम्मेलन में गमनोत्कण्ठित तदपि महा हूँ॥
क्या दुर्गाजी नहीं इसी का फल देवेंगी?
सम्मेलन को कर कृतार्थ अविकल देवेंगी? ॥१७॥

अस्तु तावत

परम योग्यजन जहाँ सभा में सब आये हैं।
विद्या बुद्धि, समृद्धि वृद्धि में अधिकाये हैं॥
शुद्धाचार विचार धर्म शुचि कर्म्म प्रशंसित।
लोकरीति नृपरीति आदि में भुवन विकासित ॥१८॥
*बढ़ी योग्यता जिनकी है गुणगण में ऐसी।
विविध पदक पद से न योग्यता प्रकटित तैसी॥
किसी किसी का गौरव गुण पद से उठता है।
जिन पर संस्कृत-पद्य यही प्रतिपद घटता है॥१९॥

(संस्कृते वसन्ततिलका)

"श्रेयोऽधिकेन गुणवर्णनतः पदेन।
तुष्यन्तु नाम कतिनो कृतिनोऽनभिज्ञाः॥
खिद्यामहे खलु वयं भवदन्तरङ्गाः।
विद्यानिधेरवधिरेष यतः प्रयासः॥ २०॥"

"पदानि सम्प्राप्य तदर्थिनो हि
विभूषयन्तीति जगत्प्रसिद्धिः।
विभूषितानि प्रथमम्पदानि
किन्त्वर्थिनोऽद्यैव तथैव नाज्ञा ॥२१॥"

(रोला छन्द)

चुने हुए जो बुधवर प्रतिनिधि हो आये हैं।
निज कर्तव्य परायणता गुण अधिकाये हैं॥
ऐसे विज्ञवर्य्य से क्या कर्तव्य बतावें।
सभी समझते हैं उनको फिर क्या समझावें॥२२॥
पर अपना कुछ विनय निवेदन भी करना है।
अपने अलस स्वभाव अनुद्यम से टरना है॥
निज कर्तव्य विधान नित्य है कृत्य सभी का।
अवसर पर की चूक नहीं है कृत्य किसी का॥२३॥
अक्षर जिनके शुद्ध नागरी वा हिन्दी हैं।
हिन्दी भाषा-भाषी शुचिगुण अविनिन्दी हैं॥
उनकी शिक्षारीति समीहित परिसंस्कृत हो।
उनके बालक विमल बुद्धि सुकृती विस्तृत हों॥२४॥

---

*अर्थात् महामहोपाध्याय, वकील, एम. ए., बी. ए., आदि अपने पद से जो सज्जन मानहानि ही मानते हैं और पद ही उन्हें पाकर शोभित होते हैं।

जिस समाज के बालक विद्या में बढ़ते हैं।
निज सुचरित से गुण में जो आगे चढ़ते हैं॥
उन्नति पथ पर वही जाति आगे जाती है।
उलटी जो, उलटी गिरती पीछा खाती है॥२५॥

इससे बालों को उन्नत कर ज्ञान बढ़ाओ।
सभी विषय हिन्दी में कर के उन्हें पढ़ाओ।
जितना सरल समीहित है हिन्दी में पढ़ना।
उसके नहीं शतांश भिन्न भाषा से बढ़ना॥२६॥

धर्मविषय के ग्रन्थ शुद्ध हिन्दी में भरिये।
उससे धार्मिक, सत्यनिष्ठ सब बालक करिये॥
शुचि इतिहास मनोज्ञ चरित भी आज समुन्नत।
हिन्दी में रचि करो, विशेष-समाज समुन्नत॥२७॥

योंही वैद्यक और डाक्तरी के सब आशय।
हिन्दी ही में प्रकट करो बहुविध मत सञ्चय॥
ज्योतिष के सिद्धान्त शिल्प के शास्त्र सविस्तर।
उन्हें करो हिन्दी भाषा में भाव विपुल भर॥२८॥

योंही दर्शन के दर्शन हिन्दी में हो फिर।
लिखें विविध विज्ञान रसायन विद्या सुरुचिर॥
खेती विद्या के विशेष बहु ग्रन्थ बनावें।
जिसके फल से जन दरिद्र खाने को पावें॥२९॥

इस प्रकार हिन्दी भाषा में ग्रन्थ बना कर।
निज बालक गण को विशेष विद्वान् बढ़ा कर।
करै समाज समुन्नत फिर भी सज्जन ऐसा।
नृपति भोज के समय राज में शिक्षित जैसा॥३०॥

जो विद्या विस्तृति फल सुन्दर नृप ने चाहा।
यह "कवयामि" 'वयामि' 'यामि' कह सुकविजुलाहा
पूर्ण रीति से प्रकट किया" सो फिर प्रकटित हो।
बलपूर्वक शिक्षा विधि भी अब फिर विकसित हो ३१

योरोपीय देश में भी जो विधि प्रचलित है।
भारत में अब कहीं कहीं जो विधि प्रसरित है॥
नृपति बड़ौदा ने शिक्षण नव नियम बनाये।
वही शुद्ध कर जायँ हमारी ओर चलाये॥३२॥

सरकारी कचहरियों में हिन्दी प्रचार का।
हो विशेष उद्योग विपुल भाषा प्रसार का॥
यदपि आपने काम किया है इसमें भारी।
तदपि और कर्तव्य अधिक है तिसमें भारी॥३३॥

(नरेन्द्र छन्द)

सिद्धि समीहित इन कामों में सभी सुजन जो चाहैं,
करैं न शाखा-सभा-समीहित जिला जिला में काहैं।
जो उपदेशक नियत करैं फिर पुरस्कार दे पूरा,
ग्रन्थकार कवि गण को भी साहाय्य न देय अधूरा॥
हिन्दी के जो शुचि सेवक चल गये स्वर्ग में भी हैं,
जैसे भारतेन्दु जी, व्यास, 'प्रतापनारायण' जी हैं।
उनके स्मारक ठीक बनावें, दे हित सुत को शिक्षा,
इनके जो परिवार दीन हों, उनकी करैं सुरक्षा॥३५॥

(दोहा)

जो नागरी प्रचार के, ठीक करै सब काम।
विविध समीहित रीति से, नगर नगर प्रति ग्राम॥३६॥

(वसन्ततिलका)

कर्त्तव्य कर्म धरि मानुष रूप मानो।
श्री, सिद्धि, लाभ, गुण, मान, सरूप मानो॥
सम्मेलनोन्नति समीहित आ गये हैं।
जो आप लोग समझें, मम भाग ये हैं॥३७॥

(उपजातिः संस्कृते)

तथाऽपि वक्तुं यदि साहसम्मे।
क्षन्तव्यमेतत्प्रसभं भवद्भिः॥
मनांसि यद्‌बन्धु सुहृज्जनाना-
मनिग्रशङ्कानि भवन्ति भूयः॥३८॥

(रोला छन्द)

यदपि नागरी प्रचारिणी, यह सभा समीहित।
अद्वितीय हो करती आती है जनता हित॥
सम्मेलन के सभ्य सभापति भी इसके नित।
यद्यपि करते आते हैं अतुलित जनके हित॥ ३९॥

तदपि ख्याल जब आता है हिन्दू-समाज का।
इसी भाँति स्थान रहा जब प्रागराज का॥
हिन्दी के हित हेतु काम जिसका भारी था।
अनुदिन जो अनुपम हिन्दी का हितकारी था॥४०॥

वर्ष वर्ष जिसके अधिवेशन होते थे।
दूर दूर के सभ्य जहाँ आते जाते थे॥

जिसके राजा से किसान तक भी मेम्बर थे।
करते जो साहाय्य लेख आदिक लेक्चर से ॥४१॥
वृद्ध सभ्य अब तक जिसके कितने जीते हैं।
अद्यावधि जिसकी महिमा समझे जी से हैं।
तदपि आज नव जन उसका भी नाम न जानें।
तिल भर भी उपकार समीहित काम न जानें ॥४२॥

(वसन्ततिलका)

योंही हुए न कितने सुसमाज देखे।
जो पूर्व थे, न उनको फिर आज देखे ॥
माया अपार इसमें जगदीश की है।
जैसा चहै वह करै सुसमर्थ ही है ॥४३॥

(बरवा)

इससे हे विद्वद्वरगण गुणधाम।
सोचि करैं ऐसी दृढ़ता से काम ॥४४॥

(वसन्ततिलका)

साहित्य-सम्मेलन शीघ्र कृतार्थ होवै।
साहित्य-सम्मेलन शब्द यथार्थ होवै ॥
योंहीं सदा स्थिर रहै विनयार्थ होवै।
हिन्दी प्रचार विधि में सुसमर्थ होवे ॥४५॥

(बरवा)

चाहे धन कुबेर हो, कविता धाम।
विद्यावाचस्पति हो, कर्म ललाम ॥४६॥
पर प्रमाद से समझो सब है नष्ट।
बिना कर्म दृढ़ता के सब कुछ भ्रष्ट ॥४७॥

(वसन्ततिलका)

चाहे महा नृपति हो, क्षिति चक्रवर्ती।
चाहे सुकर्ममय योग यथानुवर्ती ॥
जो है प्रमादरत सो अति दीन होगा।
उत्साहहीन नर उन्नतिहीन होगा ॥४८॥
उत्साह संवलित उन्नतिशील दूने।
जो अंगरेज़ सु जपान बने नमूने ॥
देखो इन्हें मन गुनो शुभ वेश भाषा।
होगा कृतार्थ नव देश विशेष, भाषा ॥४९॥

(अतः बरवा)

नित्य मन्त्र रूप जपिये दृढ़ता नित्य।
नित्य कर्म सम मानें दृढ़ता कृत्य ॥५०॥
चाह करै मन मे नित नव उत्साह।
अजपा जप सम इसका हो निर्वाह ॥५१॥
करैं सभी विधि यह सब पूरण काम।
कोई नव जलधर रुचि करुणाधाम ॥५२॥

—:०:—

विद्या और मातृभाषा का महत्त्व ।

[पं० श्यामविहारी मिश्र और पं० शुकदेवविहारी मिश्र रचित ।]

प्रिय भारत में विद्या का जैसा
गुरु अभाव पाया जाता ।
वह किसी दूसरे सभ्य देस में
नहीं आज दिन दरसाता ॥
बस इसी प्रबल दारुन अभाव से
फूटे भारत भाग ।
अरु इसके परम समुज्ज्वल जस में
लगे भयानक दाग ॥ १ ॥

सब दोषों की, सब भूलों की, सब
रोगों की हरने हारी ।
लौकिक अरु ईश्वर सम्बन्धी भी
ज्ञान उदै करने हारी ॥
है विद्या मातु पिता सी पालक
तिय सी अति सुखदानि ।
भ्राता सी सदा सहायक प्रेमी
मीत सरिस गुनखानि ॥ २ ॥

उत्तम सुत सम अति वृद्ध बैस में
विद्या पालन करती है ।
सत गुरु सी सिच्छा दे मनुष्य की
नीच बुद्धि नित हरती है ॥
एकाकी जन को भी समाज का
देती है आनन्द ।
कलियुग में भी सतयुग का देती
खोल सीन स्वच्छन्द ॥ ३ ॥

विद्याबल से नर बालमीकि की
अब तक बातें सुनते हैं ।
द्वैपायन, वेदव्यास, कृष्ण, की
सुन्दर सिच्छा गुनते हैं ॥
कर दिया कपिल ने देवहुती पर
जौन ज्ञान परकाश ।
विद्या बल से अब तलक वियोगी
उससे लहैं सुपास ॥ ४ ॥

सामाजिक उन्नति आर्य्यगनों की
विद्या बल से जग जानै ।
वैदिक सुकाल का सुख अब तक ऋग
वेद पाठ से अनुमानै ॥
पुनि परदेशों में भी राजा सम
लहै मान विद्वान ।
विद्या सम है नहिं तीनि लोक में
कोई रतन महान ॥ ५ ॥

सत में केवल ग्यारह भ्राता
बरतामा भी करना जानें ।
पुनि अयुत जनों में केवल दस नर
कालेज में पढ़ सुख मानें ॥
है भारत विद्या की कुदसा यह
जब तक अति दुखरास ।
तब तक उन्नति की किसी भांति भी
क्या हो सक्ती आस ॥ ६ ॥

धनवान कहें क्या कहीं नौकरी
करनी है मेरे सुत को ।
फिर व्यर्थ परिश्रम कर उसको क्या
करना है विद्यायुत हो ॥
उत निरधन जन अब धनाभाव से
सुत को विद्यादान ।
करने में हैं न समर्थ हाय हम
हो क्यों कर विद्वान ॥ ७ ॥

अबला करके विद्वान हमें क्या
कुछ इस्पीच दिलानी है ।
बालों में उन्हें नचाने की हम
ने न प्रतिज्ञा ठानी है ॥
लिखवा कर उनसे प्रेमपत्र कर
के आचरन तबाह ।
हमको है नहीं अभीष्ट कोर्टशिप
की खुलवानी राह ॥ ८ ॥

इस भाँति अमित मूरख भ्राता गन
विद्या का अपवाद करैं।
उसके मन मोहक चारु गुनों पर
नहीं कभी वह ध्यान धरैं॥
जो पशु से नर होने में होता
आचरनों का नाश।
पशुवृत्ति छोड़ नर होने में मैं
तो भी गुनूँ सुपास॥ ९॥

सारे शूद्रों ने कभी समुन्नत,
की नहिँ अपनी मनमानी।
फिर भी उनके आचरनों की क्या
रही सुद्धि जग सुखदानी॥
यदि नहीं और बातों से तो गुरु
धनाभाव से घोर।
है जाता टूट अवश्य एक दिन
परदा परम कठोर॥ १०॥

खोकर सारा वैभव बल वीरज
धारन कर पसुवृत्ति बुरी।
जो उन्नति मारग पर हम फेरैं
जान बूझ कर तेज छुरी॥
तो लेकर आचरनों को क्या हम
चाटैंगे दिन रात?
अरु बनी रहैंगी आचरनों हीं
की कब तक कुशलात?॥ ११॥

फिर धनाभाव से रोकर आखिर
तरुनी गन बाहर लाना।
अरु नीचों के सम सदा सैकड़ों
दुखद ठोकरों को खाना॥
यह करना है अति छुद्र नीति का
अवलम्बन दुख आल।
या सुख से लाना बाहर देकर
विद्यादान विसाल॥ १२॥

गुजरात बम्बई में न आज भी
है कदापि परदा जारी।
पर वहाँ शिकायत दुराचरन की
उठी न कभी मान हारी॥
फिर दुराचरन की संका करनी
है सब बिधि निरमूल।
अब भी भ्राता तरुनी सिच्छा कर
दूर करो निज भूल॥ १३॥

है विद्यादान जीविका ही का
नहीं सुसाधन सुखकारी।
पर इससे तज कर पसु पद पाता
नर पद छात्र मनोहारी॥
होता है जन्म द्वितीय मनो
विद्या पढ़ कर गुन आल।
विद्वानों ही को द्विज पद सुन्दर
मिलता था ततकाल॥ १४॥

करके बालक उतपन्न मातु पितु
जो उसको न पढ़ाते हैं।
वह सब से गुरु करतव्य विशद
सन्तान ओर विसराते हैं॥
मानुष होकर भी प्रकटाया न
उन्होंने मनुज विशाल।
वरु नर अरु पशु के बीच हुई उन
के कुछ वस्तु कराल॥ १५॥

हैं गणना में अति स्वलप आज विद्वान
यथा भारतवासी।
हैं प्रति सिच्छित नर के तथैव
करतव्य परम दृढ़ सुखरासी॥
करतव्य परायण हीन बहुत
विद्वानों में कुछ लोग।
उनका कादरपन तो न देश के
हित हो दारुन रोग॥ १६॥

पर खुर्दबीन से भी न जहाँ
विद्वान दीठि पथ आते हैं।
अरु वहाँ किसी विधि कुछ भी नर
करतव्य सुखद बिसराते हैं॥
तो ऐसा प्रति नर करता है
मानो स्वदेस का घात।
फिर उस कुदेस के हो कैसे
सन्तानों की कुसलात॥ १७॥

है धनापव्यय के सरिस काल का
भी अपव्यय गुरु दुखदाई ।
पर है विद्वान भ्रात गन में भी
इसकी प्रबल अधिकताई ॥
जो लेते पेशा हाथ सदा
रहते उसके आधीन ।
पर अन्य बहुत बातों दिसि रहते
उदासीन रुचि हीन ॥१८॥

करके दिन का व्यापार पूर्ण
करतव्य इति श्री गुनते हैं ।
नहिं कभी जगत उपकार हेत
उपदेस किसी का सुनते हैं ॥
जो कोई बचे काल में जगहित
करने को व्याख्यान ।
है देता इनको करते हैं यह
उसका अति बखान ॥१९॥

पर उसकी महिमा गाकर यह
सन्तुष्ट परम हो जाते हैं ।
नहिं उसके उपदेशों को करके
श्रम कारज में लाते हैं ॥
हों एमे पास तो भी कहते हैं
हम में है क्या ज्ञान ।
किस भांति जगत का कर सकते हैं
हम उपकार महान ॥२०॥

जो करने को कुछ काम बतावे
कहते तो ऋजुता धारी ।
है अमुक व्यक्ति की इस कारज में
हमसे पटुता अति भारी ॥
पर नहीं विचारें एक व्यक्ति क्या
कर सक्ता सब काम ?
क्या उसने माता के सुगर्भ में
सीखे गुन जस धाम ॥२१॥

करते करते ही काम सदा
करता को पटुता आती है ।
चलते चलते चींटी भी चलकर
बड़ी दूर चल जाती है ॥
जो मन समान है चलनेवाला
गरुड़ महा बलवान ।
यदि नहीं चलै तो चलै न वह
भी एक पग परमान ॥२२॥

फिर किसी काम में सर्वोत्तम
जन ही के हित है ठौर नहीं ।
बरु सकल भांति के बालक पढ़ते
सब क्लासों में सभी कहीं ॥
जो हैं प्रवीण नहिं बालक हैं
वह भी न कभी बेकाम ।
हैं वह भी कुछ नहिं पढ़नेवालों
से सब भांति ललाम ॥२३॥

सो बचे काल को व्यर्थ गवां कर
अपव्यय करना नहीं भला ।
कुछ नहिं करना तज उचित यही
उन्नत कोई भी करै कला ॥
टट्टू टट्टू से लसकर होता
दाना दाना रास ।
खरबूजे को लख रंग पकड़ता
खरबूजा सविकास ॥२४॥

तज कर आलस भाव जगत
हित में मन धारो ।
अपने को तुम जिस विभाग
में जोग्य विचारो ॥
लेकर वही विभाग
भ्रात हित में जुट जाओ ।
उसमेंही सारे समाज
का ज्ञान बढ़ाओ ॥
होवो न पूर्ण पंडित यदपि
तदपि न कारज से मुरौ ।
कुछ भी नहिं करना निन्द्यगुन
किसी लोक हित में जुरौ ॥२५॥

हैं अनन्त बर विषम
भ्रात गन के सुख कारन ।

निजबल के अनुसार
करौ उनमें पगु धारन ॥
नहिं खगेस को देख
मसक उड़ना बिसरावैं।
करैं यथा बल सैर
गगन की, आनंद पावैं ॥
पर नहीं गरुड़ से भी कभी
व्योम अन्त जाना गया।
ज्यों ज्यों उड़ने आकास खग
त्यों त्यों यह मिलता नया ॥२६॥

है अति पावन काज
मातृ भाषा उपकारा।
सब सुख दायक सकल
भाँति त्रिभुवन उजियारा ॥
इससे उत्तम नहीं
बहुत हैं काज महाना।
पर परम्परा अन्ध
यहाँ भी है बलवाना ॥
जो भाषा उन्नति दिसि झुकैं
वह विद्वान बिसाल हैं।
अरु उनसे आसा लोक की
सब प्रकार रुचि आल हैं ॥२७॥

पर वह भी यदि अन्ध
सरिस जड़ता चित धारैं।
आवश्यकता ओर
भूल कर नहीं निहारैं ॥
भ्राताओं का ध्यान
न उन्नति ओर लगावैं।
उपदेशों से उन्हें
अधोगति को ले जावैं ॥
तब यह बूढ़ा भारत कहो
देखैगा किसका वदन ?
किससे पावैंगे भ्रात गन
उन्नति के उपदेस घन ? ॥२८॥

भारत को वह ग्रन्थ
सदा प्रिय प्रान समाना।
उन्नति कर उपदेस
देहु जो जग सुखदाना ॥
अथवा उनके दोष
भ्रात गन को दरसावै।
संकट मोचन हेत
अपूरब युक्ति बतावै ॥
या भ्राताओं का दीठि पथ
कुछ भी तो बिस्तृत करै।
बर बानि कूप मंडूक की
किसी भाँति उनकी हरै ॥२९॥

गूलर को ब्रह्मांड
समझ बैठे भ्राता गन।
दिखला जग विस्तीर्ण
दूर यह करै संकुचन ॥
पीछे चलने की कु-
बानि से दूर हटावै।
आतम निरभरता रसाल
सबको सिखलावै ॥
जो गिरैं कूप में भेड़ सम
एक भेड़ पीछे नहीं।
नहिं जमन काल की रीति सब
गुनैं वेद से गुरु कहीं ॥ ३० ॥

जमुना तट सीरी बयारि
का स्वाद उठाया।
राका निसि का रास
निरख भारत सुख पाया ॥
उपपतियों की ताक
झांक से खूब अघाया।
बिरह उसासों की लूकों
से गात जलाया ॥
कँकन किंकिनि भूषन बसन,
मेंहदि की देखी छटा।
सब देख भाल कर इन सभों
से अब मन उसका हटा ॥ ३१ ॥

अलंकार भी बिबिधि
भाँति कविता में देखे।

षट ऋतु नख सिप आदि
विषै अगनित अवरेखे ॥
पिंगल गुन दूषन बिसाल
ध्वनि भेद निहारा ।
आस्वादन रस और
भाव का कर मुद धारा ॥
दस अंग लखी कविता सकल
किन्तु भरी शृंगार रस ।
शृंगार छोड़ कविता मिली
नहीं बहुत सुन्दर सरस ॥ ३२ ॥
आवश्यकता रही
नहीं कुछ भी इस रस की ।
स्वाभाविक वरणन विलोक
बाढ़ी चित चसकी ॥
करौ प्राकृतिक चारु
विषै वरणित मुद भागी ।
यथा संस्कृत मध्य
कहे कवियों ने आगी ॥
मैकल मधुसूदनदत्त ने
मेघनाद बध ज्यों कहा ।
बंकिम रमेस ने ग्रन्थ रच
सदा लोक हित ज्यों चहा ॥ ३३ ॥
भारतेन्दु हरिचन्द्र हुवा
ज्यों सुकवि सयाना ।
भूषन सूदनलाल
सुमति ने यथा बखाना ॥
चन्द्र सुकवि ने यथा
रुचिर रासो कह गाया ।
सच्चा सुन्दर कथन
जगत को बरन सुनाया ॥
बैताल सुकवि ने ज्यों किया
प्रबल राम हर्षण कथन ।
सेखर हरिकेस कवीन्द्र ने
रचे ग्रन्थ सुख के सदन ॥ ३४ ॥
स्वल्प उन्नति नहीं पर कर
सकैं कुछ सन्तोष ।
होय जब तक नहीं हिन्दी
त्रुटि रहित निर्दोष ॥
तज समस्या पूर्ति कविजन
रचैं उत्तम ग्रन्थ ।
लाभ नहिं कुछ गहे यक
शृंगार ही का पन्थ ॥ ३५ ॥
जमक अनुप्रास अतिसय
उक्ति इन में एक ।
अंग हैं नहिं काव्य के हम
कहेंगे जुत टेक ॥
नहीं केवल पद्य से अब
सधैंगे सब काम ।
गद्य उन्नति उचित है इस
हेत अति अभिराम ॥ ३६ ॥
लिखो जीवन-चरित उनके
जो प्रशंसा-जोग ।
कला, विद्या, शूरता, बल
बुद्धि के संयोग ॥
रचौ बहु भूगोल और
खगोल के बर ग्रन्थ ।
शिल्प अरु वाणिज्य के सब
को दिखावो पन्थ ॥ ३७ ॥
महा लज्जा लगै सुमिरन
किये से यह बात ।
शुद्ध हिन्दी कोष का भी
ग्रन्थ एक न ख्यात ॥
व्याकरन विज्ञान की बहु
रचौ पुस्तक मित्र ।
कृषि रसायन गनित के बहु
चारु ग्रन्थ विचित्र ।। ३८ ॥
त्यों अर्थशास्त्र विचार कर युत
राजशास्त्र विशाल ।
इतिहास निज अरु अन्य देशों
के रचौ ततकाल ॥
शोधौ चिकित्सा शास्त्र के जो
ग्रन्थ बहु प्राचीन ।

त्यों देस काल स्वभाव के
अनुरूप ग्रन्थ नवीन ॥ ३९ ॥
विरच्यो सकल मिल करौ
भारतबुद्धि जग विख्यात ।
धोवो लगाता कालिमा जो
जगत तुम पर आन ॥
तज मोह निद्रा उठो होता
लखो क्या सब ओर ।
सन्ध्या समय है निकट अब भी
हुआ तुम्हें न भोर ॥ ४० ॥
निज देसभाषा की करौ
उन्नति बिसद में यत्न ।
मत गुनो हिन्दी तुच्छ भाषा
गन बिषे जो रत्न ॥
सरवांग पूरन स्वच्छ इसकी
वर्णमाला ख्यात ।
नहिं अन्य भाषा धरैं आधी
चारुता भी गात ॥ ४१ ॥
जो जो सकैं नर भाष इसमें
शुद्ध लिखिये तौन ।
आह्वान कर हम कहैं ऐसी
अन्य भाषा कौन ।
फिर दूसरा गुन एक इसमें
है अमोल महान ।
लख सकै जिसको अन्य भाषा
कहो कौन बिधान ॥ ४२ ॥
जो लिखो बांचो वही भ्रम पड़
सकै कुछ न कदापि ।
नहिं सकै उर्दू आदि में
कोई सुगुन यह थापि ॥
दुइ वर्ष ही में लिखैं बांचैं
इसे बालक जाल ।
पर और भाषा हेत हैं षट
वर्ष परम उताल ॥ ४३ ॥
तब तक उन्नति है कहाँ
जब तक इस जग बीच ।
जमी नारि नर के हिये
अन्धकार की कीच ॥ ४४ ॥
अन्धकार हिय का कभी
सकै न मिट बिन ज्ञान ।
ज्ञानोदय नहिं हो सकै
बिन विद्या सुखदान ॥ ४५ ॥
विद्या का साधन कहाँ
बिन भाषा सुखसार ।
भ्राताओं में किन्तु हैं
भाषा बिबिध प्रकार ॥ ४६ ॥
भाँति भाँति अनेक भाषा
देस में हैं आज ।
अरु प्रणाली लसैं लिपि की
भाँति भाँति दराज ॥
दोष से हैं भरी यह सब
या परम गुनवान ।
है अभीष्ट न मुझे अब इस
बात का अनुमान ॥ ४७ ॥
बहुत भाषा हुई हैं पर
दोष दारुन एक ।
एक दूजे की न समझैं
बात हम सबिबेक ॥
एक प्रान्तिक यत्न से नहिं
लाभ पावैं और ।
होय जब अनुवाद तब कर
सकैं कुछ भी गौर ॥ ४८ ॥
ऐक्य में यों पड़ै बाधा
और उन्नति हेत ।
काल अरु धन के खरच का
पड़ै बहुत कुनेत ॥
प्रान्त गन की बहुरि भाषा
हैं न भिन्न महान ।
हैं यथा लिपि की प्रनाली
भिन्न अति दुखदान ॥ ४९ ॥
नागरी लिपि में लिखौ यदि
बर मराठी लेख ।

कासमीरी गुर्जरी या
बंगला सबिसेख ॥
राजपूतानी पँजाबी
आदि भाषा चारु ।
समझने में पड़ै नहिं
काठिन्य का तो भारु ॥ ५० ॥
बस तिलंगी और तामिल
हैं अगम बिकराल ।
नहीं इनका ज्ञान हिन्दी
देसकै गुन आल ॥
और भाषा सकल हिन्दी
के अहैं सम रूप ।
हैं परस्पर भिन्न यद्यपि
सकल भाँति अनूप ॥ ५१ ॥
नागरी की वर्णमाला
है विशुद्ध महान ।
सरल सुन्दर सीखने में
सुगम अति सुखदान ॥
मित्र सारद चरन जज ने
सोच यह सह चाव ।
एक लिपि विस्तार परिषद्
का किया सुबनाव ॥ ५२ ॥
देवनागर पत्र से कर
मुझे भूषित वीर ।
प्रान्त गन के मेल की रख
दी सुनीव गँभीर ॥
राष्ट्र भाषा हेत सारी
योग्यता की आल ।
लसै हिन्दी रूप गुन में
पूजनीय बिसाल ॥ ५३ ॥
करैं इसका भ्रात गनना
में अधिक सतकार ।
इसे समझैं और भी बहु
प्रान्त सुख दातार ॥
सो अनेक सुदेस भाषा
हैं यदपि इस काल ।
हैं धरे सब बिबिध बिध के
सुगुन परम बिसाल ॥ ५४ ॥
पर इन सब में नागरी है
सब को हितकारि ।
स्वच्छ सरल सुन्दर ललित
आसु देत फल चारि ॥ ५५ ॥
अँगरेजों ने की यथा
निज भाषा सिरताज ।
उसी भाँति उन्नति करो
हिन्दी की मिल आज ॥ ५५ ॥
गद्य पद्य नाटक रचौ
जग उपकारक चारु ।
स्वाभाविक प्राकृतिक हैं
ग्रन्थ जगत शृंगारु ॥ ५६ ॥
बँगला अँगरेजी तथा
उर्दू में गुन आल ।
आदि मराठी फारसी
में जो ग्रन्थ विसाल ॥ ५७ ॥
उनके कर अनुवाद बर
भरो नागरी भौन ।
इस बिधि से दरसाइये
उन्नति मारग जौन ॥ ५८ ॥
विद्या अवनति देस
पतन की है महतारि ।
जाती भाषा से
सुदेस की दसा बिचारी ॥
हैं बस दोही बिषै
नागरी में परधाना ।
एक शृंगार द्वितीय
धरम सुन्दर सुखदाना ॥
अब धरम और शृंगार तज
अन्य बिषै भी कुछ कहो ।
सरवांग पूर्ण कर नागरी
बिसद सुजस जग में लहो ॥ ५९ ॥

धर्म्मवीर।

(पंडित अयोध्यासिंह उपाध्याय रचित)

षट्पद।

यह जगत जिसके सहारे से सदा फूले फले।
ज्ञान का दीया निराली जोत से जिस के जले॥
आँच में जिसके पिघल कर काँच हीरे सा ढले।
जो बड़ा हो दिव्य है तलछट नहीं जिसके तले॥
हैं उसे कहते धरम जिससे टिकी है यह धरा।
तेज से जिसके चमकता है गगन तारों भरा॥ १॥

पालनेवाला धरम का है कहाता धर्म्मवीर।
सब लकीरों में उसी की है बड़ी सुन्दर लकीर॥
है सुरत्नों से भरी संसार में उसकी कुटीर।
वह अलग करके दिखाता है जगत को छीर नीर॥
है उसी से आज तक मरजाद की सीमा बची।
सीढ़ियाँ सुख की उसी के हाथ की ही हैं रची॥ २॥

एक देशी वह जगतपति को बनाता है नहीं।
बात गढ़ कर एक का उसको बताता है नहीं॥
रंग अपने ढंग का उस पर चढ़ाता है नहीं।
युक्तियों के जाल में उसको फँसाता है नहीं॥
भेद का उसके लगाता है वही सच्चा पता।
ठीक उसका भाव देता है वही सबको बता॥ ३॥

तेज सूरज में उसी का देख पड़ता है उसे।
वह चमकता बादलों के बीच मिलता है उसे॥
वह पवन में और पानी में झलकता है उसे।
जगमगाता आग में भी वह निरखता है उसे॥
राजती सब ओर है उसके लिए उसकी विभा।
पत्थरों में भी उसे उसकी दिखाती है प्रभा॥ ४॥

पेड़ में उसको दिखाते हैं हरे पत्ते लगे।
वह समझता है सुयश के पत्र हैं उसके टँगे॥
फूल खिलते हैं अनूठे रंग में उसके रँगे।
फल उसे रस में उसी के देख पड़ते हैं पगे॥
एक रजकण भी नहीं है आँख से उसके गिरा।
राह का तिनका दिखाता है उसे भेदों भरा॥ ५॥

सोचता है वह जो मिलते हैं उसे पर्वत खड़े।
हैं उसी की राह में सब ओर यह पत्थर गड़े॥
जो दिखाते हैं उसे मैदान छोटे या बड़े।
तो उसे मिलते वहाँ हैं ज्ञान के बीए पड़े॥
वह समझता है पयोनिधि प्रेम से उसके गला।
जंगलों में भी उसे उसकी दिखाती है कला॥ ६॥

हैं उसी की खोज में नदियाँ चली जाती कहीं।
है तरावट भूलती उसकी कछारों को नहीं॥
याद में उसकी सरोवर लोटता सा है वहीं।
निर्झरों के बीच छींटें हैं उसी की उड़ रहीं॥
वह समझता है उसी की धार सोतों में बही।
झलमलाता सा दिखाता झील में भी है वही॥ ७॥

भीर भौंरों की उसी की भर रही हैं भावरें।
गान गुन उसका रसीले कंठ से पंछी करें॥
भनभना कर मक्खियाँ हर दम उसी का दम भरें।
तितलियाँ भी हो निछावर ध्यान उसका ही धरें॥
वह समझता है न है झनकार झींगुर की ठगी।
है सभी कीड़े मकोड़ों को उसी की धुन लगी॥ ८॥

है अछूती जोत उसकी मंदिरों में जग रही।
मसजिदों गिरजाघरों में भी दरसता है वही॥
बौध मठ के बीच है दिखला रहा वह एक ही।
जैन मंदिर भी छुटा उसकी छटा से है नहीं॥
ठीक दिन में दीठ जिसकी है नहीं सकती ठहर।
देख पड़ती है उसी की आँख में उसको कसर॥ ९॥

संख उसके वास्ते देता जगत को है जगा।
बाँग भी सब को उसी की ओर देती है लगा॥
गान इन ईसाइयों का ताल औ लय में पगा।
इस सुरत को है उसी की ओर ले जाता भगा॥
जो बिना समझे किसी को भी बनाता है बुरा।
वह समझता है वही सच पर चलाता है छुरा॥ १०॥

हो तिलक तिरछा तिकोना गोल आड़ा या खड़ा।
गौन हो दस्तार हो या बाल हो लाँबा बड़ा॥
जो बनावट का बुरा धब्बा न हो इन पर पड़ा।
तो सभी हैं ठीक, देते हैं दिखा पारस गड़ा॥

जो इन्हें ले कर भगड़ता या उड़ाता है हँसी।
जानता है वह समझ है जाल में उसकी फँसी ॥११॥

गेरुआ कपड़ा पहनना, घूमना, दम साधना।
राख मलना, गरमियों में आग जलती तापना ॥
जंगलों में बास करना, तन न अपना ढाँकना।
बाँधना कंठी, गले में सेल्हियों का डालना ॥
वह इन्हें मन जीत लेने की जुगुत है जानता।
जो न उतरी मैल तो सूखा ढचर है मानता ॥ १२ ॥

पतजिवा, रुद्राछ, तुलसी की बनी माला रहे।
या कोई तसबीह हो या पोर उँगली की गहे ॥
या बहुत सी कंकड़ी लेकर कोई गिनना चहे।
या प्रभू का नाम अपनी जीभ से योहीं कहे ॥
लौ लगाने को बुरा इन में नहीं है एक भी।
आँख में उसकी नहीं तो काठ मिट्टी हैं सभी ॥१३॥

ध्यान, पूजा पाठ, व्रत, उपवास देवाराधना।
घूमना सब तीरथों में आसनों को साधना ॥
जोग करना, दीठ को निज नासिका पर बाँधना।
सैकड़ों संयम नियम में इन्द्रियों को नाधना ॥
वह समझता है सभी हैं ज्ञान माला की लड़ी।
जो दिखावट की न भद्दी छींट हो इन पर पड़ी ॥१४॥

बौध त्रिपिटिक, बाइबिल, तौरेत, या होवे कुरान।
जिन्दवस्ता, जैन की ग्रन्थावली, या हो पुरान ॥
वेद मत का हो बहुत कुछ है हुआ इनमें बखान।
है बहा बहु धार से इनमें उसी का दिव्य ज्ञान ॥
ठीक इसका भेद गुण लेकर वही है बूझता।
है बुरी वह आँख औगुण ही जिसे है सूझता ॥१५॥

बुद्ध, जिन, ईसा, मुहम्मद, और मूसा को भला।
कौन कह सकता है दुनिये को इन्होंने है छला ॥
सोच लो ज़रदस्त भी है क्या कहीं उलटे चला।
ये लगा कर आग दुनिये को नहीं सकते जला ॥
वह इसी से है समझता वेद के पथ पर चढ़े।
ये समय औ देस के अनुसार हैं आगे बढ़े ॥ १६ ॥

बौध, हिन्दू, जैन, ईसाई, मुसल्माँ, पारसी।
जो बुराई से बचे रक्खें न कुछ उसकी लसी ॥
धरम की मरजाद पालें हो सुरत हरि में बसी।
तो भले हैं ये सभी दोनों जगह होंगे जसी ॥

वह उसी को है बुरा कहता किसी को जो छले।
है धरम कोई न खोटा ठीक जो उस पर चले ॥१७॥

बौधमत, हिन्दूधरम, इसलाम, या ईसाइयत।
हैं जगत के बीच जितने जैन आदिक और मत ॥
वह बताता है सभों की एक ही है असलियत।
है स्वमत में निज बिचारों के सबब हर एक रत ॥
ठौर है वह एक ही यह राह कितनी है नई।
दूध इनका एक है केवल पियाले हैं कई ॥ १८ ॥

वह क्रिया से है भली जी की सफाई जानता।
पंडिताई से भलाई को बड़ो है मानता ॥
वह सचाई को पखंडों में नहीं है सानता।
वह धरम के रास्ते को ठीक है पहचानता ॥
ज्ञान से जग बीच रह कर हाथ वह धोता नहीं।
आड़ में परलोक की वह लोक को खोता नहीं॥१९॥

तंग करना, जी दुखाना, छेड़ना भाता नहीं।
वह बनाता है, कभी सुलझे को उलझाता नहीं ॥
देख कर दुख दूसरों का चैन वह पाता नहीं।
एक छोटे कीट से भी तोड़ता नाता नहीं ॥
लोक सेवा से सफल हो कर सदा बढ़ता है वह।
धूल बन कर पाँव की जन सीस पर चढ़ता है वह २०

धन, विभव, पद, मान, उसको और देते हैं झुका।
प्रेम बदले के लिये उसका नहीं रहता रुका ॥
वह अजब जल है उसे जाता है जो जग में फुँका।
बैरियों से वह कभी बदला नहीं सकता चुका ॥
प्यार से है बाघ से बिकराल को लेता मना।
वह भयंकर ठौर को देता तपोवन है बना ॥ २१ ॥

हैं कहीं काले बसे गोरे दिखाते हैं कहीं।
लाल, पीले, सेत, भूरे, साँवले भी हैं यहीं ॥
पीढ़ियाँ इनकी कभी नीची कभी ऊँची रहीं।
रँग बदलने से बदलती दीठ है उसकी नहीं ॥
भेद वह अपने पराये का नहीं रखता कभी।
सब जगत है देस उसका जाति है मानव सभी २२

वह समझता है सभी रज बीज से ही है जना।
मांस का ही है कलेजा दूसरों का भी बना ॥
मान जाने पर न किसकी आँख से आँसू छना।
दूसरे भी चाहते हैं मान का मुट्ठी चना ॥

खौलना जिसका किसी से भी नहीं जाता सहा।
है रगों में दूसरों की भी वही लोहू बहा ॥ २३ ॥

वह तनक रोना कलपना और का सहता नहीं।
हाथ धो कर और के पीछे पड़ा रहता नहीं॥
बात लगती वह किसी को एक भी कहता नहीं।
चोट पहुँचाना किसी को वह कभी चहता नहीं॥
जानता है दीन दुखियों के दरद को भी वही।
बेकसों की आह उससे है नहीं जाती सही ॥ २४ ॥

यह चुड़ैलें चाह की उसको नहीं सकतीं सता।
प्यार वह निज वासनाओं से नहीं सकता जता॥
मोह की जी में नहीं उसके उलहती है लता।
है कलेजे में न कीने का कहीं मिलता पता॥
रोस की जी में कभी उठती नहीं उसके लपट।
छल नहीं करता किसी से वह नहीं करता कपट २५

गालियाँ भाती नहीं ताने नहीं जाते सहे।
आग लग जाती है कच्ची बात जो कोई कहे॥
देख कर नीचा किसी की आँख कब ऊँची रहे।
ठोकरें खा कर भला किस को नहीं आँसू बहे॥
वह समझता है न इतना घाव करती है छुरी।
ठेस होती है बड़ी हो इस कलेजे की बुरी ॥ २६ ॥

है विभव किस काम का वह हो लहू जिसमें लगा।
आग उस धन में लगे जिसमें हुई कुछ भी दगा॥
वह गरब गिर जाय जिसका है सताना ही सगा।
धूल में वह पद मिले जो है कलंकों से रँगा॥
वह विवस हो कर सदा दुख से सुनाता है यही।
वह धरा धँस जाय जिस पर हैं कभी लोथें ढही २७

यह भला है, यह बुरा है, वह समझता है सभी।
भूसियों में, छोड़ कर चावल नहीं फँसता कभी॥
जब ठिकाने है पहुँचता मोद पाता है तभी।
बात थोथी है नहीं मुँह से निकलती एक भी॥
है जहाँ पर चूक उसकी आँख पड़ती है वहीं।
जड़ पकड़ता है उलझता पत्तियों में वह नहीं॥२८॥

आदमी का ऐंठना, बढ़ना, बहँकना, बोलना।
रूठना, हँसना, मचलना, मुँह न अपना खोलना॥
संग बन जाना, कभी इन पत्तियों सा डोलना।
वह समझता है तराजू पर उसे है तोलना॥
है उसी ने ही पढ़ी जी की लिखावट को सही।
गुत्थियाँ उसकी सदा है ठीक सुलझाता वही ॥२९॥

देखता अंधा नहीं, उजले न होते हैं रँगे।
दौड़ता लँगड़ा नहीं, सोये नहीं होते जगे॥
क्यों न वह फिर रास्ते पर ठीक चलने से डगे।
हैं बहुत से रोग जिसके एक ही दिल को लगे॥
देख कर बिगड़ा किसी को वह नहीं करता गिला।
काम की कितनी दवायें हैं उसे देता पिला ॥३०॥

देख कर गिरते उठाता है, बिगड़ जाता नहीं।
वह छुड़ाता है, फँसे को और उलझाता नहीं॥
राह भूले को दिखा देता है भरमाता नहीं।
है बिगड़ते को बनाता आँख दिखलाता नहीं॥
सर अँधेरे में भला किसका न टकराया किया।
वह अँधेरा दूर करता है जलाता है दिया ॥ ३१ ॥

जीव जितने हैं जगत में, हैं उसे प्यारे बड़े।
दुख उसे होता है जो तिनका कहीं उनको गड़े॥
एक चींटी भी कहीं जो पाँव के नीचे पड़े।
तो अचानक देह के होते हैं सब रोयें खड़े॥
हैं छुटे उसकी दया से ये हरे पत्ते नहीं।
तोड़ते इनको उसे है पीर सी होती कहीं॥ ३२॥

काँप उठे सब लोक पत्ते की तरह धरती हिले।
राज धन जाता रहे पद मान मिट्टी में मिले॥
जीभ काटी जाय, फोड़ी जाँय आँखें, मुँह सिले।
सैकड़ों टुकड़े बदन हो, पर्त चमड़े की छिले॥
छोड़ सकता उस समय भी वह नहीं अपना धरम।
जब रहें हर एक रोयें नोचते चिमटे गरम ॥३३॥

धर्म्म बीरों की चले, सब लोग हो जावें भले।
भाइयों से भाइयों का जी न भूले भी जले॥
चन्द्रमा निकले धरम का पाप का बादल टले।
हे प्रभो संसार का हर एक घर फूले फले॥
इस धरा पर प्यार की प्यारी सुधा सब दिन बहे।
शान्ति की सब ओर सुन्दर चाँदनी छिटकी रहे ३४

——:०:——

भाषा का महत्त्व और हिन्दी पर विचार।

[पंडित माधव शुक्ल रचित।]

मुख के शब्द निकाल सदा उपयुक्त कहूँगा।
औ फिर अपनी कही बात पर सुदृढ़ रहूँगा॥
होती है उपयुक्त बात यद्यपि अतिशय कटु।
किन्तु कभी भी नहिं विचार करते इस का पटु॥
विद्वज्जन की हंस सम सदा उचित होनी प्रकृति।
इस से ही सब जगत में होती है तिनकी सुकृति॥१॥

हो सक्ती क्या किसी देश की कभी समुन्नति।
जब लौं होती रहै देश-भाषा की अवनति॥
क्या जर्मन, इङ्गलैण्ड, रूस, जापान दिखाते।
यदि निज भाषा भानु तुल्य कर नहिं चमकाते॥
भाषा है वह शक्ति जग जेता जिस को ही प्रथम।
छीन नष्ट कर डालते यही राजनीतिज्ञ क्रम॥२॥

होता जैसा देश नाम सोई प्रकार से
होती भाषा और जाति देखो विचार से॥
ज्यों इङ्गलिश-इङ्गलैण्ड, चीन चीनी, जापानी।
भाषा हिन्दी, देश हिन्द, त्यों हिन्दुस्तानी॥
यही नियम-विधि जगत में पालित होता अधिकतर॥
होती भाषा जाति दोउ देश नाम आधार पर॥३॥

विधि रचना में होता पहिले देश अङ्कुरित।
तदनन्तर जन-पत्र, जाति-शाखा, बहु निर्मित॥
उच्चारित जन शब्द शीघ्र, कलिका फिर बनकर।
करती भाषा रूप पुष्प प्रस्फुट अति सुन्दर॥
जिसकी शक्ति सुगंध से ज्ञान हृदय होता प्रकट।
पाकर जिसको सुजनजन धारण करते सुयश पट॥४॥

भाषारूपी रंग देशजल पड़ते हो छन।
हो जाता जलरूप रंगमय में परिवर्तन॥
तिससे फिर बहु विषय वस्त्र रंगे जाते हैं।
जिन्हें पहिन कर देश सुजन शोभा पाते हैं॥
भाषा है सुख मूल जग अरु रत्नन की खान है।
अमर देश को करन हित अमृत बिन्दु समान है॥५॥

देह प्राण का ज्यों घनिष्ठ सम्बन्ध अधिकतर।
है तिससे भी अधिक देश-भाषा का गुरुतर॥
बीते थोड़े दिवस प्राण भागत तज यह तन।
किन्तु न भाषा तजत देश यह विधि पकहु छन॥
हो करके बलहीन अरु विविध अनादर सहत है।
किन्तु प्रेमवश लपट कर सदा देश ही रहत है॥६॥

दीपक मानो देश, ज्योति जिसकी है भाषा।
रहत जबहिं लौ बनी तबहिं लौं रहत प्रकाशा॥
होते ही वह नष्ट दीपघनतम में पड़कर।
हो जाता है चूर चूर खा खाकर ठोकर॥
तिससे ज्योति बचाइये भाषारूपी कर जतन॥
नहिं, ढूँढे नहिं पाइहौ देशदीप कहुँ एक कन॥७॥

भाषा ही से हृदय भाव जाना जाता है।
शून्य किन्तु प्रत्यक्ष हुआ सा दिखलाता है॥
इसमें है यह शक्ति हृदय को हर लेती है।
चंचल लोगों को चित्रित सा कर देती है॥
नव रस आभूषण पहिन प्रकट होत मुख द्वार जब।
लखि प्रतच्छ मनहरण छबि मुग्ध कौन नहिं होत तब ८

देश जनों का मुख्य यही कर्तव्य अधिकतर।
सब मिल करते रहैं देश भाषा का आदर॥
इसमें ही कल्याण देश का निश्चय जानो।
बिन भाषा बलवती देश निःसारहि मानो॥
होता है ज्यों एक नृप विविध जाति युत देशहित।
भाषाओं में एक को राष्ट्र बनाना त्यों उचित॥९॥

हा! रहते हम हिन्द कहाते हिन्दुस्तानी।
किन्तु, न हिन्दी उचित रीति भाषा सन्मानी॥
इत उत डारत फिरत श्वान ज्यों मुख लालायित।
तथा हमहुं आचरत पेट निज पालन के हित॥
बिन भाषा निज देश की दुर्गति देखहु आज सब।
मिथ्या गर्व न आर्यपन कोउ सहाय नहिं होत अब १०

बिन भाषा की जाति नहीं शोभा पाती है।
और देश की मरयादा भी घट जाती है॥
इस पर भी कर सको न यदि हिन्दी का आदर।
रहना चाहो बने सदा पौरुषहत कादर॥

ा करते हो नष्ट क्यों दैव नियम को खण्ड कर।
मेटो हिन्दू हिन्द भी दोउ हरताल लगाय कर ॥ ११ ॥

हिन्दी ऐसी स्वच्छ, शुद्ध, सुस्पष्ट सरल तर।
जिसके सम नहि है कोई भाषा भूतल पर ॥
पढ़ने में अति सरस, सुकोमल, सुललित, मृदुतम।
मुख्य अर्थप्रद, कबहुँ न होता है जिससे भ्रम।
विधि अतिशयनिजकरकृपा दिया तुमहिं को यह रतन
किन्तु न राखत बनत हा! अहो बंधुगन! कर जतन १२

है अति सुन्दर देवनागरी इसका अक्षर।
जिन में हैं वेदादि ग्रंथ संलिखित निरन्तर ॥
संस्कृत भाषा सर्व मान्य इस जग में जो है।
पोषक अरु उत्पत्ति द्वार हिन्दी की सो है ॥
गणना में भाषान के यही गुणाकर एक है।
तिससे करना इसी को उचित राज्य अभिषेक है ॥ १३ ॥

केवल हिन्दू बीस कोटि हैं हिन्द देश में।
विविध भेद हैं तिनमें भाषा और वेष में ॥
किन्तु अधिक भाषा हैं ज्यों पंजाबी, गुर्जर।
बङ्ग मराठी आदि स्वल्पही जिनमें अन्तर ॥
बोल चाल अरु लिखन सब हिन्दी से बहु मिलित है।
तिस कारण से भी इसी को ही गुरुता विहित है ॥ १४ ॥

तामिल तेल्गू आदि द्रविड़ भाषा ऐसी हैं।
जो हिन्दी से नहि विशेषता से मिलती हैं
तिनका भी कुछ संस्कृत से मिलने के कारण
हो सकता यह कष्ट सरल में ही विनिवारण
पाये जाते तहाँ भी हिन्दी के जन रसिक हैं।
जन हिन्दी के पक्ष में यदि देखो तो अधिक हैं ॥ १५ ॥

बहु गुणागरी लिपि सुनागरी कहलाती है।
यह भी थोड़ा श्रम करने से आ जाती है ॥
हैं इस से ही भरे हमारे ग्रंथ पुरातन।
इसकी सुस्पष्टता सरलता भासित जन जन ॥
लिपि को भी नहिं होयगी देने में राष्ट्रीय पद।
किसी भाँति नागरीहित जनित देशजन कुछ विपद १६

—:०:—

सम्मेलन समित्यष्टक ।

[पंडित मनोहरलाल मिश्र रचित ।]

लावनी ।

हिन्दी साहित सम्मेलन का,
काशीपुर में मेला है।
उठ बैठो हिन्दी के हितैषी,
आई अमृत बेला है ॥ टेक ॥
चन्द्र ग्रहण अरु सूर्य्य ग्रहण,
बारुणी सोमबारी न्हाते ।
कुम्भ आदि शुभ पर्व कहावत,
नित प्रति आते जाते ॥
कोउ वर्ष कोउ बार बरस में,
कोउ छत्तिस बरसै बीते ।
दान धर्म असनान किये का,
फल होता ऋषि मुनि गाते ॥
जो जन इनको नहिँ मानत हैं,
लहि अघ अपयश हेला है।
उठ बैठो हिन्दी के हितैषी,
आई अमृत बेला है ॥ १ ॥

लख चौरासी योनि कठिन है,
आरज कुल सपूत मानैं ।
रामकृपा बिन मिलत नहीं है,
सुर दुर्लभ सबही जानैं ॥
नर तन पर्वा मिलन कठिन है,
काशीपुर अस शुभथानैं ।
नवरात्री नवदुर्गा पूजन,
नवविधान युक्ती ठानैं ॥
सभ्यशिरोमणि देश भरे के,
विद्वानों का खेला है ।
उठ बैठो हिन्दी के हितैषी,
आई अमृत बेला है ॥ २ ॥

ऐसे मनुज शरीर पर्व में,
जिन नाहीं कर्त्तव्य किया ।
जगमग ज्योति प्रकाशन के हित,
पुरुष नहीं पुरुषार्थ किया ।
मनसा बाचा और कर्म्मणा,
नहिं हिन्दी हित ध्यान दिया ॥
उलटी सीधी बात बना कर,
निष्कारण दुर्बाद किया ॥
सम्मेलन के बने विरोधी,
नाहक कौन झमेला है ।
उठ बैठो हिन्दी के हितैषी,
आई अमृत बेला है ॥ ३ ॥

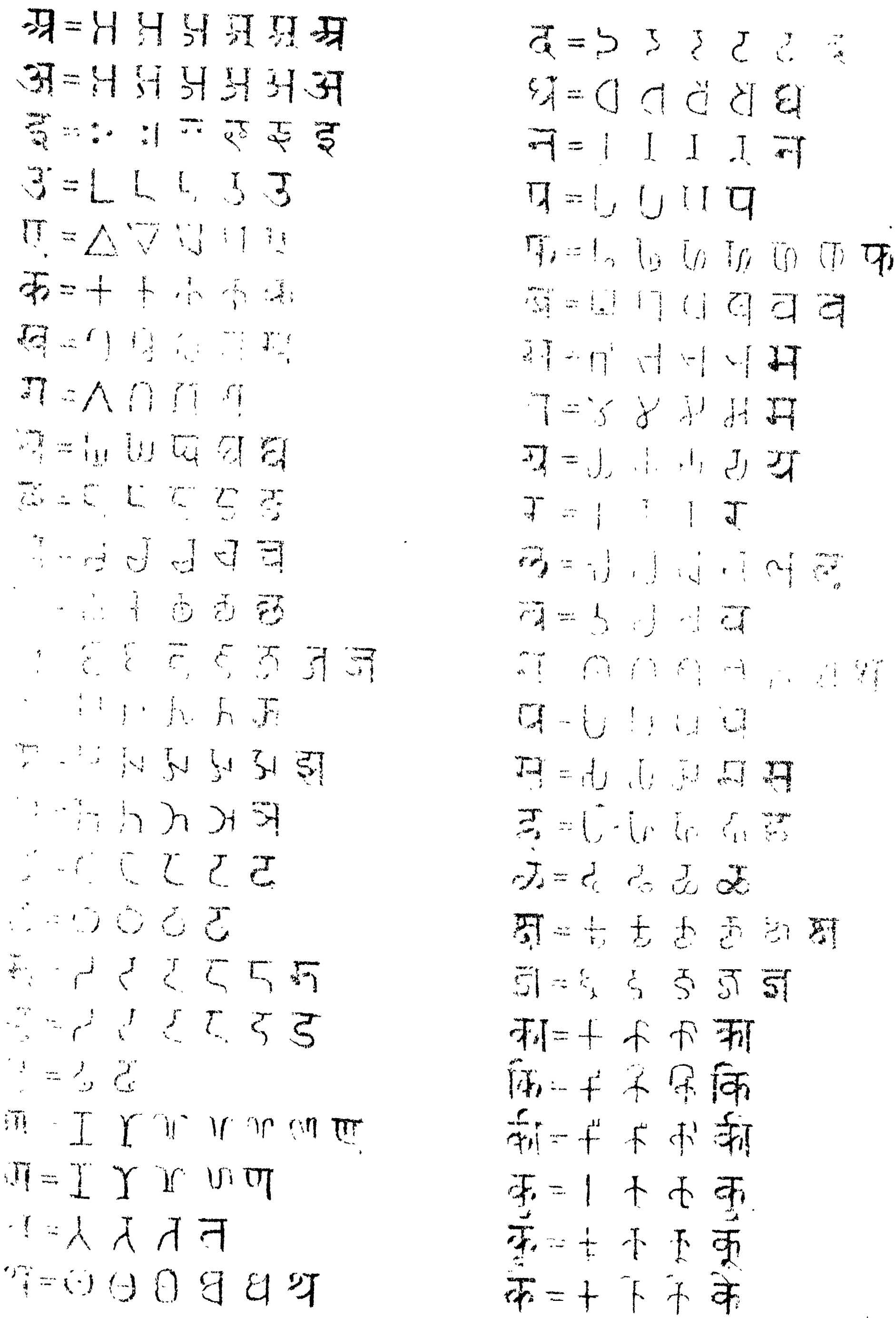
पूर्वा अरु उत्तराषाढ में,
शक्ती शांति प्रदाता है ।
श्रवण लगत सचेत हो जाओ
कर्तव्य कर्म बिधाता है ॥
अब तक जगरानी जगदम्बा,
प्रतिमा पूजन माता है ।
प्रसन्न हो भारती भवानी,
प्रतिभा पूरण दाता है ॥
उन्मीलन कर नेत्र खोलिये,
सन्मुख भयो उजेला है ।
उठ बैठो हिन्दी के हितैषी,
आई अमृत बेला है ॥ ४ ॥

भई प्रसन्न भवानी प्रतिभा,
दर्शन प्राचीदिशि कीजै ।
अरु वक्ताओं की वाणी को,
अमृतधारा पी लीजै ॥
मोहनमदन सदन गुन केरे,
बचन मनोहर सुन लीजै ।
रामावतार सुधाकर जी की,
मधुर सुधा का रस पीजै ॥
श्यामविहारी साहित ज्ञाता,
श्रीधर संत अकेला है ।
उठ बैठो हिन्दी के हितैषी,
आई अमृत बेला है ॥ ५ ॥

सोचो भैय्या जुर मिल सब ,
किस विधि हिन्दी हित साधन हो ।
प्रथम उसी की पूर्तिकरन में ,
सब का चित्त अराधन हो ॥
एक बात जो ध्यान में आई ,
सो सब को बतलाते हैं ।
होमियोपैथिक विज्ञ चिकित्सक ,
प्रायः आदर पाते हैं ॥
उस विद्या का निज भाषा में ,
ग्रंथ नहीं अलबेला है ।
उठ बैठो हिन्दी के हितैषी ,
आई अमृत बेला है ॥ ६ ॥
औन कमी हो निज भँडार में ,
उसको पूरण प्रथम करो ।
कोष नागरी परिपूरण का ,
सबसे पहिले ध्यान धरो ॥
युक्तदेश के राजद्वार में ,
हिन्दी लिपि विस्तार करो ।
पुस्तक निर्धारणी सभा में ,
निज प्रतिनिधी प्रवेश करो ॥
इतिहास रचौ व्याकरण दुरंगी ,
के दुर्भाव सुठेला है ।
उठ बैठो हिन्दी के हितैषी ,
आई अमृत बेला है ॥ ७ ॥
वैज्ञानिक इतिहासिक ग्रंथरु ,
उपन्यास शिक्षा वारे ।
हिन्दी के प्राचीन रत्न जो ,
अनुमुद्रित शुभगुन वारे ॥
वर्तमान जो सभा उपस्थित ,
काम बाँट दो तुम न्यारे ।
सम्पादक समाज का रोपण ,
कर दीजै विधिवत प्यारे ॥
"भारतेन्दु" का पदक नियत कर ,
हिन्दी "रसिक" सुगेला है ।
उठ बैठो हिन्दी के हितैषी,
आई अमृत बेला है ॥ ८ ॥

——:०:——

नागरी अक्षरों की उत्पत्ति का चित्र



वर्तमान नागरी अक्षरों की उत्पत्ति।

[पंडित गौरीशंकर हीराचंद ओझा लिखित ।]

मनुष्य अपनी रचना में सदा परिवर्तन-शील होता है इसी से मनुष्य की निर्माण की हुई समस्त वस्तुओं में समय के साथ सदा परिवर्तन होता ही रहता है। दुनिया भर की समस्त लिपियों में छापे के यंत्र की शोध के पूर्व समय के साथ बहुत कुछ अंतर पाया जाता है और यही दशा हमारी नागरी लिपि की भी हुई है। मध्य एशिया, जापान आदि से मिले हुए थोड़े से नागरी लिपि के प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थों एवं हमारे यहाँ से मिले हुए असंख्य प्राचीन शिला लेख, ताम्रपत्र और सिक्कों की नागरी लिपि में वर्तमान नागरी लिपि से बड़ा अंतर है जो समय के साथ क्रमशः क्रमशः होता गया है। जिसको प्राचीन नागरी लिपि का बोध न हो ऐसे विद्वान् के सामने यदि अशोक के लेख का फ़ोटो रख दिया जाय तो वह उसकी लिपि को कभी नागरी न कहेगा, इतना ही नहीं किन्तु वह इस बात को सहसा स्वीकार भी न करेगा कि उस विलक्षण लिपि में परिवर्तन होते होते हमारी वर्तमान नागरी लिपि बनी है।

वर्तमान नागरी लिपि का मूल अर्थात् प्राचीन रूप मौर्यवंश के प्रतापी राजा अशोक के शिलालेखों की लिपि में मिलता है जो (लेख) विक्रम संवत् से क़रीब २०० वर्ष पूर्व के हैं और काठियावाड़ से उड़ीसे तक और नेपाल की तराई से माइसोर तक अनेक स्थानों में मिले हैं। अशोक के समय वह लिपि बहुधा सारे हिन्दुस्तान में वैसी ही प्रचलित थी जैसी कि इस समय नागरी लिपि है। अशोक के पूर्व नागरी का क्या रूप था और उसमें कैसे कैसे परि-वर्तन होने के पश्चात् वह उस स्थिति को पहुँची यह जानने के लिये अब तक ठीक साधन उपलब्ध नहीं हुए हैं[१] अतएव अभी तो हमको अशोक के समय की लिपि को ही अपनी नागरी लिपि का उत्पत्ति-स्थान मानना चाहिए।

अशोक के समय की नागरी लिपि भारतवासियों ने ही निर्माण की या उन्होंने दूसरों से ग्रहण की इस विषय में भिन्न भिन्न विद्वानों के मत भिन्न भिन्न हैं। इस छोटे से लेख में उक्त विवाद-ग्रस्त विषय को स्थान देना मैं उचित नहीं समझता किन्तु जिनको उक्त विषय में विशेष जानने की इच्छा हो उनको मेरी बनाई हुई 'प्राचीन लिपिमाला' में "पाली[२] लिपि आर्य लोगों ने ही निर्माण की है" इस विषय का लेख तथा 'इण्डियन् ऐंटिक्वेरी' में छपा हुआ आर० शामा शास्त्री, बी० ए० का देवनागरी लिपि की उत्पत्ति विषयक लेख पढ़ने का मैं आग्रह करता हूँ।

इस लेख का उद्देश केवल यही बतलाने का है कि अशोक के समय की लिपि में किस प्रकार के परिवर्तन होने के पश्चात् नागरी लिपि वर्तमान स्थिति को पहुँची है।

१ अशोक के समय से पूर्व का अब तक एकही छोटा सा लेख मिला है जो नेपाल की तराई के पिप्रावा नामक स्थान में शाक्य जाति के लोगों के बनवाए हुए एक बौद्ध स्तूप के भीतर रक्खे हुए एक छोटे से पत्थर के पात्र पर एक ही पंक्ति में खुदा है। उसमें नागरी लिपि के केवल १४ अक्षरों के प्राचीन रूप मिलते हैं। उनमें और अशोक के लेखों की लिपि में विशेष अंतर नहीं है। भेद इतना ही है कि उनमें दीर्घ स्वर चिह्नों का अभाव है।

२ पाली—प्राचीन नागरी। यूरोपियन् विद्वानों ने अशोक के लेखों की लिपि का नाम 'पाली' लिपि रक्खा है, परन्तु उसके लिये कोई प्राचीन लिखित प्रमाण नहीं मिलता।

अशोक के समय की लिपि का नाम 'ललितविस्तार' में 'ब्राह्मी' लिपि मिलता है, और 'नित्याषोडषिकार्णव' के भाष्य 'सेतुबंध' में भास्करानन्द उसका नाम 'नागर' (नागरी) लिपि होना मानता है क्योंकि वह लिखता है कि "नागर लिपि में 'ए' का रूप त्रिकोण है[1]" जैसा कि अशोक के लेखों में मिलता है।

'नागरी' यह 'देवनागरी' का संक्षिप्त रूप है और इस लिपि का नाम 'देवनागरी' कहलाने का कारण उक्त शामा शास्त्री के मतानुसार यह पाया जाता है कि देवताओं की प्रतिमाओं के बनने के पूर्व उनकी उपासना सांकेतिक चिह्नों द्वारा होती थी जो कई प्रकार के त्रिकोणादि यंत्रों के मध्य में लिखे जाते थे और वे यंत्र 'देवनगर' कहलाते थे। उन देवनगरों के मध्य लिखे जानेवाले अनेक प्रकार के सांकेतिक चिह्न कालान्तर में अक्षर माने जाने लगे इसीसे उनका नाम 'देवनागरी' हुआ।

यह कहना अनुचित न होगा कि अशोक के लेखों की नागरी लिपि वर्तमान नागरी से अधिक सरल थी और गुजराती लिपि की तरह उसके अक्षरों के सिर नहीं बनते थे, परन्तु पीछे के लेखकों के हाथ से उसके अनेक रूपान्तर हुए जिनके मुख्य तीन कारण अनुमान किए जा सकते हैं।

(१) अक्षरों के सिर बनाना।
(२) अक्षरों को सुन्दर बनाने का यत्न करना।
(३) त्वरा से लिखना तथा क़लम को उठाए बिना अक्षर को पूरा लिखना।

अशोक के समय की लिपि में किस प्रकार के परिवर्तन होने के पश्चात् वह वर्तमान नागरी लिपि की स्थिति को पहुँची है यह बतलानेवाला एक नक़्शा[1] इस लेख के साथ दिया गया है जिसमें प्रथम वर्तमान नागरी लिपि का प्रत्येक अक्षर लिख कर उसके आगे = चिह्न रक्खा है, जिसके पीछे बहुधा प्रत्येक अक्षर का अशोक के समय का रूप तथा उसके समस्त रूपान्तर, जो समय समय पर हुए; दिए गए हैं। इन रूपान्तरों का विवरण नीचे लिखा जाता है—

अ--इसका पहिला रूप गिरनार पर्वत (काठियावाड़ में) के पास के एक चट्टान पर खुदे हुए उपर्युक्त राजा अशोक के लेख से लिया गया है। (बहुधा प्रत्येक अक्षर का पहिला रूप अशोक के लेख से ही लिया गया है अतएव आगे पहिले रूप का विवरण नहीं लिखा जायगा।) दूसरा रूप कुशनवंशी राजाओं के लेखों[2] में (जो ईसवी सन् की दूसरी शताब्दी के आस पास के हैं), उच्छकल्प के महाराज शर्वनाथ के ताम्रपत्र में (जो कलचुरि संवत् २१४ = वि० सं० ५२० =

---

१ कोणत्रयवदुद्भवो लेखो यस्य तत्। नागरलिप्या सम्प्रदायिकैरेकारस्य त्रिकोणाकारतयैव लेखनात्॥

१ यह नक़्शा मैंने प्रथम वि० सं० १९५१ (ई० स० १८९४) में तैयार कर 'प्राचीन लिपिमाला' नामक पुस्तक में छपवाया था (लिपि पत्र ५१ वे में)। कुछ समय पीछे इसको सुधारकर एक बड़े नक़्शे के रूप में तैयार कर 'नागरी प्रचारिणी सभा, बनारस' को भेंट किया जो अब तक उक्त सभा के पुस्तकालय में रक्खा हुआ है। इसी की हाथ से तय्यार की हुई नक़ल बनारस के सिद्धेश्वर प्रेस में छपी और 'सरस्वती' की दूसरी जिल्द में इसकी फोटो से तैयार की हुई कापी बड़ी उत्तमता से छपी। जिसके पीछे यह एक बार फिर 'सरस्वती' में छपा और 'लिपिबोध' नामक पुस्तक के कर्ता ने भी अपनी पुस्तक में इसकी अविकल नक़ल छापी परन्तु इन पिछले दोनों प्रकाशकों ने इसके कर्ता का नाम लिखने का श्रम नहीं किया। जो चित्र इस लेख के साथ दिया गया है वह सरस्वती में छपे प्लेट से लिया गया है।

२ कुशनवंशी (तुरुष्क–तुर्क) राजाओं के प्राचीन नागरी लिपि के लेख विशेष कर मथुरा तथा उसके आस पास के प्रदेश से मिले हैं।

ई० स० ४६३ का है), तथा मेवाड़ के गुहिल-वंशी राजा अपराजित के लेख में (जो वि० सं० ७१८=ई० स० ६६१ का है) मिलता है। इसमें सिर बनाने का यत्न स्पष्ट पाया जाता है। प्रारंभ में अक्षरों के सिर बहुत छोटे बनते थे परन्तु पीछे से बहुधा सारे अक्षर पर बनने लगे। प्रारंभ में यह यत्न भी अक्षर को सुन्दर बनाने के उद्देश से किया गया हो ऐसा अनुमान होता है। तीसरा रूप दूसरे रूप से मिलता हुआ है, अंतर केवल इतना ही है कि दूसरे रूप में नीचे के बाईं ओर के हिस्से में सुंदरता की दृष्टि से जो घुमाव डाला गया है उसका सम्बन्ध मूल अक्षर से तोड़ दिया है। चौथे और पाँचवें रूप में 'अ' की दाहिनी तरफ़ की खड़ी लकीर को सुन्दर बनाने का यत्न पाया जाता है जिससे अक्षर की आकृति में विशेष अन्तर हो गया है। ये रूप ई० स० की नवीं शताब्दी के आस पास से लगाकर तेरहवीं शताब्दी तक के अनेक लेखों तथा हस्तलिखित पुस्तकों में मिलते हैं। कई जैन लेखक तो अब तक हरेक खड़ी लकीर के अंत को सुन्दरता के विचार से हलंत के चिह्न का सा रूप दे देते हैं।

अ—'अ' का यह रूप अब बहुधा दक्षिण में लिखा जाता है और ऊपर लिखे हुए 'अ' के तीसरे रूप को उसको वास्तविक स्थिति में रहने देने अर्थात् उसमें सुन्दरता लाने का यत्न न करने से ही इसकी उत्पत्ति हुई है। अनेक शिलालेखों, ताम्रपत्रों तथा हस्तलिखित पुस्तकों में इसके चौथे और पाँचवें रूप मिलते हैं (देखो 'प्राचीन लिपिमाला' लिपिपत्र ५ वाँ, १२ वाँ, १३ वाँ, १६ वाँ, १७ वाँ, और १८ वाँ)।

इ—का दूसरा रूप गुप्तवंशी राजा समुद्रगुप्त के इलाहाबाद के लेख में (जो ई० स० की चौथी शताब्दी का है) तथा स्कंदगुप्त के समय के कहाऊँ के लेख में (जो गुप्त संवत् १४१=वि० संवत् ५१७='ई० स० ४६० का है) मिलता है, जिसमें 'इ' की बिन्दियों पर सिर बनाने का यत्न किया गया है। चौथा रूप हैहय (कलचुरि) वंशी राजा जाजल्लदेव के चेदो संवत् ८६६ (वि० सं० ११७१=ई० स० १११४) के लेख में (प्राचीन लिपिमाला; लिपिपत्र १९ वाँ) तथा कई हस्तलिखित प्राचीन पुस्तकों में पाया जाता है। पाँचवाँ रूप १३ वीं शताब्दी के आस पास के शिलालेखों तथा पुस्तकों में मिलता है और वर्तमान 'इ' से बहुत कुछ मिलता हुआ है।

उ—के दूसरे रूप में सिर बनाया व नीचे के आड़ी लकीर के अंतिम भाग को सुन्दरता के विचार से कुछ नीचे को झुकाया है। कुशनवंशी राजाओं के लेखों में यह रूप मिलता है। उक्त झुकाव को बढ़ा देने से चौथे रूप की सृष्टि हुई है जो अनेक लेखों में मिलता है। (प्राचीन लिपिमाला; लिपिपत्र ५ वाँ, १२ वाँ और १३ वाँ)

ए—के दूसरे रूप में त्रिकोण को उलटा दिया है जिस से ऊपर की तरफ़ सिर सा दीखता है। यह रूप उपर्युक्त समुद्रगुप्त के लेख में तथा कई अन्य लेखादि में मिलता है। (प्राचीन लिपिमाला. लिपिपत्र ३ रा, १२ वाँ और १३ वाँ) चौथे रूप में शुद्ध त्रिकोण की शक्ल पलट कर वर्तमान 'ए' का प्रादुर्भाव दीख पड़ता है। यह रूप मंदसौर (मालवे में) से मिले हुए राजा यशोधर्म के लेख में (जो मालव संवत् ५८९=ई० स० ५३२ का है), मारवाड़ के पड़िहार राजा कक्कुक के समय के वि० सं० ९१८ (ई० स० ८६१) के लेख में तथा कई दूसरे लेखों में मिलता है। (प्रा० लि० ५ वाँ और १६ वाँ) पाँचवाँ रूप जो वर्तमान 'ए' से बहुतही मिलता हुआ है। राठौड़ राजा गोविन्द-राज (तीसरे) के शक संवत ७३० (वि० सं० ८६५=ई० सं० ८०७) के, परमार राजा वाकपति राज (मुंज) के वि० सं० १०३१ (ई० स० ९७४) के, और कलचुरी राजा कर्णदेव के कलचुरी सं० ७९३ (वि० सं० १० ९९=ई० स० १०४२) के

ताम्रपत्रों में तथा कई अन्य शिलालेखों व पुस्तकों में मिलता है।

इस लेख के साथ के नक़शे में दर्ज किए हुए बहुधा प्रत्येक अक्षर के भिन्न भिन्न रूप अनेक शिला लेखों, ताम्रपत्रों तथा पुस्तकों में मिलते हैं। यदि उन सब के नाम, समय आदि का उल्लेख किया जाय तो एक छोटी सी पुस्तक बन जाय इसलिये आगे बहुधा उनका संक्षेप से उल्लेख किया जायगा और 'प्राचीन लिपिमाला' के लिपि पत्र का नंबर दे दिया जायगा, जिसको देखने से उसके समय आदि का वृत्तान्त मालूम हो जायगा।

क—के दूसरे रूप में सिर बनाने का यत्न पाया जाता है एवं बीच की आड़ी लकीर को झुका दिया है। (प्रा० लि० ३ रा, ५ वाँ और ९ वाँ) तीसरे रूप में बीच की लकीर का झुकाव बढ़ा दिया है। यह रूप उपर्युक्त कलचुरी राजा कर्णदेव के ताम्रपत्र में मिलता है। चौथा रूप अनेक लेखों में पाया जाता है (प्रा० लि० १३ वाँ, १६ वाँ, १७ वाँ १८ वाँ; १९ वाँ,)

ख—का दूसरा रूप कुशनवंशी राजाओं के लेखों में तथा गिरनार पर्वत के पास के उपर्युक्त चट्टान पर खुदे हुए क्षत्रपवंश के राजा रुद्रदामा के लेख में, जो ई. स. की दूसरी शताब्दी का है (प्रा० लि० २ रा) मिलता है। तीसरे रूप में सिर बनाने के कारण अक्षर के दो खंड हो गए हैं, जिन में से पहिले खंड अर्थात् खड़ी लकीर के नीचे के हिस्से को सुन्दर बनाने का यत्न किया गया है। इस प्रकार उक्त अक्षर के 'र' और 'व' ये दो रूप बन गए (चौथे रूप में स्पष्ट है) जिनको मिला कर लिखने से ही 'ख' बनता है (प्रा० लि० १२, १३, १६)।

ग—'ख' की नांई 'ग' के रूपान्तरों का मुख्य कारण सिर बनाना है। दूसरे रूप में ऊपर के कोण के स्थान में वक्रता पाई जाती है। यह रूप मथुरा के क्षत्रप राजा सोडास, और प्रसिद्ध क्षत्रप राजा नहपान के जवांई शक उषवदात के लेखों में तथा कई दूसरे लेखों में भी मिलता है। इसी रूप के ऊपर सिर बनाने तथा पहिली खड़ी लकीर को ज़रा बांई तरफ मोड़ देने से तीसरे रूप की उत्पत्ति हुई है जो वर्तमान 'ग' से मिलता हुआ ही है (प्रा० लि० ९, १२, १३, १६, आदि)।

घ—के दूसरे रूप के सिर बनाया गया है और दाहिनी ओर की दोनों ऊर्ध्व रेखाओं की ऊँचाई बढ़ाई गई है। यह रूप उपर्युक्त मालवा के राजा यशोधर्म के मंदसौर के लेख में मिलता है (प्रा० लि० ५)। इसी का सिर पूरा बनाने तथा त्वरा के कारण अक्षर को कुछ टेढ़ा लिखने से तीसरा रूप बना है जो वर्तमान 'घ' से मिलता हुआ है। चौथा रूप भी उसी से मिलता हुआ ही है।

ङ—यह अक्षर अशोक के किसी लेख में नहीं मिलता। यह पहिले पहिल कुशनवंशियों के लेखों में संयुक्ताक्षरों में पाया जाता है। इसका पहिला रूप उपर्युक्त समुद्र गुप्त के लेख के एक संयुक्ताक्षर से लिया गया है। (प्रा० लि० ३) पीछे से इसके नीचे के हिस्से की गोलाई बढ़ती गई और इसकी आकृति 'ड' से मिलने लगी जिससे इसको उससे भिन्न बनाने के लिये इस के सिर के अंत में गाँठ लगाई जाने लगी (देखो रूप चौथा) जो कहीं चतुरस्र, कहीं गोल और कहीं त्रिकोण सी मिलती है। (प्रा० लि० ९, १३, २१, २३, २४) इस गाँठ का प्रादुर्भाव ई० स० की आठवीं शताब्दी के आस पास होना पाया जाता है। पीछे से यह बिंदी के रूप में अक्षर के मध्य भाग में लगाई जाने लगी।

च—के दूसरे हिस्से में सिर के अतिरिक्त बाईं ओर के नीचे के हिस्से पर नोक सी बनी है। तीसरे रूप में वर्तमान 'च' की आकृति कुछ दीख पड़ती है

जो चौथे रूप में पूरी बनगई है। (प्रा० लि०२.४, ८,९,१६,१७,१९,२०)।

बहुधा दूसरे या तीसरे रूप से प्रत्येक अक्षर का सिर बना है अतएव अब सिर का उल्लेख जहाँ कहीं विशेष आवश्यकता होगी वहीं किया जायगा।

छ—के दूसरे रूप में खड़ी लकीर वृत्त को पार कर बाहिर निकल गई है। (प्रा० लि० १६) तीसरा रूप कन्नौज के गहरवार (राठौड़) वंशी प्रसिद्ध राजा जयचंद के वि० सं० १२३२ (ई० स० ११७५) के, और मालवा के परमारवंशी महाकुमार उदयवर्मा के वि० सं० १२५६ (ई० स० १२००) के ताम्रपत्र में मिलता है

ज—के दूसरे रूप में नीचे के हिस्से को कुछ आगे बढा कर सुन्दर बनाने के लिये कुछ नीचे झुकाया है। (प्रा० लि० ५,९); उसी हिस्से को बाईं ओर घुमाने से तीसरा रूप बना है। (प्रा० लि० ११, १२) चौथा रूप वर्तमान 'ज' से मिलता हुआ ही है (प्रा० लि० १३) और पाँचवाँ रूप तो इस समय तक कहीं कहीं लिखा जाता है।

झ—'झ' अक्षर प्राचीन लेखादि में बहुत ही कम मिलता है। इसका दूसरा रूप ब्राह्मण राजा शिवगण के कंसवाँ (कोटा से कुछ दूर) के वि० सं० ७९५ (ई० स० ७३८) के लेख में और तीसरा राठौड़ राजा गोविंदराज (तीसरे) के शक सं० ७३० (वि० सं० ८६४= ई० स० ८०७) के ताम्रपत्र में मिलता है। चौथा रूप 'म' (झ) से मिलता हुआ है। 'झ' का यह रूप कितनीक छपी हुई जैन पुस्तकों में मिलता है और राजपुताने में बहुधा यही रूप लिखा जाता है।

झ—'झ' का यह रूप विशेष कर दक्षिण में प्रचलित है इसके तीन रूप ऊपर के 'म' के पहिले दो रूपों के सदृश हैं। तीसरे रूप के नीचे के हिस्से में गांठ लगाने से चौथा रूप बना है जो प्राचीन हस्तलिखित पुस्तकों में कहीं कहीं मिल जाता है।

वर्तमान नागरी लिपि में जो 'झ' अक्षर लिखा जाता है उसकी उत्पत्ति कैसे हुई यह पाया नहीं जाता, क्योंकि प्राचीन हस्तलिखित पुस्तकों में कहीं उसका प्रयोग पाया नहीं जाता।

ञ—यह वर्ण प्राकृत लेखों में मिलता है और संस्कृत-लेखों में बहुधा संयुक्ताक्षरों में ही पाया जाता है। इसका दूसरा रूप उपर्युक्त मेवाड़ के गुहिल राजा अपराजित के समय के वि० सं० ७१८ (ई० स० ६६१) के लेख में (प्रा० लि० ११) और तीसरा कुमार गुप्त के समय के मंदसौर के लेख में (प्रा० लि० ४) मिलता है, जो वि० सं० ५२९ (ई० स० ४७२) का है। तीसरे रूप की दाहिनी ओर की खड़ी लकीर को ऊपर की तरफ बढ़ाने से चौथा रूप बना है, जो वर्तमान 'ञ' से मिलता हुआ ही है।

ट—का दूसरा रूप पहिले से मिलता हुआ है और सिर बनाने के कारण ऊपर के हिस्से में कुछ परिवर्तन मालूम होता है। (प्रा० लि० ३,४,७,८) तीसरा व चौथा रूप वर्तमान 'ट' से मिलता हुआ ही है (प्रा० लि० १२)।

ठ—का दूसरा रूप केवल सिर बनाए जाने के कारण बना है बाक़ी इसमें और पहिले रूप में कोई भेद नहीं है। (प्रा० लि० ७) तीसरे रूप में सिर तथा नीचे के वृत्ताकार हिस्से के बीच में छोटी सी खड़ी लकीर रहने के कारण ठीक वर्तमान 'ठ' बनगया है (प्रा० लि० १३, १७, १९)।

ड—'ड' का यह रूप जैन पुस्तकों में मिलता है और राजपुताने में अब तक 'ड' बहुधा ऐसा ही (ड) लिखा जाता है इसके दूसरे रूप में नीचे का हिस्सा कुछ दाहिनी ओर को बढ़ाया गया है, जिसका कारण त्वरा से लिखना अनुमान किया जाता है। इससे मिलता हुआ रूप उडीसे की हाथी गुम्फा (कटक से कुछ दूर) में खुदे हुए जैन राजा खारवेल के लेख में पाया जाता है,

जो ई० स० पूर्व की दूसरी शताब्दी के क़रीब का है। दूसरे रूप को सुन्दर बनाने या त्वरा से लिखने के कारण तीसरा व चैाथा रूप बना हो। (प्रा० लि० ८)। पाँचवाँ रूप वर्तमान 'म' (ड) से बहुत कुछ मिलता हुआ है। (प्रा० लि० ११)

ड—इसके पहिले चार रूप तो ऊपर के 'म' के समान ही हैं पाँचवें रूप में मध्य का घुमाव बढ़ा देने के कारण उसकी आकृति वर्तमान 'ड' के सदृश बन गई है। (प्रा० लि० १८,१९)

ढ—वर्तमान नागरी लिपि की वर्णमाला में केवल एक "ढ" अक्षर ही अपनी प्राचीन स्थिति में बना रहा है। केवल उसपर सिर बढ़ाया गया है।

ग़—का दूसरा तथा तीसरा रूप कुशनवंशियों के लेखों में मिलता है। चैाथे से छटे तक के रूप अनेक लेखादि में पाए जाते हैं (प्रा० लि० ३, ५, ९, १०, ११, १२, १३, १६, १७, १८)। छठे रूप में सिर बढ़ा देने से वर्तमान "ग़" बना है।

ण—"ग़" का यह रूप दक्षिण में प्रचलित है। इसके भेद ऊपर के "ग़" के अनुसार ही हैं। उसके चैाथे रूप के सिर जोड़ देने से यह रूप (ण) बना है।

त—का दूसरा रूप वर्तमान "त" से मिलता हुआ है (प्रा० लि० ११)।

थ—का दूसरा रूप उपर्युक्त समुद्रगुप्त के लेख में मिलता है (प्रा० लि० ३)। तीसरे से पाँचवें तक के रूप अनेक लेखों में पाए जाते हैं। (प्रा० लि० ४, ५, ९, १२, १३, १६, १८, १९, २०)

द—का दूसरा रूप अशोक के जोगड़ (मद्रास हाते के गंजाम ज़िले में) के लेख में तथा पभोसा (=प्रभास, अलाहाबाद से ३२ मील के अंतर पर यमुना तट पर) के लेखों में (जो ई० स० पूर्व की दूसरी शताब्दी के हैं) मिलता है। तीसरा कुशनवंशियों के लेखों में और चैाथा अनेक लेखों में पाया जाता है। (प्रा० लि० ३, ९, १३) पाँचवाँ रूप वर्तमान "द" से मिलता हुआ है।

ध—का दूसरा रूप कनैाज के पड़िहार राजा भोजदेव के ग्वालिअर के लेख में (जो वि० सं० ९३३=ई० स० ८७६ का है) तथा देवलगाँव (पीलीभीत से २० मील पर) की प्रशस्ति में (जो वि० सं० १०४९=ई० स० ९९२ की है) पाया जाता है। तीसरा रूप कन्नौज के गहरवार (राठैाड़) राजा जयचंद्र के वि० सं० १२३२ (ई० स० ११७५) के ताम्रपत्र में मिलता है। चैाथा रूप वर्तमान "ध" से बहुत कुछ मिलता हुआ है। (प्रा० लि० २०)

न—का दूसरा रूप उपर्युक्त क्षत्रप राजा रुद्रदामा के लेख में (प्रा० लि० २) और तीसरा राजानक लक्ष्मणचन्द्र के समय के वैद्यनाथ के लेख में (शक सं० ७२६=वि० सं० ८६१=ई० स० ८०४ का है) मिलता है। चैाथा तीसरे का ही रूपान्तर है।

प—का दूसरा रूप पहिले रूप से मिलता हुआ है। तीसरा अनेक लेखों में पाया जाता है (प्रा० लि० ३, ११, १२, १७, १८)।

फ—का दूसरा रूप पहिले से मिलता हुआ ही है। तीसरा रूप समुद्रगुप्त के लेख में पाया जाता है। चैाथा रूप तीसरे को त्वरा से लिखने के कारण उत्पन्न हुआ हो ऐसा प्रतीत होता है, और अनेक प्राचीन हस्तलिखित पुस्तकों में मिलता है। पाँचवाँ चैाथे से मिलता हुआ है और उसी से छठा रूप बना है।

ब—का दूसरा रूप उपर्युक्त राजा यशोधर्म के लेख में (प्रा० लि० ५) तथा कई अन्य लेखों में मिलता है। (प्रा० लि० ११, १३) तीसरा रूप

"प" से मिलता हुआ है। (प्रा० लि० १८) कहीं कहीं "व" के समान भी पाया जाता है। इसको उक्त अक्षरों "प" और "व" से भिन्न बनाने के लिये इसके बीच में एक बिंदी लगाने लगे जिससे चौथा रूप बना। पाँचवाँ रूप चौथे से मिलता हुआ है और गुजरात के सोलंकी राजा भीमदेव के वि० सं० १०८६ (ई० स० १०२९) के ताम्रपत्र में मिलता है।

भ—का दूसरा रूप कुशनवंशियों के लेखों में और तीसरा गुप्तवंश के राजा स्कंदगुप्त के समय के इन्दौर से मिले हुए ताम्रपत्र में, जो गुप्त संवत् १४६ (वि० सं० ५२२=ई० स० ४६५) का है, मिलता है। चौथा रूप तीसरे से मिलता हुआ ही है।

म—के पहिले तीन रूप एक दूसरे से मिलते हुए ही हैं और चौथा रूप वर्तमान "म" के सदृश सा ही है।

य—के पहिले दो रूप अशोक के लेखों में मिलते हैं। दूसरे को क़लम को उठाये बिना लिखने से तीसरा रूप बना है और चौथा उसी का भेद है जो वर्तमान "य" के सदृश है।

र—का दूसरा रूप पहिले रूप की खड़ी लकीर के अंत को सुन्दरता के विचार से दाहिनी ओर कुछ नीचे की तरफ झुकाने से बना है। यह रूप बौद्ध श्रमण महानामन् के गुप्त सं० २६९ (वि० सं० ६४५=ई० स० ५८८) के लेख में पाया जाता है। तीसरा रूप वर्तमान "र" से मिलता हुआ है।

ल—का दूसरा रूप हूणवंशी राजा तोरमाण के लेख में, जो ई० स० ५०० के क़रीब का है, मिलता है। तीसरा रूप कई लेखों में पाया जाता है। (प्रा० लि० ९, ११, १२) तीसरे को सुन्दर बनाने का यत्न करने से चौथे रूप की उत्पत्ति हुई है और पाँचवाँ रूप वर्त्तमान 'ल' से मिलता हुआ है।

व—के पहिले रूप को बिना क़लम को उठाये लिखने से दूसरा रूप बना है (प्रा० लि० ४) और उस के नीचे के हिस्से में सुंदरता लाने का यत्न करने से तीसरे रूप की सृष्टि हुई है। (प्रा० लि० ११, १२, १३, १६)

श—का दूसरा रूप पहिले से मिलता हुआ ही है। तीसरा व चौथा ये दोनों दूसरे के ही रूपान्तर हैं। (प्रा० लि० ३) पाँचवाँ रूप कई लेखों में मिलता है। (प्रा० लि० १३, १५) छठा रूप पाँचवें का ही रूपान्तर है।

ष—यह अक्षर अशोक के लेखों में नहीं मिलता। इस का पहिला रूप घोसुंडी (मेवाड़ में) के शिलालेख से उद्धृत किया गया है, जो (लेख) ई० स० पूर्व की दूसरी शताब्दी का है। दूसरा रूप पहिले से मिलता हुआ ही है और तीसरा कई लेखों में मिलता है। (प्रा० लि० १६, १७, १८, १९)

स—का दूसरा रूप पहिले के सदृश ही है। तीसरा समुद्र गुप्त के लेखों में मिलता है। (प्रा० लि० ३) और चौथा कई लेखों में पाया जाता है। (प्रा० लि० ५, ९, १२, १३)

ह—का दूसरा रूप पहिले के समान ही है। तीसरा उच्छकल्प के महाराज शर्वनाथ के उपर्युक्त वि० सं० ५२० (ई० स० ४६३) के ताम्रपत्र से उद्धृत किया गया है। और चौथा अनेक लेखों में पाया जाता है (प्रा० लि० ४, ५, ९, १३, १६)।

ळ—वेदों के अतिरिक्त संस्कृत-साहित्य में इस अक्षर का प्रयोग नहीं मिलता, परन्तु संस्कृत शिलालेखों में इस का प्रयोग 'ल' या 'ड' के स्थान में मिल जाता है। दक्षिण के शिलालेखों में यह विशेष रूप से मिलता है। गुजरात से लगा कर कन्याकुमारी तक यह अक्षर अब तक बोला और लिखा जाता है। राज-

पुनाने में भी यह बोला तो जाता है किन्तु इस के स्थान में 'ल' लिखा जाता है (जो सर्वथा अशुद्ध है)।

इसका पहिला रूप उपर्युक्त रुद्रदामा के लेख से उद्धृत किया गया है। (प्रा० लि० २) दूसरा रूप दक्षिण के सोलंकियों के ई० स० की नवीं शताब्दी से लगाकर ११ वीं शताब्दी तक के लेखों में पाया जाता है। तीसरा रूप दूसरे से मिलता हुआ ही है।

क्ष—यह वर्ण नहीं किन्तु संयुक्त वर्ण है जो 'क' और 'ष' के मिलने से बना है। ई० स० की दसवीं शताब्दी तक के शिलालेखों, ताम्रपत्रों, सिक्कों और पुस्तकों में इसके दोनों वर्ण अन्य संयुक्ताक्षरों के समान मिलाकर लिखे जाते थे परन्तु पीछे के लेखकों ने सुंदरता की धुन में इस का रूप ऐसा विलक्षण बना दिया कि उक्त वर्णों का कहीं लेशमात्र भी बचने न पाया और एक विलक्षण ही रूप बन गया, जिससे कई लेखकों ने इस को वर्णमाला में स्थान दिया, जैसे कि 'त्र' को अब दिया जाता है। इस का पहिला रूप क्षत्रपराजा सोडास के मथुरा के लेख से उद्धृत किया गया है। दूसरा रूप पहिले से मिलता हुआ है और तीसरा हस्तलिखित प्राचीन पुस्तकों में मिल जाता है। अन्य दो रूप तीसरे के ही भेद हैं।

ज्ञ—यह भी वर्ण नहीं किन्तु संयुक्त वर्ण है जो 'ज' और 'ञ' के मिलने से बना है। ऊपर 'क्ष' के विषय में जो लिखा गया है वह इसके लिये भी चरितार्थ होता है। इसका पहिला रूप रुद्रदामा के लेख में मिलता है। (प्रा० लि० २) दूसरा रूप पहिले से मिलता हुआ ही है। अंतिम दो रूप हस्तलिखित पुस्तकों में मिलते हैं।

व्यंजनों के साथ जुड़नेवाले स्वरचिह्नों की उत्पत्ति कैसे हुई यह इस लेख के साथ के नक़शे में स्पष्ट बतलाया गया है।

खड़ी बोली की कविता ।

(पंडित श्रीधर पाठक लिखित ।)

निरूपण—हिन्दी भाषा का वह रूप जिसमें आज कल शिष्ट गद्य लिखा जाता है, जब पद्य में व्यवहृत होता है "खड़ी बोली" के नाम से पुकारा जाता है; गद्य के सम्बन्ध में इस पद का प्रयोग साधारणतः नहीं होता। यह नाम चाहे नया हो, परन्तु हिन्दी का यह रूप नया नहीं है, किन्तु उतना ही पुराना है जितने कि उसके दूसरे रूप व्रज भाषा, बैसवाड़ी, बुँदेलखंडी आदि हैं। व्रज मंडल से उत्तर, पंजाब की दक्षिण-पूर्व सीमा से मिला हुआ प्रदेश इस बोली का आदि भूमि और सदैव का अधिकार स्थल है जहाँ कि वह अपने प्रकृत रूप में विहार करती है।

इस बोली में आदरणीय साहित्य प्रचुर नहीं है। हरिद्वार, कनखल, ज्वालापुर, मेरठ, मुरादाबाद, बुलन्दशहर, हाथरस, आगरा आदि स्थानों में "भगत" और "स्वांग" नामक परम रोचक और अवलोकनीय अभिनय इस बोली के गद्य पद्य में स्मरणातीत समय से होते चले आये हैं। इस लेख को आरंभ करने के पहिले मैं समझे हुए था कि ये काव्य हाथ की लिखी पोथियों में अथवा पात्रों के कंठों ही में विद्यमान हैं, ग्रन्थाकार मुद्रित नहीं हुए, किन्तु विशेष अनुसन्धान से ज्ञात हुआ कि कई एक प्रकाशित हो गये हैं! परन्तु जो मेरे देखने में आये हैं उनमें बहुत संशोधन अपेक्षित है। कुछ एक के नाम नीचे लिखे जाते हैं—

ग्रन्थ	रचयिता
१—श्रवणचरित्र	चिरंजीलाल नथाराम (हाथरस)
२—सांगीतचित्रकूटचरित	—"——"—
३—सांगीतभैनभैया	ला० गोविन्दराय—"—
४—सांगीतपूरनमल	मातादीन चौबे (औरैया)
५—सुदामाचरित्र दुखार	
६—सांगीतहरिश्चन्द्र	

इन सब में व्रजभाषा और खड़ी बोली दोनों का मिश्रण है, जहाँ तहाँ शुद्ध खड़ी बोली के भी पद्य पाये जाते हैं। पहिले तीन में दूसरे तीन की अपेक्षा व्रज भाषा का सम्पर्क अधिक है और वह एक हाथरस के निवासी की रचे हुए हैं, अतः अभिनय अवश्य हाथरस वा उसके निकट के नगरों में अधिक होता रहा होगा। यह नहीं कहा जा सकता कि हरिद्वार, मेरठ, मुरादाबाद आदि उत्तरीय स्थानों में जो अभिनय होते हैं उनके पद्य में व्रजभाषा का योग होता है या नहीं, और यदि होता है तो किस परिमाण में होता है—मेरा अनुमान है कि इन स्थानों के व्रजभूमि से बहु दूर होने के कारण वहाँ के पद्यों में व्रजभाषा का मेल बहुत थोड़ा होता होगा।

इस प्रकार के साधारण लोकप्रिय काव्यों की रचना प्रायः अर्द्धशिक्षित व्यक्तियों द्वारा होती है जो प्रायः पदयोजना में भाषा की विशुद्धता के विशेष पक्षपाती नहीं होते-यह खड़ी बोली की पद्य रचना सम्बन्धिनी प्राचीन लोकप्रथा है; अतः यदि इस बोली की कविता प्राचीन और नवीन संज्ञक दो शैलियों में विभक्त की जाय तो इस ढंग की रचनाओं को प्राचीन शैली में रखना पड़ेगा, चाहे वह वर्त्तमान समय में ही की गई हों—

उक्त पुस्तकों में से मिश्रित और शुद्ध दोनों प्रकार की बोली के पद्य नीचे उद्‌धृत किये जाते हैं—

(मिश्रित भाषा)

लावनी।

उद्दानऋषी ख़ुश हो धन माल लुटाये।
गौदान दिये कोटिन द्विजराज जिमाये॥
महराज दान नित ऐसौ भारी होत।
निरमुख कोई न जात भिखारी लेते दो दो पोत॥
एक साल भयौ अति उत्सव खुशी समायन।
घुटुअन चल सरवन डोलन लागे पायन॥
महराज मातपितु करते प्यार महान।
लाड़ लड़ावैं गोद खिलावैं करैं निछावर प्रान॥

(श्रवणचरित्र)

दोहा।

सुन इतनी जल लायकर, तनक न करी अबार।
बिहँसि बिहँसि रघुबीर पद, केवट लिये पखार॥

दुबोला।

पग धोय पान कीनौ केवट
त्रिय सहित सकल परिवारा है।
आगे के पुरखा स्वर्ग गये
शिव उमा से बचन उचारा है॥
(सांगीत चित्रकूट)

दोहा।

उदय भानु भयौ भामिनी, अब मैं जाउं ज़रूर।
सिर पर मंजिल चढ़ रही, मुझे पहुँचना दूर॥

कड़ा।

मैं असगुन सगुन बिचार रही
लड़ मुक्त माँग खिड़ आती है।
दक्षिण दृग फड़क गिरत नूपुर
और धड़क रही मम छाती है॥
(सांगीत भैनभैया)

(शुद्ध बोली पद्य)

तबील।

हरिश्चन्द्र के सत्य से ज्ञानी सुनो,
मंजु आसन सुरेन्द्र का हिलने लगा।
जाना मन में कि राज्य हमारा गया,
सोच बस होके हाथों को मलने लगा॥
हुआ सत्य के भानू का तेज जभी,
पापरूपी अँधेरा खिसलने लगा।
सभी प्रजा आनन्द से रहने लगी,
नया सृष्टि का रंग ढंग बदलने लगा॥
(हरिश्चन्द्र सत्य मंजरी)

चौबोला।

तन चाहे बिक जाय पिता जी सत्य न त्यागन कीजै।
हम तुम माता बिकैं हाट में कंचन द्विज को दीजै॥
धीरज धर्म मित्र और नारी दुख में अजमा लीजै।
पूरन काम हो गया हित से राम नाम रस पीजै॥
(सैब)

चौबोला।

करो नाथ निर्मूल अशुभगुण कहता सीस नवाके।
रचूँ चरित पूरन मल जन का तुम को आदि मनाके॥
वक्र तुंड एक रदन वदन ल मदन जाय शरमा के।
करुणा अयन शयन कीजै मम हृदय कमल में आके॥
(सांगीत पूरनमल)

दोहा।

सुनो दास दासी सकल, चित दे मेरी बात।
कहाँ हमारे तात हैं, कहाँ हमारी मात॥

चौबोला।

कहाँ हमारी मात माथ चरणों पै जाय नवाऊँ।
दीजै शीघ्र बताय दरस करके कृतार्थ हो जाऊँ॥
है अधीर बस तन मन व्याकुल बार बार बलिजाऊँ।
रूप सुधारस निरख सुभग नैनों की प्यास बुझाऊँ॥
(सैब)

यहाँ पर यह कह देना आवश्यक है कि शुद्ध खड़ीबोली के पद्य जो ऊपर दिये गये हैं वह रचयिता की शुद्ध बोली व्यवहार करने की ओर विशेष चेष्टा का फल नहीं हैं, किन्तु अनायास ही इस रूप में उससे बन गये होंगे, ऐसा समझना असंगत प्रतीत नहीं होता—

प्राचीन शैली के पुराने पद्यों के उदाहरण।

(मिश्रित बोली)

माला फेरत युग गया, गया न मन का फेर।
करका मनका छाड़ि के, मन का मनका फेर॥
बुरा जो देखन मैं चला, बुरा न दीखै कोय।
जो दिल खोजौं आपना, मुझ सा बुरा न कोय॥ १॥
(कबीर)

बड़े बड़ाई कभी न करते, छोटे मुख से कहें वचन।
अपने मन्में सभी बड़े, यों मोती बिनौले लगे लड़न॥ २
(मोती बिनौले का झगड़ा)

बाग़ के फाटक खोलदे सुन माली की बेटी।
सैर करन दै (रे) बाग़ के माहीं॥ ३
(हीरा राँझा-लोकगीत)

कलित ललित माला, वा जवाहिर जड़ा था।
चपल चखन वाला, चाँदनी में खड़ा था॥ ४
(रहीम)

एक अचम्भा देखो चल,
सूखी लकड़ी लागे फल।
जो कोई उस फल को खाय,
पेड़ छोड़ वह अनत न जाय॥ ५
(पहेली)

(शुद्ध बोली)

इश्क़ चमन महबूब का, वहाँ न जावै कोय।
जावै सो जीवै नहीं, जियै सो बहरा होय॥ १
(नागरी दास)

सोने को तेरी कलम है, हीरे जड़ी दवात।
गोरे गोरे तेरे हाथ हैं, काले अंछर डाल॥ २
अब उदयभान् और रानी केतकी दोनों मिले।
आस के जो फूल कुम्हलाये हुए थे फिर खिले॥
घर बसा जिस रात उनका तब मदनवान् उस घड़ी।
कह गई दूलह दुलहन् से ऐसी सौ बातें कड़ी॥ ३

इनमें से ३ संख्यक पद्य में शुद्ध बोली व्यवहार करने की ओर रचयिता का प्रयत्न स्पष्ट प्रतीत होता है।

उन स्थानों में जहाँ कि यह बोली विशुद्ध रूप में रमण करती है लोकगीत, (जैसे हीरा राँझा) स्थानिक गीत, और स्त्रियों के गीत प्राचीन शैली के पद्य में पाये जाते हैं—मैं आज कल ऐसे स्थान में हूँ कि उदाहरण नहीं दे सकता—इन गीतों में कभी कभी मारवाड़ी, शूरसेनी, पंजाबी, पूर्वी, बुंदेलखंडी शब्दों का मेल देखने में आता है–यह पड़ोस का प्रभाव है–आगरे (नगर) के गीतों में व्रजभाषा और मारवाड़ी और देहली या मेरठ के पद्य में पंजाबी शब्दों का आजाना सहज है–उदाहरण।

(आगरे का गीत)

ठाड़े रहियो परदेसी सामने (रे),
चोट सम्हारौ म्हारे नैनों की।
तुझे मोरचा लगा ढाल का,
मुझे ओट पट घूँघट की॥

(मेरठ का गीत)

सुन सुन रे पीतम ख़ुश हाल,
मैं भी चलूंगी तेरे नाल।
तेरा हाल सो मेरा हवाल,
मुझे दुनिया में बदनाम किया॥

नवीन शैली।

बाबू हरिश्चन्द्र के समय में और उनके बाद शिक्षित कवियों द्वारा जो पद्य रचे गये हैं उन्हें नवीन शैली के अन्तर्गत समझना चाहिए–इस शैली की रचना भी भाषा व्यवहार भेद से विशुद्ध और मिश्रित दो प्रकार की देखने में आती है।

विशुद्ध दो विभेदों में विभाज्य है—एक वह जिसमें हिन्दी भाषा का स्वाभाविक शील वा प्रकृत-रूप पूर्ण रक्षित पाया जाता है–दूसरा वह जिसमें भाषा का यह गुण उपेक्षित सा देखने में आता है—उदाहरण देने की आवश्यकता नहीं—सहृदय पाठक जिन्हें कि आधुनिक पद्य पढ़ने का अवसर प्राप्त हुआ है स्वयं समझ जायँगे–इनमें प्रथम प्रकार की रचना दूसरे की अपेक्षा अधिक लोकप्रिय होती है।

विशुद्ध भाषा की कविता ही उच्च श्रेणी की कविता कहलाने की संभावना और शिष्ट समाज में आदर पाने की योग्यता रख सकती है।

मिश्रित वा खिचड़ी भाषा के पद्य में यह योग्यता नहीं आ सकती अतः ऐसी भाषा का प्रयोग उत्कृष्ट काव्य में कदापि न करना चाहिए–बल्कि इसकी प्रथा को एक साथ त्याग ही देना अच्छा है—खड़ी बोली ने अब ऐसा प्रशस्त रूप प्राप्त कर लिया है कि उसके पद्य में व्रज भाषा आदि हिन्दी के इतर रूपों की वाक्यवल्लरी वा वाक्पद्धति का किञ्चित् अनुपयुक्त व्यवहार भी उसके प्रकृत गौरव की हानि का हेतु हो सकता है।

इस विषय को अधिक पल्लवित न करके, मैं इस सम्मेलन का ध्यान खड़ी बोली के उन साधारण काव्यों और लोकगीतों (Popular Ballads) की ओर विशेष रूप से आकर्षित करता हूँ जिनकी चर्चा मैं इस लेख के आरंभ में कर चुका हूँ–नागरी प्रचारिणी सभाओं से भी मेरा सविनय अनुरोध है कि वे इस बिखरे हुए और उपेक्षित साहित्य में से उत्तम उत्तम

रचना चुन कर उनके आवश्यकीय संशोधनपूर्वक प्रकाश करने में प्रवृत हों—मुझे खेद है कि मैं इस लेख के लिये उक्त प्रकार के साहित्य के सब या बहुत ग्रंथों के नाम धाम आदि एकत्र नहीं कर सका हूँ; परन्तु उनका अस्तित्व असंदिग्ध है और समुचित अनुसंधान से वे अवश्य प्राप्त हो सकेंगे ।

ये लोककाव्य सर्वसाधारण को रुचनेवाली भाषा में हैं अथ च हमारी जातीय, सामाजिक और धार्मिक स्थिति के दर्पण स्वरूप हैं अतः इनसे हमारी सामाजिक और धार्मिक उन्नति के सम्बन्ध में अनल्प सहायता मिलने के अतिरिक्त खड़ीबोली के आधुनिक कवियों को भाषा शैली सम्बन्ध में लाभदायक शिक्षा प्राप्त होने की भी बहुत कुछ संभावना है। यह विषय उपेक्षणीय कदापि नहीं है । गत अगस्त १५ वीं के पायोनियर पत्र में Some songs of the people शीर्षक लेख में देखिए एक विदेशी यहाँ के लोकगीतों के संबध में क्या लिखता है—उसके कथन का कुछ अंश नीचे उद्धृत है ।

And indeed there is a degree of simplicity, directness, *zest* and reality in these poems of the "uneducated" which gives them true literary value and widely separates them from the laboured *rechauff'es* of more learned persons. The divorce from the mass of the people which is the penalty that in India the higher castes have had to suffer for successfully maintaining the superior position they lost at an early period in Greece and Rome, re-acts on their art and literature.

विषय ।

ऊपर चर्चा किये हुए लोककाव्य स्मरणीय अथवा अनुकरणीय पौराणिक, ऐतिहासिक अथवा स्थानीय घटनाओं से सम्बन्ध रखते हैं; उनके अभिनय वा गान से लोगों के हृदय पर बहुत सुन्दर प्रभाव पड़ता है। वर्तमान समय में सामाजिक और धार्मिक संशोधन की बड़ी आवश्यकता है, अतः इसी को उद्देश्य मान कर कविता विशेषतः लिखी जानी चाहिये—ये दोनों विषय इतने असीम हैं कि इनमें पद्य रचना की अमित समाई है ।*

देश काल के अवच्छेद से धर्म के गौण सिद्धान्त प्रायः विक्रिया प्राप्त करते हैं, उसी प्रकार सामाजिक प्रथा भी बहुधा काल के जटिल जाल से विमुक्त नहीं रहती—धर्म की स्थिति और समाज की दशा से प्रत्येक युग में कविता अपना योग कर लेती है और उस युग की अवधि तक संग रखती है; यों दोनों का पारस्परिक सम्बन्ध अखंड और सनातन है—परन्तु हमको यह न भूलना चाहिए कि यद्यपि कविता एक अतुल शक्तिशालिनी वस्तु है, परन्तु साधारण जन-समुदाय की सांसारिक और व्यावहारिक अवस्था की उन्नति उसकी अपेक्षा गद्य साहित्य से विशेषतर साध्य है, और यह भी स्पष्ट है कि केवल गद्य अथवा केवल पद्य से किसी देश के साहित्य की पूर्ति नहीं हो सकती—अतः हमारा उद्योग दोनों की पूर्ति की ओर यथोचित परिमाण में होना चाहिए—सभ्य संसार के सारे विषय हमारे साहित्य में आजाने की ओर हमारी सतत चेष्टा रहनी चाहिए—साथ ही शिक्षा के विस्तार द्वारा साहित्य-सेवियों की संख्या की दिन दिन वृद्धि होनी चाहिए ।

यदि एक सूची उपयुक्त विषयों की सर्वसम्मति से छाप दी जाय तो उससे लेखकों को बहुत कुछ सहायता मिलेगी ।

लेखशैली ।

यह भी ध्यान योग्य वस्तु है, और गद्य पद्य दोनों में समान गौरव रखती है—इसका स्वरूप मुख्यतः लेखक की रुचि और शक्ति के अनुरूप होता है ।

प्रत्येक भाषा चिर व्यवहृत होती हुई एक प्रकृत दशा प्राप्त कर लेती है जिसे उसका शील वा प्रकृत रूप कह सकते हैं। उस प्रकृत दशा में रोचक

*बालोपयोगी कविता भी जिसकी इतनी आवश्यकता है इन्हीं के अन्तर्गत समझनी चाहिए ।

शक्ति निवास करती है। जिस प्रकार से शब्दों वा वाक्यों का व्यवहार उसकी इस दशा में होता है उसे साधारण बोली में "मुहाविरा" कहते हैं—मुहाविरे और चिरप्रचलित शब्द प्रत्येक भाषा की आत्मा स्वरूप होते हैं—जो गद्य वा पद्य इनके उपयुक्त प्रयोग से सुशोभित होता है वह ऐसा है जैसा कि चतुर चितेरे द्वारा चित्रित कोई शुद्ध प्रकृति दृश्य, वा निपुण सुनार और जड़िये का बनाया हुआ बढ़िया आभूषण अथवा अनुभवशाली माली का सजाया हुआ कमनीय कुसुमस्तवक। जिस प्रबन्ध में प्रचलित वाक्पद्धति के विरुद्ध शब्द व्यवहार होता है और महाविरे की दरिद्रता रहती है उसमें सरसता अवश्य न्यून होती है, और विषय और भाव उत्कृष्ट होने पर भी रोचकता नहीं आती॥

ऊपर जो कहा गया है वह भाषा के चिर व्यवहार से प्राप्त किये हुए स्वरूप का निरूपण है—भाषा के विकास वा उन्नति में उस रूप को रक्षित रखना परम आवश्यक है; उसको बिगाड़ना अत्यन्त विगर्हित आचरण है—यह सत्य है कि भाषा का विकास और उन्नति नवीन भावों और विषयों के संनिवेश से ही होती है जिनके कारण नवीन शब्दों का व्यवहार आवश्यक होता है; परन्तु यह नूतन वाक्प्रस्तार यदि सावधानता और चातुर्य के साथ किया जाय तो भाषा के प्रकृति रूप में विकार बिना पहुँचाये ही सुन्दर रीति से हो सकता है—राजा शिवप्रसाद का गद्य, और बाबू हरिश्चन्द्र, प्रतापनारायण और राजा लक्ष्मणसिंह के गद्य और पद्य इसी नियम के पालन के कारण सरस हैं और बहुत सा आधुनिक गद्य और पद्य इसी गुण के अभाव से नीरस है॥

यह बात असंदिग्ध है कि संस्कृत शब्दों की सहायता बिना हमारी भाषा के गद्य वा पद्य की उन्नति साध्य नहीं; बंगला की इतनी उन्नति संस्कृत के ही सहारे से हुई है, परन्तु उसके अप्रचलित शब्द और लंबे समासों का प्रयोग जहाँ तक संभव हो त्यागना चाहिए—उनका व्यवहार केवल उस अवस्था में करना उचित है जब कि उनके बिना किसी प्रकार काम न चल सकता हो अथवा उनके उपयोग से लेख की शोभा वा गौरव वृद्धि होती हो।

छन्द, पदयोजनाक्रम।

छन्द।

खड़ी बोली में प्रायः सभी छन्द जो व्रज भाषा वा संस्कृत में व्यवहृत होते हैं रचे जा सकते हैं, परन्तु विशेष सफलता से उसमें कतिपय छन्द विशेष ही लिखे जा सकते हैं। ऐसे ही छन्दों का प्रयोग उसमें होना चाहिए तथा च यथासंभव नवीन उपयोगी छन्द भी लाने चाहिएं। बँगला, मराठी, द्रविड़, फारसी, अँग्रेजी, जापानी आदि विदेशी भाषाओं के कोई छन्द यदि हिन्दी में सरसता के साथ आसकें तो उनका ग्रहण भी अनुचित न समझना चाहिए। शून्यवृत्त और संस्कृत श्लोकों की भाँति अन्त्यानुप्रासरहित पद्य रचना की ओर भी ध्यान देना उचित प्रतीत होता है। स्वर्गीय पंडित अम्बिकादत्त व्यास ने मैं समझता हूँ, ऐसे बहुत से पद्य बनाकर प्रकाशित किये थे। इस प्रकार के पद्य, जहाँ तक मेरा अनुभव है, छोटे छंदों में अच्छे नहीं लगते, लम्बी पंक्तियों में अधिक रुचिर बनते हैं।

पद योजना क्रम

कवि को अपना भाव सर्वताभावेन रोचक रीति से प्रकाश करने के अर्थ उपयुक्त पद ढूँढने पड़ते हैं। जिस कवि में कवित्व-शक्ति प्रबल और विद्या-वैभव विपुल होता है, उसे वांछित पद प्रायः बिना प्रयास के भी मिल जाते हैं, पर ऐसा कम होता है।

मुहाविरे के बाद पद-योजना का पद है। उपयुक्त पदों का व्यवहार लेखक की चतुराई की कसौटी है इसके लिये कोई नियम नहीं बनाए जा सकते। कवि का भाव पाठक के हृदय पर यथार्थ अंकित करनेवाले और श्रवणों को सुख देने वाले पदों का प्रयोग कविता की आत्मा है। सब अच्छे लेखकों में ऐसे पद व्यवहार करने की शक्ति सहज ही होती है और यही शक्ति कल्पना शक्ति की सहवर्त्तिनी होकर

कवित्व शक्ति का पद प्राप्त करती है। वर्तमान समय में बाबू मैथिलीशरण गुप्त की रचना सुन्दर पद योजना का सर्वोत्कृष्ट आदर्श है।

इस स्थान पर मुझ को एक विशेष बात की चर्चा करनी है। वह यह है—

हिन्दी में निम्न प्रकार के शब्द और शब्द खंड प्रायः हलंतवत् बोले जाते हैं—

१—उन अकारान्त शब्दों को छोड़ कर कि जिनका अन्तिम व्यञ्जन किसी दूसरे व्यञ्जन से युक्त हो (जैसे कृत्य, भव्य, धर्म, यत्न आदि) सब आकारन्त शब्द (जिनमें तत्सम तद्भव भी सम्मिलित समझने चाहिए) जैसे—वदन, मदन, जतन, करवट, झटपट, घर आदि।

२—शब्दों के वह अकारान्त खंड कि जिन पर बोलने में आघात (Accent) पड़ता है, जैसे मन भावना; गलबाहीं; जलचर; पटवारी।

३—सब अकारांत धातु, जैसे—कर (ना), चल (ना) धात्वंग वा इस विधि में गृहीत नहीं है।

यह बात ब्रजभाषा में नहीं है।

अब विचारणीय है कि खड़ी बोली की इस विशेषता से उसकी पद्य रचना में कुछ सुविधा हो सकती है या नहीं—भाषा के शील संरक्षण की दृष्टि से पद्य लिखने में, अवश्यकतानुसार, बोलने की रीति अवलंबन करने से कोई आपत्ति तो नहीं उपस्थित होती।

उर्दू पद्य में और उसी ढंग के शुद्ध हिन्दी पद्य में भी यह प्रथा प्रचुरता से देखने में आती है।

शुद्ध खड़ी बोली के पद्य के जो उदाहरण इस पत्र के प्रारंभ भाग में दिये गये हैं उनमें से भी कई एक में यह परिपाटी प्रदर्शित है। कुछ उदाहरण उर्दू ढंग के आधुनिक पद्यों के दिये जाते हैं।

कविता

अरी हाँ यह बहुत अच्छा जतन है।
पर इससे पूछले क्या इसका मन है॥
कमल के पत्र पर नुं (से लिखूँगी।
तू सोचे जा न कर चिन्ता कुछ इसकी

(पं० प्रतापनारायण मिश्र का संगीत शाकुन्तल)

परन्तु संस्कृत के वृत्तों में जो हिन्दी पद्य रचना आज कल होती है उसमें इस रीति का व्यवहार बहुधा नहीं देखने में आता।

यह मुझे नहीं विदित है कि बंगला, मराठी, गुजराती आदि इतर भाषाओं में ऐसा होना है या नहीं परन्तु नैपाली में यह प्रचुरता से है-उदाहरण

यां सब् शास्त्र विशेष् बड़ा,
छ रघुनाथ को रूप् जनाई दिन्या।
जो छन् सब्द् पुराण हरूद्,
सब मा ये मुख्य जानी लिन्या॥
गर्छन कीर्तन सुन्दछन् ,
पनि भन्या यो पंड छन् फल् भनी।
तिन्को पुण्य बखान,
गर्नन सबै सकती न मैले पनी॥

(कवि भानुभक्त कृत नैपाली रामायण बालकांड)

इस प्रकार शब्द व्यवहार वाली कुछ हिन्दी पद्य की पंक्तियाँ भी उदाहरण स्वरूप नीचे दी जाती हैं।

उखड़ गये जिन्से मृणाल जाल हैं।
तड़प रहीं मीन उड़े मराल हैं॥ १॥
सरसिज जल छाये गंध पाटल् की प्यारी।
सुखद सलिल सेवनहार सुन्दर् उज्यारी॥ २॥
पर इत्ने पर् भी तो नहिं मन हुआ शान्त उनका।
बस् अब् क्या करना था जब जतन कोई नहिं चला॥ ३॥

इस सब जगड्वाल के प्रदर्शन से मेरा अभिप्राय यह नहीं है कि हमारी भाषा के पद्य में इस प्रकार से शब्द व्यवहार करना चाहिए किन्तु बुध जनों के विचार के लिये यह मेरा केवल एक प्रस्ताव मात्र है।

सारांश।

ऊपर जो कुछ कहा गया है वह खड़ी बोली के प्राचीन साहित्य के संग्रह और प्रकाशित करने की उपयोगिता; लेखशैली में भाषा के प्रकृतशील के निर्वाह की आवश्यकता; भविष्य पद्य में देशी विदेशी यावन्मात्र उपयुक्त छंदों की प्रयोज्यता; सुष्ठु पद योजना की प्रशस्यता; सामाजिक

श्रौर धार्मिक उन्नति को उद्देश्य मान पद्य रचना की विधेयता आदि दो एक बातों के स्पष्टीकरण की चेष्टा मात्र है । हम को चाहिए कि पृथिवी के प्रत्येक सभ्य देश के साहित्य रत्नों से अपनी भाषा को विभूषित करने का प्रयत्न करें वरञ्च, बौद्ध, ईसाई, इसलामिया धर्म ग्रंथों में भी जो उपदेश रत्न मिलें उन्हें भी न छोड़ें । जो बातें अच्छी हैं किसी भाषा में हों और किसी धर्म से सम्बन्ध रखती हों, मनुष्य मात्र को हितकर हैं और प्रत्येक भाषा में स्थान पाने की योग्यता रखती हैं ।

खड़ी बोली की कविता का महत्त्व ।

२०,२५ बरस पहिले खड़ी बोली की कविता के नाम से उस समय के कवि भी चिढ़ते थे। कई एक तो उसके परम शत्रु हो गये थे । उनमें से दो एक अभी जीवित हैं । परन्तु सन् १८८७ ई० में जो इस विषय पर विवाद चला था उसमें इस भाषा की कविता के एक पक्षपाती ने भविष्यद्वाणी की थी कि यह किसी दिन अति उच्च आसन प्राप्त करेगी । उस वाणी के फलीभूत होने के प्रत्यक्ष लक्षण अब लक्षित हो रहे हैं। खड़ी बोली में कविता का प्रवाह सा बह चला है, उसकी सार्वभौम उपयोगिता अब सब मानते हैं, अथ च नागरीलिपि और हिन्दी भाषा के यावत् भारतवर्ष में प्रचार पाने के साथ साथ हमारी खड़ी बोली का पद्य भारतवासी मात्र के स्वत्व और अभिमान का अधिकारी बनने की आशा रखता है। यह अल्प आनन्द का विषय नहीं है।

———०:———

हिंदी-साहित्य ।

[महामहोपाध्याय पंडित सुधाकर द्विवेदी लिखित ।]

जनक राज तनया सहित, रतन सिँहासन आज ।
राजत कोशलराज लखि, सुफल करहु सब काज ॥

भाषा ।

सब से पहिले पंडितों के मन में यह शंका पैदा होती है कि ईश्वर ने धरती को बना कर सब से पहिले इसके किसी एकही देश में पशु, पक्षी, कीट, पतंग, वनस्पति, मनुष्य..... को बनाया या उसकी पीठ के चारों ओर इस पर सब चीजों के बीजों को डाल दिया जिनसे इसके चारों ओर सब चीज़ें पैदा हुईं ।

बहुतों का मत है कि पहिले सब चीज़ एक ही जगह पर पैदा हुईं फिर उनके संतान जैसे जैसे बढ़ते गए तैसे तैसे फैलते गए ।

चलने फिरनेवाली योनियों में याने जंगमों में इस बात का होना याने एक जगह से दूसरी जगह में जाना बहुत संभव है ग्रोर न चलने वाले वनस्पतिओं में याने स्थावरों में भी जंगमों के जरिए से उनके बीजों का एक जगह से दूसरी जगह में जाना संभव ही है ।

आकाश में रहने वाले सूर्य, चन्द्र,......के कम ज़्यादा प्रभाव धरती के जुदे जुदे देशों में पड़ने से उन उन देशों के रहनेवालों के रूप रँग में भेद हो जाना यह बात सबके मन में बैठ जाती है पर जंगमों की भाषाओं में भी भेद हो जाना यह बात मन में नहीं बैठती ।

यदि आदमियों का संग न हो तो बंगाल का तोता ग्रोर पंजाब का तोता दोनों एकही सुर से टें टें करते हैं । इसी तरह सब देशों के गाय, बैल, हाथी, घोड़े,......की भाषाओं में भेद नहीं जान पड़ता । सम्भव है कि कुछ विशेष इन्द्रिय के द्वार से वे सब आपस की भाषाओं में भेद समझते हों ।

इसमें संशय नहीं कि मुँह के भीतर के हिस्से तालू, जीभ, दाँत, कंठ .....की बनावट में कुछ न कुछ भेद होने से अक्षरों के उच्चारण में कुछ न कुछ फ़र्क़ पड़ जाता है । इसलिये संभव है कि बाप का उच्चारण ठीक हो पर बेटे का उच्चारण तुतरा कर बोलने से बिगड़ गया हो ।

इस तरह अक्षरों के उच्चारण में भेद हो जाने से पुस्तक, पुस्त, पोथ, पोथा, पोथी.........शब्दों का बनना सम्भव है पर पुस्तक के स्थान में बुक हो जाना असंभव है ।

ईश्वर ने आदमियों को विशेष बुद्धि दी है जिससे वे अपने फ़ायदे के लिये तरह तरह के उपायों को निकाला करते हैं; जिन उपायों से उन्हें फ़ायदा होता है उनको छिपाए रहते हैं ग्रोर अपने को अधिक पराक्रमी बनाने के लिये बहुत लोगों को अपने मत में लाते हैं । अपने मन की बात दूसरे मतवाले न जानें इसलिये भाषा को बदल देते हैं । यही कारण है कि विदेशी लोगों की भाषाएँ भिन्न भिन्न हो गई हैं । बहुत जगह बहुत छिपाने के लिये अक्षर ग्रोर उनके उच्चारण भी बदल दिए गए हैं ।

एकही देश में जुदे जुदे विषयों में एकही शब्द भिन्न भिन्न अर्थ में भी बोले जाने लगे । जैसे सांख्य शास्त्र में से आद्याशक्ति, व्याकरण में संधि के बिना वाक्य, ज्योतिष में एक वर्ग संख्या का गुणक ग्रोर काव्यों में स्वभाव को लेते हैं ।

देश ।

अक्षरों की सूरत चाहे जैसी हो पर जहाँ तक अक्षरों की गिनती ग्रोर उच्चारण में भेद नहीं है वहाँ तक मैं एक देश कह सकता हूँ ।

जैसे——गुरुमुखी, बँगला, बिहारी, मद्राजी, तैलंगी, मैथिली.........अक्षरों की गिनती ग्रोर

उच्चारण देवनागरी ही अक्षरों के ऐसे हैं इस लिये वे सब देश हिंदुस्तान के भीतर हैं।

पुराने पत्थर के खंभों और तामे के पत्रों पर के अक्षरों के देखने से मालूम होता है कि सबसे पुराने अक्षर ब्रह्माक्षर या ब्राह्मी लिपि हैं।

मेरी समझ में बनारस के किसी पंडित ने आदमियों का खोपड़िओं के जोड़ों के निशानों पर से इस लिपि को बनाया (मेरे गणित के इतिहास का पहिला भाग देखो)।

सब लोग मनु से पैदा हुए हैं इसी लिये संस्कृत में आदमी को मनुष्य, मनुज, मानुष और मानव कहते हैं। मनु की राजधानी अयोध्या प्रसिद्ध है वहाँ के धार्मिक राजा हरिश्चन्द्र के समय से काशी देवनगरी तीनों लोक से न्यारी समझी जाती है; यहाँ के रहने वालों को लोग देवता समझते थे। अब तक कहावत है कि "काशी के कंकर सब शंकर समान हैं"। यहां ही के पढ़े हुए सान्दीपनि ऋषि से बलराम और कृष्ण ने पढ़ा था, दशमस्कन्ध भागवत—अध्याय ४४, श्लोक ३१ में लिखा है।

"अथो गुरुकुले वासमिच्छन्तावुपजग्मतुः।
काश्यां सान्दीपनिं नाम ह्यवन्ति पुरवासिनम्"॥

याने गुरुकुल में वास करने की इच्छा से बलराम और कृष्ण काशी के पढ़े और अवन्ती (उज्जैन) के रहनेवाले सान्दीपनि (ऋषि) के यहाँ गए।

(बहुतों का मत है कि पाणिनि के व्याकरण के 'मुखनासिका वचनोऽनुस्वारः, ...सूत्र से मालूम होता है कि पाणिनि के समय अक्षर लिखने की रीति नहीं थी. "यवनाल्लिप्याम्" "यवनानां लिपिः यवनानी" ये सब पाणिनि के व्याकरण में पीछे से मिलाए गए हैं। जो कुछ हो पर पाणिनि शिक्षा के "त्रिषष्टिर्वा चतुष्षष्टिर्वर्णाः शम्भुमते मताः" "मंत्रो हीनः स्वरतो वर्णतो वा"......वाक्यों से साफ है कि उस समय अक्षरों की सूरत थी, ऐसा न होता तो पाणिनि अक्षरों के लिये 'वर्ण' का प्रयोग न करते)।

मनु ने भी लिखा है कि—

"सरस्वती दृषद्वत्योर्देवनद्योर्यदन्तरम्।
तं देवनिर्मितं देशमार्यावर्त्तं प्रचक्षते"॥

सरस्वती और शालग्रामी (जो कि गण्डकी के पास है) के बीच में जो देश है वह देवताओं का बनाया है। उसी को आर्य्यावर्त कहते हैं इससे भी जो विचार करो तो आर्य्यावर्त्त के केन्द्र अर्थात् बीच में प्रधान देवनगरी काशी ही ठहरती है।

काशी को देवनगर समझ कर गौतमबुद्ध ने भी इसी जगह पर उपदेश किया था। इन सब कारणों से जान पड़ता है कि इसी देवपुरी काशी में संस्कृत या प्राकृत के अक्षर बनाए गए इसी से लोग इन्हें देवनागर या देवनागरी कहने लगे।

काव्य।

जो देश की भाषा हो उसी में कुछ विशेष अर्थ दिखलाने को, जिससे उस देश के सुननेवालों को एक रस मिलजाने से खुशी हो, काव्य कहते हैं।

कर्पूर मंजरी में लिखा है—

"अत्थ विसेसः कव्वो भासा जो भोदि सो भोदु" याने भाषा चाहे जो हो उसमें अर्थ विशेष को काव्य कहते हैं।

शब्द के विशेष अर्थ से सुनने वाले के कान से एक विशेष रस भीतर जाता है जिससे मन को बहुत आनंद होता है। इसी से सुन्दर वचन को लोग कर्णामृत या श्रवणामृत कहते हैं और इसी से महापात्र विश्वनाथ ने और लक्षणों का खण्डन कर अपने साहित्यदर्पण में "वाक्यं रसात्मकं काव्यम्" इसी लक्षण को ठीक ठहराया।

मम्मट ने काव्यप्रकाश में काव्य का लक्षण—
"तद्दोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलङ्कृती पुनः क्वापि"

(शब्द और अर्थ दोनों में कोई दोष न हो, उनमें कुछ न कुछ गुण रहे और कोई अलङ्कार समझ पड़े या न समझ पड़े उसी को काव्य कहते हैं)।

महापात्र विश्वनाथ ने साहित्यदर्पण में इसका खण्डन कर पहिले जो "वाक्यं रसात्मकं काव्यम्" लक्षण लिखा गया है उसी को प्रधान माना है।

काव्य का उदाहरण लीजिए।

त्वामालिख्य प्रणयकुपितां धातुरागैः शिलाया—
मात्मानं ते चरणपतितं यावदिच्छामि कर्त्तुम्।
अस्त्रैस्तावन्मुहुरुपचितैर्दृष्टिरालुप्यते मे।
क्रूरस्तस्मिन्नपि न सहते सङ्गमं नौ कृतान्तः॥

(उत्तरमेघ श्लो० ४४)

यक्ष अपनी स्त्री से मेघ द्वारा सँदेशा कहता है कि मैं पत्थर पर गेरू के प्रेम से रूसी तेरी मूर्त्ति लिखकर जैसे ही चाहता हूँ कि तेरे पैर पर पड़ूँ वैसे ही वार वार आँसुओं की झड़ी से मेरी आँख ढँक जाती है सो हे प्रिये! कठोर दैव से मूर्त्ति में भी हमारा तुम्हारा मिलना नहीं सहा जाता।

इसमें सुननेवाले को जो रस मिलता है वह अलौकिक रस है।

इसी तरह तुलसीदास के बालकाण्ड में श्री सीताराम के ब्याह समय—

"कुअँरु कुअँरि कल भाँवर देहीं।
नयन लाभ सब सादर लेहीं॥
जाइ न बरनि मनोहर जोरी।
जो उपमा कछु कहउँ सो थोरी॥
राम सीय सुन्दर परिछाहीं।
जगमगाति मनि खंभन्ह माहीं॥
मनहुँ मदन रति धरि बहु रूपा।
देखत राम बिबाह अनूपा॥
दरस-लालसा सकुच न थोरी।
प्रगटत दुरत बहोरि बहोरी॥

कुँअर (राम) और कुँअरि (सीता) दोनों सुन्दर भाँवरी देते हैं अर्थात् भाँवर फिरते हैं, सब लोग आदर के साथ आँखों के लाभ को लेते हैं। मनोहर जोड़ी बरनी नहीं जाती, जो कुछ उपमा कहूँ सब थोड़ी है। मंडप के मणि-खंभों में राम और सीता की सुन्दर परिछाहीं जगमगाती हैं (उनकी ऐसी शोभा जान पड़ती है) मानो काम और रति (उसकी स्त्री) अनेक रूप बना कर अनुपम राम के ब्याह को देख रहे हैं। ब्याह देखने की लालसा और (हमें कोई न देख ले यह) संकोच दोनों थोड़ा नहीं याने बहुत है इसलिये प्रगटते और छिप जाते हैं।

यहाँ भाँवरी फिरने की बेरा मणिखंभों के सामने आ जाने पर परछाहीं का पड़ना और वहाँ से हट जाने पर परछाहीं का लोप हो जाना यह स्वाभाविक बात है उसे कवि ने उक्ति विशेष से वर्णन किया जिसे सुन कर एक अलौकिक रस पैदा होता है— इसलिये यह काव्य है।

इन सब बातों से यह सिद्ध होता है कि साधारण लोग जिस चाल से जिस बात को कहा करते हैं उसी बात में कुछ विशेष अर्थ गद्य या पद्य में कहने ही को काव्य कहते हैं। जैसे—

"राजा दोपहर हो गया उठो, चलो, नहाओ"॥

यह साधारण बात हुई। इसी को—

"हे नाथ, दोपहर की गर्मी से ज़मीन गर्म हो गई, आप के स्नान में शरीर के गिरे हुए पानी को पीना चाहती है" यह काव्य हुआ। इसी भाव का

"अकथयदथ बन्दि सुन्दरी द्वाः सविधमुपेत्य नलाय मध्यमह्नः। जय नृप दिनयौवनोष्मतप्ता प्लवनजलानि पिपासति क्षितिस्ते॥"

यह नैषध में श्रीहर्ष का श्लोक है।

इसी तरह।

"जौं आप जरूर पार जाना चाहते हो तो मुझे पैर धोने को कहो" यह सीधी बात हुई, इसे "हे प्रभु जो अवश्य पार जाना चाहते हो तो मुझे अपने चरण कमल के धोने की आज्ञा दीजिए।"

ऐसा गद्य में या

जौं प्रभु पार अवसि गा चहहू!
मोहिं पद-पदुम पखारन कहहू॥

ऐसा पद्य में कहें तो काव्य है॥

जिस तरह साधारण लोग बोला करते हैं उससे कुछ बढ़ कर कहने में गीत और छन्दों का भी काम पड़ता है क्यों कि किसी अच्छी बात को किसी राग रागिनी में कहें तो सुनने वाले को एक

मनोहर रस मिलने से और भी आनन्द बढ़ेगा। इस लिये जो गद्य (वार्त्तिक) काव्य है उससे अधिक पद्य (गीत या श्लोक) काव्य की प्रशंसा होती है।

पद्य काव्य में दोष इतना ही है कि जिस क्रम से हम लोग बात चीत करने में शब्दों को बोलते हैं, छंदों के ठीक करने के लिये वैसा शब्दों के क्रमों को न रखने से सुनने वालों, को शीघ्र अर्थ नहीं समझ पड़ता इससे काव्य-रस की धारा में विच्छेद पड़ता है जिससे पूरा आनन्द नहीं मिलता।

"रस की बात को काव्य कहते हैं" यह सभी भाषा के पंडितों का मत है।

पीछे से पंडितों ने काव्य में शृङ्गार, शान्त, करुण इत्यादि अनेक रसभेद कर्णकटुता, अश्लीलता, ग्राम्यत्व (गवाँरपन), कठिनता इत्यादि अनेक दोष, मधुर, ओज और प्रासाद गुण, उचित शब्दों का प्रयोग, छेकानुप्रास, लाटानुप्रास, यमक, श्लेष, चित्र, कमलबंध इत्यादि अनेक अलङ्कार और अर्थों में उपमा, दृष्टान्त, स्वभावोक्ति, अतिशयोक्ति, दीपक, तुल्ययोगिता, विरोधाभास, वक्रोक्ति इत्यादि अनेक अलङ्कार दिखाए हैं।

ये नाम संस्कृत-भाषा में हैं, हिन्दी के कवि भी इन्हीं नामों से प्रयोग करते हैं। काव्यों में नायक और नायिकाओं के अनेक भेद भी दिखाये गए हैं। ये सब बातें सभी भाषा के काव्यों में रहती हैं, केवल नामों में भेद पाए जाते हैं।

हिन्दी और संस्कृत काव्यों में जितने भेद हैं उन सब पर ध्यान दे कर जो काव्य बनाया जाय तो शायद एकाध दोहा या श्लोक काव्य लक्षण से निर्दोष ठहरे। संस्कृत का काव्य इतना बढ़ा चढ़ा हुआ है कि जो कोई कवि महादेव के अर्थ में 'भवानीपति' कह दे तो संस्कृत-काव्य जानने वाला तुरन्त समझ जायगा कि यह कवि नहीं है। संस्कृत काव्य की रीति से 'भव (महादेव) की स्त्री भवानी हुई फिर उसका पति कहने से कोई जार समझा जायगा।

काव्य में भी दृश्य याने जो लीला इत्यादि दिखाई जाय और श्रव्य जो सुनाया जाय ये दो भेद किए गए हैं। इन दो भेदों में भी बहुत अवान्तर भेद हैं—जैसे दृश्य काव्य में नाटक, अभिनय, प्रहसन, भाण... . श्रव्य काव्य में गद्य और पद्य ये दो बड़े भेद हैं फिर गद्य काव्य में आख्यायिका, कथा, खण्ड कथा, कथानिका, परिकथा ये पाँच भेद हैं।

जिस काव्य में गद्य और पद्य दोनों रहते हैं उसे संस्कृत में चंपू कहते हैं।

अग्नि पुराण के ३३६—३४७ अध्यायों में काव्य, नाटक और अलङ्कार के अनेक भेद दिखलाए गए हैं जिन सभों का वर्णन करना मानो एक पुराण का पाठ करना है।

साहित्य।

काव्य के नाटक, अलङ्कार... ..जितने अंग हैं सभों के वर्णन के सहित होने से साहित्य कहा जाता है। संस्कृत में इस शब्द की व्युत्पत्ति "व्याकरणन्यायमीमांसाकलादेः सहितस्य भावः साहित्यम्" यह है। इसलिये हिन्दी काव्य के सब अंग जिस हिन्दी ग्रन्थ में हों उसे हिन्दी-साहित्य कहेंगे। हिन्दी-साहित्य के ऊपर जो लोग अधिक विचार के साथ अनुराग करें उन्हें 'हिन्दी-साहित्य सेवी' कहना चाहिए। मेरी समझ में आज कल अंगरेज़ी 'लिटरेचर (Literature) के अर्थ में 'साहित्य' का प्रचार करना संस्कृत 'साहित्य' शब्दार्थ से बहुत ही भेद डालना है। वाल्मीकि रामायण को काव्य कहते हैं इसलिये तुलसीदास की रामायण भी काव्य कहा जा सकता है पर बहुत लोग भूल से इसे हिन्दी-साहित्य कहते हैं।

काव्य की भाषा।

जिस भाषा में जिस तरह से शब्दों के साथ विभक्ति, क्रिया, लिङ्ग और वचन का व्यवहार होता है उस भाषा के काव्य में भी उसी प्रकार से उस भाषा के शब्दों के साथ उनका व्यवहार होता है।

पद्य काव्य में छन्दों में ठीकठीक स्थानों में ह्रस्व-दीर्घ अक्षर बैठाने के लिये कहीं कहीं ह्रस्व की जगह दीर्घ और कहीं दीर्घ की जगह ह्रस्व कर दिया जाता है, और साधारण बोली में जिस क्रम से शब्द बोले जाते हैं वे क्रम भी बदल दिए जाते हैं पर शब्दों के रूप नहीं बदले जाते। इसके लिये दो उदाहरण लीजिए।

संस्कृत कालेज के पुस्तकालय में भास्वती की एक भाषा टीका है वह संवत् १८४५ में बनी है उसकी भाषा—

"मुरारि जो हैं वासुदेव तेहि के जे हहिं चरण कमल तेन्ह नमस्कार कै शिष्य निमित्त भास्वती संस्कृत शतानन्द कीन्हि। कौन काल शकु ऊन करब एक सहस्र पकैस ग्रन्थादि वर्ष भुक्त जानवे। शास्त्राब्द संज्ञा होइ। सो देख के वनमाली शिष्यार्थ भाषा टीका कीन्ह"।

(मेरी गणक तरङ्गिणी का पृ० ३३ देखो)

संवत् १६६९ में तुलसीदास की पंचनामे की बोल चाल की भाषा।

(असल पंचनामें में वाक्य मिला कर लिखे हैं, पदच्छेद नहीं है पर काशीनागरीप्रचारिणी की ओर से जो इण्डियन प्रेस में रामायण छपा है उसमें पदच्छेद किया हुआ है उसी की नक़ल मैं भी यहाँ लिखता हूँ।)

*संवत् १६६९ समए कुआर सुदि तेरसी वार शुभ दीने लिषीतं पत्र अनंद राम तथा कन्हई के अंस विभाग पुर्वसु आगें जे आग्य दुनहु जने मागा जे आग्य भै शे प्रमान माना दुनहु जने विदित तफसीलु अंश टोडर मल के माह जे बिभाग पदु होतरा..........

अंश अनंद राम	अंश कन्हई
मौजे भदेनी यह अंश पाच	... ...
तेहि यह अंश दुहु आनन्द राम	... ...
तथा लहर तारा सगरेउ तथा	... ...
छितुपुरा अंश टोडर मलुक तथा	... ...
नयपुरा अंश टोडर मलुक	... ...
हील हुज्जती नास्ती	लीषीतं कन्हई जे
लिखीतं अनन्द राम जे ऊपर	उपर लिषा से सही।
लिखा से सही।	... ...
साछी......	....
... ...	... ...
... ...	... ...
... ...	... ...
... ...	... ...
साखी	साखी काशी दास वासुदेव सुत दस्तखत—मथुरा।

मलिक महम्मद की काव्य-भाषा।

पुनि रानी हँसि कूसल पूछा।
कित गवँने करि पींजर छूछा॥
रानी तुम जुग जुग सुख पाटू।
छाज न पंखिहि पींजर ठाटू॥
जो भा पंख कहाँ थिर रहना।
चाहइ उडा पंख जो डहना॥
पींजर महँ जो परेवा घेरा।
आइ मँजारि कीन्ह तहँ फेरा॥
दिवसक आइ हाथ पइ मेला।
तेहि उर वनोवास कहँ खेला॥
तहाँ जाइ व्याधा सर साधा।
छूट न पाउ मीच कर बाँधा॥
वेइ धरि बेंचा बाम्हन हाथा।
जंबूदीप गपउँ तेहि साथा॥

*उस समय सानुनासिक अक्षर म के ऊपर अर्धचन्द्र देने की चाल नहीं मालूम होती है। माँगा, मँह में अर्धचंद्र नहीं है। अयोध्या के राजा के रसकुसुमाकर में भी में पर अर्धचंद्र नहीं है।

ह्रस्व दीर्घ पर भी बहुत कम ध्यान था। तेरसि के स्थान में तेरसी लिखा है। शायद उस समय त्रयोदशी का अपभ्रंश तेरसी ही प्रचलित रहा हो। एक ही शब्द लिखित को लिषीतं, लिखीतं और लीखीतं तीन तरह से लिखा है। से की जगह शे लिखा है। जान पड़ता है कि लिखनेवालों का इन बातों पर कुछ ध्यान न था।

तहाँ चित्र चितउर गढ़ चित्र सेन कर राज।
टीका दीन्ह पुत्र कहँ आप लीन्ह सब साज॥
(पद्मावत दो० १८३)

इस में महँ, कीन्ह, तेहि...वैसे ही आए हैं जैसे कि उस समय की बोल चाल में हैं।

कुसल, पाटू, ठाटू,...में छंद ठीक करने के लिये एक एक अक्षर दीर्घ किए गए हैं।

कीन्ह के ऐसे दीन्ह और लीन्ह भी आए हैं।

कबीर साहब की काव्य-भाषा।

ऐसी गति संसार की ज्यों गाडर की ठाट।
एक परा जो गाड महँ सबहि जात तेहि बाट॥
केरा तबहि न चेतिया जब ढिग लागी बेरि।
अब के चेते क्या भया काँटन लीन्हा घेरि॥

यहाँ भी महँ, तेहि, लीन्हा, वैसे ही हैं जैसे कि बोल चाल की भाषा में हैं।

तुलसीदास की काव्य-भाषा।

तेहि मह पितु आयसु बहुरि संमति जननी तोर।
(अयोध्या कां० दो० ४१)

जो पंचनामे में तेहि मह है वही यहाँ पर भी है।

तिन्हहिं बिलोकि बिलोकति धरनी।
दुइ सकोच सकुचति बर बरनी॥
(अयोध्या कां० दो० ११६)

पंचनामे का दुइ यहाँ भी आया है।

"लिये दुनउ जन पीठि चढ़ाई"
(कि० कां दो० ५)

पंचनामे का दुनउ जन यहाँ भी है।

बहुत पोथियों में दुअउ जन पाठ है।

संभव है कि उस समय पंचनामे के साछी और साखी के ऐसा दुनउ और दुअउ दोनों शब्द प्रचलित रहे हों।

इन सब उदाहरणों से साफ़ है कि हिंदी भाषा के काव्य और बोल चाल की भाषा शब्दों के रूप एक ही हैं।

उस समय तेहि=तिसका। जेहि=जिसका रामहि=राम का या राम को।

राम कहँ, राम केर=राम का।

तेहिमह=तिसमें, जासु=यस्य=जिसका, तासु=तस्य=तिसका। राम कहा=राम ने कहा। सुग्रीव गा या गयऊ=सुग्रीव गया।

कीन्ह=किया। लीन्ह=लिया। दीन्ह=दिया, ... जाब=जाना। कोहाब=कोहना। खाब=खाना.........

भा, भयउ=भया, हुआ।......

तासन=तासों=तिससे, उससे

ऐसे शब्दों के रूप प्रचलित थे। "ने" का कहीं नाम नहीं है, पंचनामे में देखो दुनउ जने मागा। जैसे संस्कृत में अकर्मक और सकर्मक दोनों क्रियाओं में कर्त्ता का प्रथमान्त रूप रहता है उसी तरह उस समय की हिंदी भाषा में भी था। सूरदासजी के सूरसागर में भी प्रायः 'ने' का प्रयोग नहीं है।

आज से ५०० वर्ष पहिले की हिंदी भाषा का कुछ नमूना कबीरदास की साखी, मलिक महम्मद की पदुमावत और मुरारि की भास्वती टीका से मिलता है। और ३०० वर्ष पहिले का नमूना तुलसीदास के पंचनामे और उनके ग्रंथों से मिलता है।

इन लोगों के ग्रंथों की भाषा बनारस और अवध के भीतर की है। इन के ग्रंथों के देखने से और मुरारि की भाषा और तुलसीदास के पंचनामे की बोल चाल की भाषा से साफ़ है कि उस समय लोग जैसा बोलने में शब्दों का व्यवहार करते थे वैसा ही काव्य में भी व्यवहार करते थे।

संस्कृत में तो कुछ कहना ही नहीं है उस में तो बोल चाल और काव्य की भाषा आज तक एक ही है।

आज कल जिस हिंदी भाषा में अनेक गद्य काव्य बनते जाते हैं लोग उस भाषा में पद्यकाव्य नहीं बनाते, पद्यकाव्य के लिये पुरानी ही भाषा रक्खी जाती है इसलिये दोनों में शब्दों के रूपों में भेद पाये जाते हैं।

लल्लूजीलाल कवि की भाषा ।

आगरे के रहने वाले लल्लूजी लाल कवि ने कलकत्ता फोर्टविलियम कालेज के विद्यार्थियों के लिये, लार्डमिण्टो छठवें गवर्नर जेनरल के समय (स० १८०७= १८१३) डाकृर जान गिलकिस्ट श्रौर बिलियम हंटर साहब की आज्ञा से आगरे की बोली में प्रेमसागर को बनाया। तब से उन की बोलचाल की भाषा इधर उधर फैलने लगी। उसी से ने, था, थे,......का प्रचार होने लगा पर वहाँ से अठारह कोश पर व्रज के रहने वालों की भाषा में ने आने पर भी बहुत भेद था।

लल्लूजी ने जो व्रजभाषा में संस्कृत हितोपदेश का उलथा किया है उसका भी एक उदाहरण लीजिये।

इतेक में व्याधी ने रूख तरैं चाँवर के कनिका डारि तापर जाल पसारयौ, तहाँ चित्रग्रीव कपोत कुटुंब समेत उडत उत आय कढ्यौ। तिन में तें एक पंछी देखि बोल्यौ, इन चाँवरनि कौं हौं चुंग्या चाहतु हौं। चित्रग्रीव कही, अरे या बन में चाँवर कहाँ तें आये यह कछु कौतुक है, या तें ये मोकौं नीके नाहीं लागतु। सुनौ, जौ तुम इन चाँवरनि कौ लोभ करिहौ, तौ वैसें होयगी, जैसें कंकन के लोभ सों एक पथिक दलदल में फँसि बूढ़े बाघ कौ अहार भयौ, यह सुनि पंछियन कही..............

जैसे आज कल के से की जगह उस समय व्रज में सों का प्रचार था वैसे ही आज कल के में की जगह मों का प्रचार था पर लल्लू जी ने में ही का व्यवहार किया है। संभव है कि में भी प्रचलित हो गया हो या लल्लूजी ने भूल से आगरे की बोली के में लिख दिया हो।

जैसे काव्यों में डरि=डरकर, सुनि=सुनकर, देखि=देखकर,........आते हैं उसी तरह लल्लूजी ने व्रज की बोलचाल भाषा में भी लिखा है। "चित्रग्रीव कही" पंछियन कही इस में ने को उडा दिया है श्रौर कनिका के संग के भी है।

राजा शिवप्रसादजी अपने नए गुटके के १०० वें पृ० में नोट लिखते हैं—

"व्रज छोटा ही सा मंडल है पर भाषा वहाँ की ऐसी मीठी प्यारी कि सारे संसार में वैसी कहीं न कोई निकलेगी। ईरान से एक शाइर अपने घमंड में यही साबित करने को आया कि भला फारसी के सामने बेचारी व्रजभाषा की क्या गिनती है लेकिन अभी व्रज के भीतर भी पैर नहीं रक्खा था कि क्या देखता है एक पनिहारी कूएँ से पानी की गगरी सिर पर धरे घर को जा रही है श्रौर उसकी लड़की जो पीछे पड़ी जाती है पुकार रही है।

"मायरी, माय मग साँकरी पायनु मैं काँकरी गड़तु है" शाइर साहब के होश जाते रहे सोचे कि जहाँ पनिहारियों की लड़कियाँ ऐसी शीरीनी के साथ बोलती हैं वहाँ के शाइरों का क्या ठिकाना है। ग़रज़ मुँह छुपा कर ठंडे ठंडे अपने देश की राह ली।

मुझे बड़ा अचरज है कि राजा साहब ने इस कहानी को कैसे सच समझ लिया क्योंकि ईरान के शाइर साहब तो लड़की की बोली भी न समझ सके होंगे फिर उसकी शीरीनी कैसे चक्खी। शायद लड़की ने कुछ ऐसे सुर से गाकर बात कही हो जिस सुर से शाइर साहब मोह गए हों। अगर वह व्रजभाषा समझते रहे हों तो शायद सुर ही के सुनने के लिए व्रज में आए हों।

यहाँ मायरी माय श्रौर साँकरी काँकरी मैं छेकानुप्रास होने से कवि लोग इसे काव्य कह सकते हैं।

जब तक भाषा का अच्छी तरह से ज्ञान न होगा तब तक उस भाषा के काव्य का गुण-दोष कभी नहीं जान पड़ेगा। इसी पर कहावत है—

"भैंस के आगे बेन बाजै भैंस बैठ कर पगुरी करै"
या "बानर आदी का सवाद क्या जाने"

अपने देश ही की भाषा मीठी श्रौर प्यारी मालूम होती है।

पदच्छेद।

पहिले संस्कृत और हिन्दी में पदच्छेद के साथ लिखने की चाल न थी। जितनी लिखी प्राचीन पोथियाँ मिली हैं किसी में शब्द अलगा कर नहीं लिखे हैं।

पढ़ाने के समय पंडित का यह पहिला काम था कि श्लोक या सूत्र के पढ़ देने के बाद विद्यार्थी को पदच्छेद बतावे फिर अन्वय और शब्दों की व्युत्पत्ति करके भावार्थ समझा दे। जुदी जुदी तरह से पदच्छेद करने से एक ही वाक्य के कई अर्थ हो जाते हैं। जैसे तुलसीदास के "येहि सन हठि करिहउँ पहिचानी। साधु से होइ न कारज हानी" इस चौपाई में कारजहानी, कार जहानी, का रजहानी ऐसे पदच्छेद करने से तीन अर्थ होते हैं।

मीमांसा के आचार्य कुमारिलभट्ट के विषय में परंपरा से यह कहानी चली आती है कि उनके पढ़ने के समय एक जगह पाठ आया—

"तत्रतुनोक्तं अत्रापिनोक्तं इति द्विरुक्तम्"

उन के गुरु तत्र तु न उक्तं अत्र अपि न उक्तं ऐसा पदच्छेद कर अर्थ करते थे जिससे आगे का वाक्य "इति द्विरुक्तं" (इस लिये दो बेर कहा गया) असंगत होता था। गुरुजी हैरान होकर मध्याह्न की संध्या करने चले गए।

इस बीच चुपचाप कुमारिल आकर पोथी खोल कर "अत्र तुना उक्तं तत्र अपिना उक्तम्" ऐसा पदच्छेद बनाकर पोथी बाँध धीरे से चले गए, दो पहर बाद गुरुजी ने उस वाक्य के अर्थ सोचने के लिए जो पोथी खोली तो देखा कि पदच्छेद किया हुआ है जिससे तुरंत वाक्य का अर्थ लग गया। पता लगाने पर मालूम हो गया कि कुमारिलभट्ट ने पदच्छेद कर दिया था। इस पर गुरु कुमारिल भट्ट पर बहुत प्रसन्न हुए।

पदच्छेद के साथ लिखने की चाल अँगरेजों की निकाली है। ये लोग जब हिन्दी भाषा पढ़ने लगे तो समझने में कठिनाई पड़ी। उसे हटाने के लिए ये लोग हिन्दी की पोथियाँ पदच्छेद के साथ छपवाने लगे। जैसे अँगरेज़ी में to (टु) in (इन) ये अलग लिखे जाते हैं उसी तरह हिन्दी में भी को, का, में,...अलग लिखे जाने लगे। इसी से आज कल विभक्ति को शब्दों से अलग लिखना या मिलाकर लिखना यह झगड़ा खड़ा हो गया है। लल्लूजी ने अपनी लालचंद्रिका को पुरानी चाल से छपवाया था याने उस में पदच्छेद नहीं है, वैसे ही डा० ग्रियर्सन साहब ने भी फिर से छपवा दिया है।

अँगरेजी ही समय से संस्कृत की पोथियाँ भी पदच्छेद के साथ छापी जाती हैं। वे लोग अपने समझने के लिए 'रामेऽगतः' ऐसा पदच्छेद करते हैं जिस में 'रामोऽगतः' का संशय न हो पर व्याकरण के अनुसार संधि होने से, रामोगतः' ऐसा मिलाकर लिखना चाहिए।

अब छपवानेवाला अपने अर्थ के अनुसार पदच्छेद कर काव्य के ग्रंथों को छपवाता है जिससे पढ़नेवाले को उस अर्थ के समझने के लिये पदच्छेद करने की जरूरत नहीं पड़ती।

तुलसीदास के पंचनामे में तेहि मह लिखा है जो कि आज कल की हिन्दी में तिसमें या उसमें है।

मुझे जान पड़ता है कि संस्कृत का तस्य मध्ये ही तेहि मह है। ऐसी दशा में मह या में एक शब्द है यह अलग रहे तो उत्तम। इसी तरह के, को, केरा...ये भी शब्द जान पड़ते हैं इसलिये अलग रहने में अच्छा है।

लल्लूजी के साथ साथ अँगरेजों की चलाई हिन्दी ही जब आज कल की हिन्दी है तब उन लोगों की चाल बदलने से मैं कुछ फल नहीं समझता, संस्कृत की चाल चलानी हो तो शब्दों के साथ उन्हें मिला कर रामे के ऐसा राममें लिखिए।

भाषा में नए शब्दों की जरूरत।

जिस देश में जो जो पदार्थ पाए जाते हैं उन के लिए वहाँ के रहनेवाले पहिले ही से शब्द बनाए रहते हैं। आपस में उन्हीं शब्दों का प्रयोग करते हैं।

जब उन के देश में नये राज या व्यापार...से नई नई चीज़ें आने लगती हैं तब उन्हें नए शब्दों की ज़रूरत पड़ती है। जो नई चीज अपने देश में पहुँच जाती हैं उस के रूप, रंग, गुण और धर्म से नाम रख लिये जाते हैं या जिस देश से जो पदार्थ आए उस देश में वे जिस शब्द से कहे जाते हैं उन्हीं शब्दों से दूसरे देशवाले भी उन्हें कहने लगते हैं, इस में इतना भेद अवश्य हो जाता है कि विदेशी शब्दों का ठीक ठीक उच्चारण न होने से उनके बहुत अंशों में भेद पड़ जाता है, जैसे इंगलिश का अँगरेज़, फ्रेंच का फरंग फिर फिरंगी,...... ।

रूप से गोरखनाथियों को कनफटा और टेलिग्राफ को तार, रंग से युरोपियन को गोरा, गुण से म्याच को दियासलाई और धर्म से म्यागनेट की सुई को क़ुतुबनुमा कहते हैं। कभी कभी उस देश के नाम से भी वहाँ की चीज़ कही जाती है जैसे चीन से आने के कारण चीनी, मिश्र से आने के कारण मिश्री और सूरत से आने के कारण सूरती कही जाती है।

फिरंगी यह शब्द हिंदुस्तान में ३०७ वर्ष से प्रचलित है। रंगनाथ ने सन् १६०३ ई० में सूर्य-सिद्धान्त पर एक टीका बनाई है उसमें स्वयंवह यंत्र के ऊपर लिखा है कि "इयं स्वयंवहविद्या समुद्रान्तर्निवासिजनैः फिरंग्याख्यैः सम्यगभ्यस्ता" समुद्र के पार रहनेवाले फिरंगी नाम के लोगों ने इस स्वयंवहविद्या का अच्छी तरह से अभ्यास किया है।

इस तरह विदेशी चीज़ों के नाम के लिये अपने देश की भाषा में नए नए शब्द बनाए जाते हैं।

जिस देश में जिस चीज़ के लिये जो शब्द प्रचलित हैं उन्हीं शब्दों से जो हम लोग भी उन चीज़ों को कहें तो कुछ दोष नहीं बल्कि सुभीता है क्योंकि ऐसी दशा में नए शब्दों के गढ़ने के लिये कमेटी बैठाने की ज़रूरत नहीं पड़ेगी। पर जिन चीज़ों के लिये अपनी भाषा में शब्द बने बनाए हैं उनके लिये विदेशी शब्द का व्यवहार करना उचित नहीं। पुस्तक या पोथी के रहते हिंदी में किताब या बुक का व्यवहार करना मेरी समझ में ठीक नहीं। नए शब्दों की ज़रूरत हो तो सहज संस्कृत शब्दों को रखिए; पानी की जगह जीवन, भुवन या वन रखने से कुछ फल नहीं।

बहुत लोग अपनी लियाक़त दिखाने के लिये अपनी भाषा के शब्द रहते भी विदेशी भाषा के शब्दों का व्यवहार करते हैं।

विक्रमादित्य के नव रत्नों में एक रत्न वराहमिहिर ने ग्रीक भाषा में अपना पाण्डित्य दिखाने के लिये अपने बृहज्जातक में बृष को तावुरि, सिंह को लेओ, मिथुन को जितुम,...लिखा है।

अकबर बादशाह के प्रधान पंडित ने अरबी की लियाक़त दिखाने के लिये नीलकंठी तंत्र में सीमा को हद्द और नवमांश को मुसल्लह लिखा है।

जो विदेशी शब्द अपनी देशभाषा में अच्छी तरह से प्रचलित हो गए हैं उनके प्रयोग करने में कुछ दोष नहीं। जैसे हिंदी भाषा के दरिद्र के रहते ग़रीब का प्रयोग करना अनुचित नहीं पर ग़रीब की जगह ग़रीब लिखना ठीक नहीं (रामकहानी की भूमिका देखो)।

हिन्दी-भाषा का मूल।

पण्डित लोग प्राकृत भाषा को सरस्वती की बाल भाषा कहते हैं। उन लोगों का कहना है कि जैसे बच्चे टूटे फूटे अक्षरों से शब्दों का उच्चारण करते हैं उसी तरह जब सरस्वती बच्चा थी तब जैसे बोलती थी वही प्राकृत भाषा है, फिर सरस्वती ने बड़ी होने पर उन शब्दों में संस्कार दे कर जैसा उच्चारण किया उसे संस्कृत कहते हैं।

जो हो पर यह बात तो साफ है कि रामचन्द्र के समय ही से मनुष्य की भाषा से संस्कृत भाषा भिन्न है।

शिंशिपा पेड़ पर बैठ कर हनुमान ने विचार किया है कि जानकी से किस भाषा में बात-चीत करूँ।

"अहं ह्यतितनुश्चैव वानरश्च विशेषतः।
वाचं चोदाहरिष्यामि मानुषीमिह संस्कृताम्॥
यदि वाचं प्रदास्यामि द्विजातिरिव संस्कृताम्।
रावणं मन्यमाना मां सीता भीता भविष्यति॥
अवश्यमेव वक्तव्यं मानुषं वाक्यमर्थवत्।

(वाल्मी० सु० कां० स० ३० श्लो० १७-१९)

इस से साफ है कि उस समय भी साधारण मनुष्यों की भाषा से संस्कृत भाषा भिन्न थी। रावण संस्कृत जानता था इसी लिये हनुमान ने कहा कि संस्कृत में बात-चीत करने से मुझे रावण समझ कर सीता डर जायगी।

इस से मुझे निश्चय है कि बनारस से अवध तक जो आदि में मनुष्य-भाषा थी वही बिगड़ते बिगड़ते हम लोगों की आज कल की भाषा है।

इस में संशय नहीं कि राजसभा में और आर्य लोगों में संस्कृत भाषा में व्यवहार होता था। पर उस समय भी अनेक भाषाएँ थीं।

पतञ्जलि ने पाणिनि अष्टाध्यायी के महाभाष्य में लिखा है।

"शवतिर्गतिकर्मा कम्बोजेष्वेव भाषितो भवति विकार एवैनमार्या भाषन्ते शव इति। हम्मतिः सुराष्ट्रेषु रंहतिः प्राच्यमध्यमेषु गमिमेव त्वार्याः प्रयुञ्जते।"

कंबोज में चलने को शवति कहते हैं आर्य लोग विकार याने मुर्दे को शव कहते हैं। सुराष्ट्र में चलने को हम्मति और पूर्व मध्यम में रंहति कहते हैं, इसी को आर्य लोग गति कहते हैं। (मेरे गणित के इतिहास का पहला भाग देखो) पतञ्जलि अवध के गोंडा जिले में पैदा हुए हैं इसी लिये लोग इन्हें गोणिकापुत्र भी कहते हैं।

बहुत लोग पाणिनि का जन्म ईसा से ८०० वर्ष पहिले मानते हैं (रजनीकान्त बाबू का बनाया बंगला भाषा का पाणिनि नाम ग्रंथ देखो) हिन्दी भाषा में पुंलिंग में मेरा, तेरा, आया, गया,......और स्त्री लिंग में मेरी, तेरी, आई, गई,......उनका कपड़ा, उनके कपड़े, उनकी पोथी......प्रयोग होते हैं। संस्कृत में पुंलिंग और स्त्रीलिंग दोनों में मम, तव, आजगाम, जगाम या ययौ, तेषां वस्त्रं, तेषां वस्त्राणि, तेषां पुस्तकं......प्रयोग होते हैं।

हिन्दी के काव्य में दोहा, सोरठा, बरवा, चौपाई छप्पय, घनाक्षरी, सवैया......छंद बहुत करके पाए जाते हैं पर प्राचीन संस्कृत के काव्यों में ये कहीं नहीं पाए जाते। संस्कृत के जितने छंद ग्रंथ हैं सब प्राकृत पिंगल के आधार पर लिखे गए हैं।

हिन्दी में बहुत पुराने समय से तरह तरह के गीत प्रसिद्ध हैं। पुराने समय के संस्कृत गीत कहीं नहीं पाए जाते। इन सब बातों से निश्चय होता है कि हिन्दी भाषा संस्कृत भाषा से भिन्न है।

संभव है कि एक देश में रहने से आपस में दोनों संस्कृत और हिन्दी ने शब्दों का लेन देन व्यवहार किया हो।

इस में संशय नहीं कि पीछे से यशवंतभूषण, व्यंगार्थकौमुदी, रसराज, कविप्रिया........काव्य साहित्य के हिन्दी-ग्रंथ संस्कृत के काव्यप्रकाश, साहित्यदर्पण, कुवलयानन्द ......की चाल पर बने।

जैसे संस्कृत में पिक, नेम, तामरस इत्यादि म्लेच्छ शब्द मिल गए उसी तरह इस हिंदी में भी, ग़रीब, अमीर, कुल, मुनासिब इत्यादि अरबी फारसी के शब्द मिल गए। बात पुरानी पड़ जाने से आज कल किसी संस्कृत की डिकशनरी में पिक, (कोयल) तामरस (कमल) को म्लेच्छ शब्द नहीं लिखा है, पर जैमिनि न्यायमाला की टीका में माधवाचार्य ने यह बात साफ साफ लिखी है।

आजकल की हिन्दी।

लल्लूजी लाल कवि, राजा शिवप्रसाद और बाबू हरिश्चन्द्र की बोल चाल की भाषा में संस्कृत शब्दों के मेल से आजकल की हिंदी बन रही है। संस्कृत शब्द रूप और अर्थ बदल कर ऐसे मिल रहे हैं जिस का कुछ ठिकाना नहीं।

संभव है कि जैसे हिंदू और मुसलमान 'भाइयों' के बीच में एक नया पोशाक बनता जाता है उसी तरह कुछ दिनों के बाद साधारण हिंदीभाषा और संस्कृत भाषा के बीच में एक नई भाषा पैदा हो जाय।

अँगरेज़ी चाल पर अँगरेज़ी पढ़े हुए लोग गद्य काव्य में कहानी किस्से लिख रहे हैं, इनके काव्य में स्वभावोक्ति रहती है पर अधिक संस्कृत शब्दों के भर देने से प्रसाद गुण दूर हुआ जाता है और उसके साथ साथ पद्य काव्य कम हुआ जाता है।

प्राचीन काव्यों के पढ़ने का भी प्रचार बिलकुल बंद हो गया है, स्कूलों में जो हिन्दी-पुस्तकें पढ़ाने के लिये नियत हैं उनका पढ़ना या पढ़ाना एक खेल सा हो रहा है, लोग यही समझते हैं कि गुरु के मुँह से खाली अँगरेज़ी पढ़नी चाहिए पर यह भूल है। सभी विद्या के लिये गुरु की जरूरत है।

लोग शक्ति से काव्य तो कर लेते हैं पर इसमें कौन अलंकार, कौन नायिका, कौन रस......है यह कुछ नहीं समझते।

संस्कृत के पंडित हिंदी की ओर कुछ नहीं ध्यान देते, मैंने कई बार उद्योग किया कि बनारस संस्कृत कालेज में एक हिंदी का अच्छा पंडित रहे जो नवीन प्राचीन दोनों ग्रंथों को अच्छी तरह से पढ़ावे और उसमें भी आचार्य परीक्षा हुआ करे। पर इस बात पर कोई ध्यान नहीं देता।

संभव है कि कुछ दिनों के बाद, केवल किस्से कहानी के ग्रंथ पढ़ने पढ़ाने में रह जायँ, और पुरानी हिंदी के पंडित खोजने से भी न मिलें। विहारी की सतसई, व्यंगार्थकौमुदी इत्यादि ग्रंथ पुस्तकालयों ही में पड़े सड़ें।

मेरी इच्छा है कि एफ. ए. की परीक्षा में तुलसीदास के बालकांड का मानसप्रकरण या मलिक महम्मद की पद्मावती नख शिख प्रकरण और बाबू हरिश्चन्द्र के पिता बाबू गोपालचंद का भारतीभूषण नियत किया जाय।

बी. ए. की परीक्षा में

यशवंतभूषण, व्यंगार्थकौमुदी, और मतिराम का रसराज रक्खा जाय।

एम. ए. परीक्षा में

विहारी की सतसई किसी एक टीका के साथ, और अयोध्या के राजा प्रतापनारायणसिंह का रसकुसुमाकर रक्खा जाय।

जो दोनों बहुत जान पड़ें तो इनमें से एक या दोनों के कुछ भाग नियत कर दिए जायँ।

या आप लोग विचार कर और ग्रंथों को रखिए। मेरा यह कहना है कि हिंदी ग्रंथों की कमी नहीं है कमी केवल हमारे लोगों के उद्योग में है। बहुत लोगों का मत है कि स्कूलों में हिंदी का अधिक प्रचार होने से संस्कृत भाषा दब जायगी पर मैं तो समझता हूँ कि संस्कृत की तरक्की होगी। बंगाल में बंगला भाषा, गुजरात में गुजराती... के युनिवर्सिटी में प्रचार होने से क्या उस तरफ संस्कृत भाषा दब गई।

आज कल लोगों को संस्कृत काव्यों का हिंदी भाषा में उलथा करने की ज्यादा रुचि होती जाती है। संस्कृत काव्य में कौन कहानी है इसके बताने के लिये जो हिंदी भाषा में उलथा किया गया हो तो ठीक है, पर जो इस गरज से अनुवाद किया गया हो कि मेरा भी अनुवाद संकृस्त काव्य के ऐसा हिंदी काव्य कहावे तो अनुवादक को चाहिए कि संस्कृत काव्य में जो जो काव्य की बातें हों वे सब हिंदी अनुवाद में भी आ जाँय।

कुछ अनुवाद का भी उदाहरण लीजिए।

अपसृते च तस्मिन् विहङ्गराजो राजाभिमुखो भूत्वा समुन्नमय्य दक्षिणं चरणमति स्पष्टवर्णस्वरसंस्कारया गिरा कृतजयशब्दो राजानमुद्दिश्यार्यामिमां पपाठ—

स्तनयुगमश्रुस्नातं समीपतरवर्त्ति हृदयशोकाग्नेः।
चरति विमुक्ताहारं व्रतमिव भवतो रिपुस्त्रीणाम्॥

(संस्कृत कादम्बरी)

बाबू गदाधरसिंह का किया इसका हिंदी अनुवाद "सूआ ने पिँजरे के भीतर से अपना दहिना चरण उठा कर "राजा की जय हो" ऐसा आशीर्वाद किया।"

जिस आर्या में दोनों स्तनों में तपस्वी का रूपक है उसकी कुछ चर्चा ही न की गई। 'पिँजरे के भीतर से' यह मूल में नहीं है।

बाबू गदाधरसिँह ने बँगला ग्रन्थ से हिंदी में अनुवाद किया है इसलिये जान पड़ता है कि बँगला-अनुवाद भी ठीक नहीं है।

पद्य काव्य में छंद के अनुरोध से कुछ घटाना और बढ़ाना पड़ता है पर गद्य में तो ठीक ठीक अनुवाद होना चाहिए।

रघुवंश के ९वें सर्ग का ३१ श्लो०

उपहितं शिशिरापगमश्रिया
मुकुलजालमशोभत किंशुके।
प्रणयिनीव नखक्षतमण्डनं
प्रमदया मदयापितलज्जया॥

लाला सीतारामजी का अनुवाद—

मधु श्रिय देह सोह अति सुन्दर।
कली परासन माहि मनोहर॥
हिम दिनेस नहिं सकल नसावा।
आए मधु ऋतु कछुक घटावा॥

मैं समझता हूँ कि इसमें श्लोक के उत्तरार्ध का अनुवाद ही छूट गया है।

कालिदास ने इस सर्ग के हर एक श्लोक के चौथे चरण में 'प्रमदया मदया' के ऐसा यमकालंकार रक्खा है पर अनुवादक ने अपने अनुवाद में इसकी कहीं चर्चा ही न की। इसमें संशय नहीं कि अनुवाद में ठीक ठीक मूल की सब बातें नहीं आ सकतीं तौ भी लक्षणाव्यञ्जना और ध्वनि से मूल की बातें आ जानी चाहिएं।

मैं तो समझता हूँ कि संस्कृत काव्य से बढ़कर हिंदी काव्य में आनन्द मिलता है।

कुछ हिंदी काव्य का नमूना भी देखिए।

चरन धरत चिंता करत नींद न भाव न सोर।
सुवरन कहँ ढूँढत फिरत कवि व्यभिचारी चोर॥
(राजा रघुराजसिंह)

इस दोहे में तीन अर्थ हैं।

कवि पक्ष में चरन से छंद का पाद, सुवरन से सुन्दर अक्षर है। व्यभिचारी पक्ष में चरण धरत से दूसरे के घर पैर रखते ही और सुवरन से सुन्दरवर्णवाली स्त्री है और चोर पक्ष में सुवरन से सोना है।

दृग अरुझत टूटत कुटुँब जुटत चतुर सँग प्रीति।
परत गाँठ दुरजन हिए दई नई यह रीति॥
(बिहारी की सतसई)

इस में विरोधालंकार है।

क्योंकि रीति है कि जो अरुझता है वही टूटता है, जो टूटता है वही जुटता है, और जो जुटता है उसी में गाँठ पड़ती है, पर यहाँ पर सब उलटी बात है, नायक और नायिका की आँखें अरुझती हैं, कुटुम्ब टूटता है, दोनों चतुरों के सँग प्रीति जुटती है और दुर्जनों के दिल में गाँठ पड़ती है इस लिये यह नई बात है।

अहो पथिक कहियो तुरत गिरिधारी सों टेरि।
दृग झरि लाई राधिका बह्यो चहत व्रज फेरि॥
(बिहारी की सतसई)

इसमें अतिशयोक्ति है।

हे बटोही (पथिक) गिरिधारी (कृष्ण) से तुरंत टेर कर (पुकार कर) कहना कि राधे की आँखों ने (वर्षा की) झड़ी लगाई है सो व्रज फिर बहने चाहता है अर्थात् इन्द्रकोप की झड़ी से आपने व्रज को बचाया है सो फिर चलकर बचाइए। यहाँ कृष्ण के सब नामों को छोड़ कर कवि ने 'गिरिधारी ही नाम को रखा है इस में भी काव्य है याने पहिले 'गिरिधारी' ही होकर आपने व्रज को बचाया है इस लिये अब भी 'गिरिधारी' होइए।

यसु दातन को झँखत हैं यशुदा तन को नाहिं।
नर कपरन को झँखत हैं नरक परन को नाहिं॥
(मेरे पिता पं० कृपालदत्त)

पूर्वार्ध और उत्तरार्ध में यमकालंकार है। (लोग) दाताओं (दातन) के यश के लिए झँखते हैं (पर) कृष्ण (यशुदातन) के लिए नहीं झंखते। और लोग (नर) कपड़ों के लिए झंखते हैं (पर) नरक पड़ने के लिए नहीं झंखते।

बैगन लेकर कामिनी कहत चितइ घनस्याम।
भरता करि हौं हौं तुम्हहिं जौं चलिहो मम धाम ॥
(बाबू गोपालचंद का भारतीभूषण)

इसमें वागविदग्धा नायिका है।

हाथ में बैगन (भंटे) को लेकर वह कामिनी कृष्ण की ओर देख कर कहती है कि मेरे घर चलोगे तुम्हें भरता करूँगी, सुननेवाले तो समझते हैं कि भँटे से कहती है कि तुम्हारा भर्ता (चोखा) बनाऊंगी पर कृष्ण से कहती है कि घर चलो तुम्हें अपना पति (भर्त्ता) बनाऊँगी।

वा दिन की सुधि तोहि को भूलि गई कित साखि।
बागवान तोहि घूर तें लायो गोदी राखि ॥
लायो गोदी राखि पालि सींच्यो निज कर तें।
तूं फूल्यो अभिमान पाइ आदर मधु-कर तें ॥
बरनै दीनदयाल बड़ाई है सब तिनकी।
तूं झूमै फल भार त्यागि सुधि को वा दिन की ॥
(बाबा दीनदयाल गिरि का अन्योक्तिकल्पद्रुम)

इसमें अन्योक्ति और गोदी राखि में श्लेष है, हे वृक्ष, (सखि) उस दिन की सुधि तुझे क्यों भूल गई जिस दिन कि तुझे बागवान गोदी (कोरे) में रख कर ले आया या तुझे घूर से ले आया और राख में गोद (गाड) दिया। गोदी में रख कर तुझे लाया या तुझे लाया और राख में गोद कर और पाल कर अपने हाथ से सींचा। अब तूं भौंरों से इज्जत पाकर घमंड से फूल उठा। दीनदयाल कहते हैं कि उस बागवान की सब बड़ाई है (पर) तूं उस दिन की सुधि भूल कर (आज) फलों के भार से झूम रहा है।

गोसाईं तुलसीदासजी के ग्रंथ भी काव्य रस से भरे हैं। संवत् १८९२ चैत्र शुक्ल षष्ठी शनिवार को महाराज काशिराज श्री उदितनारायणसिंहजी का जब देहान्त हुआ उस समय महाराज श्री ईश्वरीप्रसाद नारायणसिंहजी बहादुर के राज्याभिषेक के समय लोगों ने कहा कि स्वर्गवासी महाराज की इच्छा थी कि तुलसीदास के रामायण पर एक सुन्दर टीका बनाई जाय। इस बात के सुनते ही महाराज ने अपने चचा साहब की आज्ञा शिर पर रख बाबा रघुनाथदासजी से मानसदीपिका टीका बनवाई। यह टीका पत्थर के छापे पर छपी हुई है। इसकी भूमिका बनारस संस्कृत कालेज के साहित्यशास्त्राध्यापक पण्डित शीतलाप्रसादजी के चाचा श्री ईश्वरीदत्त ने लिखी है। इस टीका में तुलसीदास के रामायण में काव्य के सब अंग दिखाए गए हैं। मैं और साहित्योपाध्याय पं० श्री सूर्यप्रसाद मिश्रजी ने भी मानसपत्रिका के १४—१८ खण्डों में रामायण के काव्यों को कुछ देखाया है। इसलिये उस विषय पर फिर से कुछ लिखना केवल समय नष्ट करना है। एक विनयपत्रिका का पद और मेरा किया हुआ उसका संस्कृतानुवाद भी देखिए।

ऐसी मूढता या मन की।
परिहरि राम भक्ति सुरसरिता
आस करत ओस कन की।
धरम समूह निरखि चातक ज्यों
तृषित जानि मति घन की ॥

नहिँ तहँ शीतलता न बारि पुनि
हानि होत लोचन की।
ज्यों गच काँच बिलोकि स्येन जड
छाँह आपने तन की ॥

टूटत अति आतुर अहार बस
छति बिसारि आनन की।
कहलों कहौं कुचाल कृपानिधि
जानत हो गति जनकी ॥

तुलसिदास प्रभु हरहु दुसह दुख
करहु लाज निज पन की ॥ ९१ ॥

एताहृशी मूढता मनसः ।
रामभक्तिसुरसरितं हित्वा वाञ्छति कथां कुपयसः ।
धूमपटलमवलोक्य चातको, बुद्ध्वा यथाभ्रमलसः ॥

लभते तत्र न शीतलमम्भो, दृग्वैरेखं च वयसः ।
श्येनः काचकुट्टिमे दृष्ट्वा, सं विम्बं मतिरभसः ॥

पतति तत्र परपतत्रिरूपे हानिमुपैति च वचसः ॥
मनसः किं वर्णये जडत्वं करुणानिधे कुयशसः ।
कृत्वाऽऽश्रम पणत्रपां जनस्यापहर दुःखमति तपसः॥९१॥

नवाब खानखाना का एक बरवा भी सुनिये ।
पथिक आर पनिघटवाँ कहत पियाव ।
पैयाँ परउँ ननँदिया फेरि कहाव ॥

एक राही पनिघट पर आकर कहने लगा कि मुझे (पानी) पिआवो । वहाँ पर एक प्रोषितपतिका (जिसका पति विदेश चला गया हो) भी बैठी थी वह अपनी ननदी से कहने लगी कि तेरे पाँव पर पड़ती हूँ इस राही से फिर पियाऽऽव कहवा । वह पियाव का 'अर्थ पिया आव' याने 'पति आता है' यह समझ कर मन को संतोष देने के लिये फिर उस बात को सुनना चाहती है । दूसरे के वाक्य से अपने चाहे हुए अर्थ को निकालना इसे संस्कृत में वक्रोक्ति कहते हैं । नैषधकाव्य में इसके अनेक उदाहरण हैं ।

इसमें संशय नहीं कि संस्कृत जाननेवाले इस हिन्दी को तुच्छ समझते हैं और अपने मकदूर भर इसके दबाने का यत्न करते हैं पर सोच कर देखो तो यह उन लोगों की भूल है । जो योरप की चाल चलो तो वहाँ भी देश-भाषा ही की उन्नति से देशोन्नति हो रही है, ल्याटिन के प्रचार के लिये किसी की इच्छा नहीं । जो भाषा देशभर में फैल जाती है उसी का जय होता है । आज कल हिन्दी भाषा में जितने व्यावहारिक शब्द प्रचलित हैं उतने संस्कृत में नहीं हैं । संस्कृत से धातु और प्रत्यय से नये शब्द बन सकते हैं पर वे बनानेवाले के घर के आस पास ही झूलते रहेंगे । आगरे को अगला और मद्राज़ को मन्दिरराज कहिये पर इस से आगे की राह में अगला (अगड़ा) पड़ रही है । जौं संस्कृत ही के शब्दों पर अनुराग हो तो पास को पार्श्व और नियर को निकट कहो पर दोनों को छोड़ कर सन्निहित या सविध कहने से कुछ फल नहीं ।

समासदों से मेरी अपील ।

(१) अँगरेज़ी के एक शब्द में भी प्रायः स्पेलिंग में गलती नहीं होती उसी तरह हम लोगों को चाहिए कि हिन्दी के शब्दों की शुद्धि पर ध्यान दें ।

(२) हम लोगों को चाहिए कि एक सूत में बँध कर सब कोई एक तरह से शब्दों को लिखें । सिर, शिर सर, या चुंगी, चुनगी, चुनगी, चुङ्गी, या पंडित, पन्डित, पनडित, पण्डित, इस तरह से लिखने से क्या फल ।

(३) हिन्दी के सब समाचार पत्र छापने वाले ऐसी सीधी हिन्दी में खबर छापें जिसके पढ़तेही या सुनतेही गवाँर लोग भी मतलब समझ सकें । इसी तरह से इतिहास की भी पुस्तकें सहज हिन्दी में लिखी जाँय ।

(४) हिन्दी की पुरानी पुस्तकें छापने के लिये और उन पर आज कल की हिन्दी में टीका होने के लिये एक सोसाइटी बनानी चाहिए ।

(५) युनिवर्सिटी में एम० ए० परीक्षा तक हिन्दी की भी पुस्तकें नियत करने का बंदोबस्त कराना चाहिए ।

(६) हर एक शहर में दो चार ऐसे भी पंडित रहें जो पुराने हिन्दी काव्यों को भी पढ़ावें ।

(७) एफ० ए०, बी०, ए०, और एम०, ए० की परीक्षा में जो हिन्दी में अव्वल हों उनके लिये उचित पारितोषिक देने का प्रबंध होना चाहिए ।

(८) इस सम्मेलन को सार्थक कीजिए अर्थात् मतभेद झगड़े को दूर कर सब भाई मन से मिलकर हिन्दी की उन्नति के लिये तन, मन और धन से कमर कस कर तैयार हों ।

(९) गवाँर लोगों में भी हिन्दी लिखने पढ़ने का अधिक प्रचार करने का यत्न करना चाहिए ।

(१०) बंगाली, नेपाली, मद्राजी, पंजाबी...... के समझने लायक एक भाषा बनाने की जरूरत है और वह होने के लायक हिन्दी भाषा ही है इसलिये सब सभासदों से मेरी अपील है कि जो अरबी, फारसी, अङ्गरेज़ी......शब्द हिन्दी भाषा में प्रचलित होगए हैं उनकी जगह नये संस्कृत शब्दों को न बनाइए।

(११) अङ्गरेजी से तालीक हानी किस्से ही का अनुवाद न कीजिए कुछ साइंस (शास्त्रों) के अनुवाद पर भी ध्यान दीजिए। जैसे अँचार, चटनी, तरकारी......के बनाने के लिये हिन्दी में 'पाकशास्त्र' बन रहे हैं वैसे ही सूई, तागा......के लिये भी कुछ लिखिए पढ़िए।

अंत में कुछ मेरे दोहों को भी सुन लीजिए,

राजा चाहत देन सुख, पर परजा मतिहीन।
पर जामतही चाहत हैं, भूमि करन पग तीन॥
एहि सुराज महँ एक रस, पीयत बकरी बाघ।
छन महँ दौरत बीजुरी, सागरहू को लाँघ॥ २॥
छपि छपि के परकास भे, लुप्त रहे जे ग्रंथ।
पढ़ि पढ़ि के पंडित भए, बने नए बहु पंथ॥ ३॥
आगि पानि दोऊ मिले, जान चलावत जान।
बिना जान सब जन लिये, राजत लखहु सुजान॥ ४॥
अरनी की करनी गई, चकमक चकनाचूर।
घर घर गंधक गंध में, आगि रहति भरपूर॥ ५॥
बाप चलाई एक मत, बेटा सहस करोर।
भारत को गारत किए, मतवाले बरजोर॥ ६॥
मत झगरन महँ मत परहु, इन महँ तनिक न सार।
नर हरि करि खर घोरवर, सब सिर जो करतार॥ ७॥
सबही को येहि जगत महँ सिरज्यो बिधिना एक।
सब महँ गुन अवगुन भरे, को बड़ छोट बिवेक॥ ८॥

काज पड़े सबही बड़ा, बिना काज सब छोट।
पाई हेतु भंजावते, रुपया मोहर लोट॥ ९॥
गुन लखि सब कोइ आदरै, गारी धक्का खाय।
कौन पिटाई डुगडुगी, रेल चढ़हु हे भाय॥ १०॥

देखत देखत रात दिन, गुनिजन को नहिं मान।
रेल छाँड़ि अब चहत हैं, उड़न लोग असमान॥ ११
सौ गुन ऊपर मैं चलउँ बात बनाइ बनाइ।
कैसे रीझै पियरवा जानि मोहिँ हरजाइ॥ १२॥

अपनी राह न छाँड़िये जौं चाहहु कुसलात।
बड़ी प्रबल रेलहु गिरत और राह में जात॥ १३॥
मतवालन देखन चला घर तें सब दुख खोय।
लखि इनकी विपरीत गति दिया सुधाकर रोय॥ १४॥

मल से उपजा मल बसा मलही का व्यवहार॥
नाम रखाया संत हम ऐसे गुरू हजार॥ १५॥
का ब्राह्मन का डोम भर का जैनी क्रिस्तान।
सत्य बात पर जो रहै सोई जगत महान॥ १६॥

समरथ चाहै सो करै बड़ो खरो लघु खोट।
मोहर मोहर से बढ़ी लघु कागज की लोट॥ १७॥
सिद्ध भये तो क्या भया किये न जग--उपकार।
जड़ कपास उनसे भला परदा--राखन हार॥ १८॥

सहजहिं जौं सिखयो चहहु आइहि बहुगुन भाय।
तौ निज--भाषा में लिखहु सकल ग्रंथ हर खाय॥ १९॥
बाना पहिरे बड़न का करैं नीच का काम।
ऐसे ठग को ना मिलै नर कहु में कहुं ठाम॥ २०॥

बिनु गुन जड़ कुछ देत हैं जैसे ताल तलाब।
भूप कूप की एक गति बिनु गुन बूँद न पाव॥ २१॥
बातन में सब सिद्धि है बातन में सब योग।
ये मतवाले होय गए मतवाले सब लोग॥ २२॥

धन दे फिर लेवैं नहीं जगत--सेठ ते आहिँ।
विद्या- धन देइ लेहिँ नहिं सो गुन पंडित माहिँ॥ २३॥
जहाँ तार की गति नहीं अंजन हूँ बेकाम।
तहाँ पियरवा रमि रहा कौन मिलावै राम॥ २४॥

भाषा चाहै होय जो गुन गन हैं जा माँहि।
ताही सों उपकार जग सबै सराहहिं ताहि॥ २५॥
अब कविता को समय नहिं निरखहु आँख उघारि।
मिलि मिलि करि सीखो कला आपन भला बिचार॥ २६॥

हिन्दी-साहित्य का इतिहास ।

[पंडित गणेशविहारी मिश्र, पंडित श्यामविहारी मिश्र, और पंडित शुकदेवविहारी मिश्र लिखित ।]

हिन्दी उस भाषा का नाम है जो बंगाल छोड़ समस्त उत्तरीय तथा मध्य भारत में सामान्यतया ग्रैार युक्तप्रान्त, बिहार, बघेलखंड, बुँदेलखंड एवं छत्तीसगढ़ में विशेषतया बोली जाती है । इसकी दो प्रधान शाखाएं हैं, अर्थात् पूर्वीय ग्रैार पश्चिमीय, जिनको मोटी रीति से अवधी ग्रैार ब्रजभाषा भी कह सकते हैं। इनकी उत्पत्ति के विषय में पंडितों का मत भेद है । कुछ लोगों का मत है कि यह संस्कृत से निकली है । ग्रैार शेष कहते हैं कि प्राकृत ही बिगड़ते बिगड़ते इस दशा को प्राप्त हुई है । हमारी अनुमति में यही दूसरा मत ग्राह्य है । अधिकतर पंडित लोग भी इसी को मानते हैं । ब्रजभाषा सौरसेनी प्राकृत से निकली है । ग्रैार अवधी अर्ध मागधी से । हिन्दी क्रियाग्रों का बृहदंश प्राकृत ही से निकला हुग्रा जान पड़ता है परन्तु इसकी कुछ क्रियाएं संस्कृत से भी बनी है । इसके शेष शब्द विशेषतया प्राकृत एवं संस्कृत से आए हैं परन्तु कुछ बँगला, मरहठी, फ़ारसी, अरबी, अँगरेज़ी, फ़्रँच, जर्मन, जापानी, चीनी आदि सभी भाषाग्रों से आए हैं ग्रैार आते जाते हैं । इसका विकास दिनों दिन होता जाता है ग्रैार आशा की जाती है कि इसका सौन्दर्य्य बहुत बढ़ जायगा ।

पंडितों का मत है कि हिन्दी की उत्पत्ति प्रायः १२ सौ वर्ष हुए हुई थी, परन्तु शोक है कि उस समय की हिन्दी का कोई भी लेख हम लोगों को प्राप्त नहीं है; केवल दो चार कवियों के संशयाकीर्ण नाम मात्र ग्रंधेरे में बुझे हुए दीपकों की रेखा से दिखलाते हैं। कहा जाता है कि राजा पुंड ७१४ ई० में एक कवि ग्रैार कवियों का आश्रयदाता हो गया है। कहते हैं कि पुष्य नामक एक कवि भी इसके यहाँ था। १०८६ ई० में बारदरबेग्रा ग्रैार ११६४ ई० में कुमारपाल का भी होना बतलाया जाता है परन्तु इन कवियों की भी कोई कविता नहीं मिलती। सब से प्रथम गद्य तथा पद्य के लेख जो हस्तगत हैं वह दिल्ली के राजा पृथ्वीराज तथा उसके बहनोई राजा रावल समरसिंह के समय के मिलते हैं जो प्रायः (११८०) ग्यारह सौ अस्सी ई० के हैं। सब से पुराने गद्य लेखों में से एक ११५१ ई० का महाराज पृथ्वीराज का दानपत्र है जो नीचे उद्धृत किया जाता है ।

"श्रीश्री दलीन महाराजंधीराजनं हिन्दुस्थानं राजं धानं
" संभरी नरेस पुरब दली तषत श्री श्री माहानं राजं
" धीराजनं श्री पृथी राजे सुसाथनं आचारज रूषी
" केस धनंत्रि ग्रप्रन तमने का का जीर्न के दुवा की
" आरामं चश्रो जोन के रोजं में राकड़ रूपोग्रा ५०००) तुमरे
" ग्रा हाती गोड़े का परचा सीवाग्र
" आवेंगे पजानं से इनं को कोई माफ
" करंगे जोनको नेरको के ग्रधकारी
" होवेगे सई दुवे हुकम के हडमंत
" रौंग्र संमत ११४५ वर्षे आसाड सुदी १३ "

यह लेख उस समय की बोलचाल की हिन्दी का ग्रच्छा उदाहरण है। महोबा के जगनिक कवि भी उसी समय हुए थे। उन्हीं ने वर्त्तमान आल्हा काव्य की नीव डाली परंतु उनके आल्हा में किस प्रकार के शब्द ग्रैार छन्द थे ग्रैार उसकी भाषा कैसी थी इसका कुछ पता नहीं चलता क्योंकि जगनिक का कोई भी छन्द प्राप्य नहीं है ।

महाकवि चंदबरदाई भाषा का वास्तविक प्रथम कवि है। उसका जन्म अनुमान से ११२८ ई० में हुआ था ग्रैार प्रायः ६५ वर्ष की अवस्था में यह कवि मोहम्मदगोरी से अपने राजा के पक्ष में लड़ कर परमगति को प्राप्त हुआ । इसका बनाया हुआ पृथ्वीराजरासो दो ढाई हज़ार पृष्ठों का महा-

काव्य है जिस में विशेषतया युद्ध मृगया और शृंगार का वर्णन है। कुल मिला कर यह एक शृंगार प्रधान ग्रंथ है और इसकी कविता परम प्रशंसनीय है। चंद ने लिखा है कि उसने रासों में षट् भाषा तथा पुरान एवं कुरान की भाषाएं कही हैं (षट् भाषा पुरानं च कुरानं कथितं मया)। चंद ने केवल कविता ही नहीं की थी वरन् वह पृथ्वीराज का मंत्री भी था और कई बार उसने पृथ्वीराज के लिये घोरयुद्ध भी किया है। रासों में गुजरात के राजा भोरा भीमंग के राजकवि से चंद का शास्त्रार्थ भी होना लिखा है। रावलसमरसिंहजी को पृथ्वीराज की बहिन ब्याही थी उस विवाह में कलेवा के समय रावलजी ने चंद के पुत्र जल्ह को भी दायज में लिया था। इससे प्रगट होता है कि उस समय राजदर्बारों में कवियों की बड़ी चाह थी। रासो के पढ़ने से यह भी जान पड़ता है कि दर्बारों में प्रायः कवि रहा करते थे परंतु इन में से किसी की भी कविता अब शेष नहीं है। चंद को हिन्दी के चॉसर होने का गौरव प्राप्त है। स्थानाभाव से इनकी कविता का केवल एक उदाहरण दिया जाता है।

आदी देव प्रनम्य नम्य गुरयं बानीय बंदे पयं
सिष्टं धारन धारयं बसुमतो लच्छास चर्नाश्रयं
तंगुं तिष्ठति ईस तुष्ट दहन सुर्नाथ सिद्धश्रयं
थिर्चर्जंगम जोव चंद नमयं सर्वेस बर्दामयं॥

चन्द की गणना हमने हिन्दी के नवरत्नों अर्थात नौ सर्वोच्च महाकवियों में की है।

चंद के पीछे किदार नामक एक कवि का १२२४ में होना शिवसिंहसरोज में लिखा है परन्तु उसकी भाषा आधुनिक भाषा से बहुत मिलती है अतः उसका समय संदिग्ध है। १२८७ ई० में भूपति नामक एक कवि ने भागवत पुराण का उलथा किया था जिसकी भाषा इस प्रकार है।

ताको तुम कीजो जो जानो, इतनो बचन हमारो मानो।
जबहि अबोची बहनुइ कहो, कंस बहीनी मारन रहो॥
दूनों के पग बेरी डारी, चहुं दीस चौकी बैठारी॥

प्रायः इसी समय में नरपति नाल्ह नामक एक कवि ने बीसल देव रासो नामक एक ग्रंथ १२९८ ई० में बनाया। उसकी भाषा इस प्रकार है—

जब लगि महियल ऊगै सूर जब लग गंग बहै जल पूर।
जब लग प्रथिमी नय जगन्नाथ जाणी राजा सिर दीधौ हाँथ॥
रास पढ़नो राव को बाजै पड़ह पखावज भेर।
कर जोरे नरपति कहै अचल राज किज्जव अजमेर।

१३०१ ई० में शारंगधर नामक एक कवि का होना शिवसिंहसरोज में लिखा है। यह चंद का वंशधर था। हम्मीर काव्य और हम्मोर रासो नामक दो ग्रन्थ रण थंभौरनाथ हम्मीरदेव के यहाँ इन्होंने बनाए। इनकी कविता का उदाहरण इस प्रकार है—

सिंह गमन सुपुरुष बचन कदलि फरइ एक बार।
तिरया तेल हमीर हठ चढ़ै न दूजी बार॥

यह दोहा प्रसिद्ध है। इस की भाषा बिलकुल आधुनिक है। चित्तौर के महाराना कुम्भकरण ने १४१९—१४६९ ई० तक राज्य किया था। इन्होंने गीतगोविंद का छन्दोबद्ध टीका बनाया था परन्तु वह अप्राप्य है। इन्होंने कवियों का बड़ा सम्मान किया था परन्तु इनके सम्मानित किसी कवि का भी पता नहीं है। कुछ लोगों का विचार है कि मीराबाई इन्हीं की स्त्री थीं परन्तु यह अशुद्ध है। १४६९ ई० के लगभग बाबा नानक का समय है परन्तु उन्होंने पंजाबी भाषा में अपनी रचना की है। इनके अनुयायियों ने हिन्दी का भी सम्मान किया है। महात्मा चरणदास ने १४८१ ई० में ज्ञानस्वरोदय बनाया। उदाहरण—

चारि वेद को भेद है गीता को है जीव।
चरण दास लखु आप में तो में तेरा पीव॥

१६ वीं शताब्दी।

अब तक सिवा चंद के हिन्दी का वास्तविक कोई कवि नहीं हुआ था परन्तु इस शताब्दी में मानो कविता का स्रोता सा फूट निकला। सूरदास हित हरिवंश, तुलसीदास, केशवदास आदि महाकवियों ने इस शताब्दी को जगमगाते हुए स्वर्णाक्षरों में लिखने योग्य बना दिया है। कबीरदास

का समय १५१२ ई० के लगभग है। इन्होंने अनेक ग्रन्थ बनाये हैं जिन में बीजक, साखी तथा पद मुख्य हैं परन्तु उनमें भी बीजक के कबीर कृत होने में संदेह है। कबीरदास धर्म्म-सुधारक थे अतः वे प्रायः बड़ी खरी बात कहते थे।

कासो का मैं बासी बाम्हन नाम मेरा परबीना।
एक बार हरि नाम बिसारा पकर जुलाहा कीन्हा॥

माई मेरो कौन बिनेगो ताना।

जो कबिरा कासी मरै तो रामै कौन निहोर।

अपने हाँथे करैं थापना अजया का सिर काटो।
सो पूजा घर ले गो माली मूरति कुत्तन चाटी।

दुनिया झूमर झामर अटकी।

दुनिया ऐसी बावरी पत्थर पूजन जाय।
घर की चकिया कोई न पूजै जिहका पीसा खाय।

चकिया सब रागन की रानी।

जिहिकी चकिया बंद परी है तेहि की सबै भुलानी।
भोर होय के छः घरी पहिले घर घर घरानी।

कबीरदास की उलटवाँसी भी बहुत प्रसिद्ध हैं।

इसी समय के पीछे भाषा के चार प्रसिद्ध कवियों का अभ्युदय हुआ, अर्थात् सूर, जायसी, कृपाराम और मीराबाई। सूरदास का जन्म प्रायः १४८४ ई० में हुआ था और वह प्रायः १५६४ में स्वर्गवासी हुए। इनकी अष्ट छाप में गणना थी, शेष सात कवि परमानन्ददास, गोविन्ददास, चतुर्भुजदास, कुम्भनदास, छीत स्वामी, कृष्णदास, और नन्ददास साधारणतया उत्तम कविता करते थे। सूरदास का कविता-काल १५०४-१५६४ ई० तक है। इनका हाल थोड़े ही मास हुए सरस्वती में हमने विस्तारपूर्वक दिया है। इनका साहित्य भक्ति का एक अच्छा नमूना है, परन्तु वह भक्ति सख्यभाव की थी न कि दासभाव की। इन्होंने अपने रुचिकर विषयों का बड़ा ही विस्तारपूर्वक वर्णन किया है, यथा मान, नेत्र, उद्धव ब्रजगमन, माखनचोरी इत्यादि। बाललीला, कालीदमन। दावानल पान, कृष्ण-बिदा, रास आदि विषयों का इन्होंने अति ही श्लाघ्य वर्णन किया है। अरुचिकर वर्णनों को इन्होंने बहुत थोड़े में निपटा दिया है। इनकी, कविता में साधारण छन्द बहुत हैं सो यदि कोई इनके ग्रन्थों को पढ़कर ढाई तीन सौ पृष्ठों का एक संग्रह निकाल ले तो वह बड़ी ही उत्कृष्ट पुस्तक बने। इन्होंने उपमा, रूपक आदि भी बहुत ही उत्तम कहे हैं। और कविता ब्रज भाषा की मर्य्यादा है, और पूर्व समालोचकों ने इनको भाषा का सूर्य कह कर अपनी गुण-ग्राहकता दिखलाई है। इनकी कविता परम प्रसिद्ध है अतः एक आध उदाहरण देकर लेख का कलेवर बढ़ाना उचित नहीं। इतने बड़े कवि होने पर भी सूरदासजी ऐसे नम्र थे कि गुसाईं बिट्ठलनाथ द्वारा अपने अष्ट छाप में रक्खे जाने पर इन्होंने यह कहा—

'थपि गोसई करी मेरी आठ मध्ये छाप' वास्तव में यदि "अष्ट छाप" में सूरदासजी न होते तो शायद शेष कवियों में से बहुतरों के नाम भी अब तक मिट गए होते। इस समय पदों में कविता करनेवाले सैकड़ों कवि हो गये हैं। हमने सूरदासजी को हिन्दी नवरत्नों में दूसरा नंबर दिया है। जायसी ने १५२०-१५४० तक पद्मावत बनाया। अखरावट में इन्होंने ज्ञान कहा है। इन्होंने युद्ध, तथा संयोग एवं वियोग श्रृंगार अच्छे कहे हैं। और मुसलमानी पैग़म्बर एवं इमामों की वंदना करते हुए भी हिन्दू-देवी-देवताओं को कोई अश्रद्धासूचक शब्द नहीं लिखा। कृपाराम ने १५४२ ई० में दोहों का एक उत्तम ग्रन्थ बनाया है। मीराबाई ने १५१७ ई० में जन्म लिया था और १५४६ में उनका स्वर्गवास हो गया। इन्होंने गीतगोविंद का टीका, रागगोविंद तथा नरसीजी का मायरा नामक तीन ग्रन्थ बनाये हैं।

इनके भजनों से अविचल भक्ति टपकती है और वे उत्तम हैं। इनका विवाह चित्तौर के महाराज-कुमार भोजराज के साथ हुआ था परन्तु यह कृष्णानन्द में उन्मत्त हो कर घर से निकल गईं और सदैव देव-मन्दिरों में अपने जगमोहक राग गाती

फिरीं। स्वामी हितहरिवंश का जन्म हमारे मत से १५४४ के लग भग हुआ था। यह महाराज राधा-वल्लभीय सम्प्रदाय के संस्थापक थे और इन्होंने संस्कृत एवं भाषा की उत्तमोत्तम कविता की है, इनका चौरासी नामक ग्रन्थ हमारे पास प्रेमलता नाम से है। इनकी भाषा कविता में संस्कृत के विकट पद अथवा श्रुतिकटु शब्द भूल कर भी नहीं आने पाए हैं। उदाहरण—

व्रज नव तरुनि कदम्ब मुकुट मनि श्यामा आजु बनी। तरल तिलक तारंग गंड पर नासा जलज मनी॥ यों राजत कवरी गूँथित कच कनक कंज बदनी। चिकुर चन्द्रकनि बीच अरध बिधु मानहु ग्रसत फनी॥

आजु बन नीको रास बनायो। पुलिन पवित्र सुभग जमुना तट मोहन बेनु बजायो॥ कल कंकन किंकिन नूपुर धुनि सुनि खग मृग सचुपायो॥

इनके पद सूरदासजी के उत्तम पदों की टक्कर के होते थे। दादूजी का जन्म १५४४ में हुआ था और १६०४ में वे स्वर्गवासी हुए। यह महाशय बड़े महात्मा थे परन्तु काव्य दृष्टि से इनकी कविता वैसी प्रशसनीय नहीं है। इनके शिष्यों में सुन्दरदास रज्जब, जंगोपान, जगन्नाथ, मोहनदास, तथा खेमदास मुख्य थे। इन सबमें सुन्दरदास प्रशसनीय थे।

गोस्वामी तुलसीदासजी ने १५३३ में जन्म ग्रहण किया था और १६२४ में उनका स्वर्गवास हुआ। यह महाकवि हिन्दी के अगुवा हैं और इनकी कविता समुद्र के समान अथाह है। हमने इन्हें हिन्दी के नवरत्नों में प्रथम स्थान दिया है। केवल हिन्दी ही क्यों वरन प्रायः संसार भर की भाषाओं में इस महाकवि के जोड़ के बहुत कवि न मिलेंगे। इस छोटे से निबंध में गोस्वामीजी के गुणों का कुछ भी समुचित वर्णन असम्भव है।

यह एक ही कविरत्न चार भिन्न भिन्न कवियों के बराबर है। दोहा चौपाई में यह कथा प्रासंगिक कवियों का नेता है; कवितावली तथा हनुमान बाहुक में गोस्वामीजी ने मतिराम आदि के टक्कर के कवित्त सवैया बनाये हैं, विनयपत्रिका में अवधी व्रजभाषा और संस्कृतमिश्रित भाषा में परमोत्तम पद कहे हैं; और कृष्णगीतावली में व्रजभाषा के पदरचयिता सूरदास आदि की समानता सी कर ली है। इतनी भिन्न भिन्न प्रकार की कविता में सफलतापूर्वक उत्तम ग्रन्थ बनाने में कोई भी अन्य कवि समर्थ नहीं हुआ है। इनके बनाये २५ या ३० ग्रन्थ कहे जाते हैं जिनमें से १९ या २० अवश्य इन्हीं के बनाये हैं। भक्ति का वर्णन गोस्वामी-जी के समान किसी भाषा के किसी कवि ने नहीं किया है। शील स्वभाव भी इन्होंने अच्छे निबाहे हैं और इनके व्याख्यानों की छटा अयोध्याकाण्ड में देख पड़ती है। कहीं भी पढ़ने से इनका कोई ग्रन्थ शिथिल नहीं देख पड़ता। इन पर १०० पृष्ठों का एक लेख "हिन्दी नवरत्न में" हम ने लिखा है। इनके प्रेमियों को उसे पढ़ना चाहिए। यहाँ अधिक लिखने का अवकाश नहीं है। नाभादास ने इन्हें भक्तमाल का सुमेर माना था। नन्ददासजी इनके भाई थे। उनकी भी कविता मनोहर है।

नाभादास ने भक्तमाल नामक ग्रन्थ में बहुत से भक्तों का वर्णन छप्पय छन्दों में किया है। महाकवि केशवदास के जन्म और मरणकाल अनुमान १५५२ और १६१२ हैं। रामचन्द्रिका, कवि-प्रिया, रसिकप्रिया, विज्ञानगीता, बिरसिंह देवचरित्र, रामालकृत मञ्जरी (पिंगल) नामक इनके ६ ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं। रीति के प्रथम आचार्य यही हैं और इनकी कविता परम सराहनीय है। हमने इनको हिन्दी नवरत्नों में स्थान दिया है। इनकी कविता कठिन हो गई है यहाँ तक कि "कवि का दीन न चहै बिदाई। पूछैं केशव की कविताई" वाली कहा-वत आज तक प्रसिद्ध है।। इनकी भाषा विशेषतया संस्कृत-मिश्रित है यथा—

आसावरी माणिक कुम्भ शोभै अशोक लग्न वन देवतासी। पलाशमाला कुसुमालि मद्धे बसन्त-लक्ष्मी शुभ लक्षणासी। आरक्त पुत्रा शुभचित्र

पुत्री मनो बिराजै अतिचारु वेषा। सम्पूर्ण सिन्दूर प्रभास कैधौं गणेश भालस्थल चन्द्र रेषा।

तुलसीदास और केशवदास हिन्दी की कविता करने में कुछ लज्जा सी बोध करते थे—यथा—

भाषा भनित मोरि मति थोरी।
हँसेबे जोग हँसे नहिँ खोरी॥ (तुलसीदास)

भाषा बोलि जानहीं जिन के कुल के दास।
भाषा कवि भो मन्दमति तेहि कुल केशवदास॥

महाराजा वीरबल ने भी केशवदास का बड़ा मान किया था। इनके भाई बलभद्र मिश्र ने केवल एक ग्रन्थ नखशिख का टकसाली बनाया है। इस शताब्दी में तानसेन, प्रवीणराय पातुरि, फ़ैज़ी, अबुलफ़ज्ल, वीरबल (ब्रह्म), मुबारक, रसखानि, अकबर बादशाह, नरहरि, रहीम, गंग, होलराय आदि भी बड़े प्रसिद्ध कवि हो गये हैं। होलराय के यहाँ गोस्वामी तुलसीदास जी गये थे तब इन्होंने यह आधा दोहा पढ़ा।

लोटा तुलसीदास को लाख टका को मोल।

इस पर गोस्वामी जी ने कहा

मोल तोल कुछ है नहीं लेहु राय कवि होल।

इस लोटे को होलराय ने मूर्ति की भाँति एक चबूतरे पर स्थापित किया और होलपुर में यह आज तक पूजा जाता है।

१७ वीं शताब्दी।

इस शताब्दी में भी बड़े बड़े विशद कवि हो गए हैं। यथा सेनापति, बिहारी भूषण, मतिराम, लाल, देव इत्यादि। सेनापति ने १६५० ई० में साहित्यरत्नाकर नामक एक परमोत्तम ग्रन्थ बनाया है जिसमें षड्ऋतु, रामायण, श्लेष, श्रृंगार और भक्ति का बड़ा ही सुघर वर्णन है। सेनापति महाशय धर्म सुधारक थे अतः इनकी कविता में गम्भीर विषयों का अधिक समारोह है परन्तु यह महाशय, सुन्दर, कोमल और हास्यपूर्ण वर्णन भी अच्छा कर सके हैं।

बिहारी ने १६६३ ई० में सतसई समाप्त की। इस ग्रन्थ में ठपैची ख़ूब आई है। कविता के प्रायः सब गुण इस ग्रन्थरत्न में वर्तमान हैं। इनकी बारीक़बीनी परम प्रशंसनीय है। उर्दू शायरी से मिलती जुलती बिहारी ही की कविता है और इस कवि ने उर्दू शायरी के तलाज़िमों की भी हद कर दी है। इन्होंने अपने दोहों में बहुत सा मतलब कहा है यहाँ तक कि एक एक दोहे में डेढ़ डेढ़ घंटे की बात चीत भर दी है, यथा—

बतरस लालच लाल की मुरली धरी लुकाय।
सौहँ करै नैनन हँसै देन कहै नटि जाय॥
ज्यों ज्यों पट झटकति बकति हठति नचावत नैन।
त्यों त्यों परम उदारऊ फगुवा देत बनै न॥

कविगण उपमायें देते हैं परन्तु बिहारी ने उपमाओं के फल भी कहे हैं।

पत्रा ही तिथि पाइये वा घर के चहुँ पास।
नित प्रति पूनोई रहै आनन ओप उजास॥
अंग अंग प्रतिबिम्ब परि दर्पन से सब गात।
दोहरे तेहरे चौहरे भूषण जाने जात॥

बिहारीलालजी का हिन्दी नवरत्नों में उच्च आसन है। भूषण महाराज ने १६७३ में शिवराज भूषण बनाया और इस समय के पीछे अपने अन्य ग्रन्थ भी रचे। इनके ग्रन्थों में प्राबल्य, मान, और जातीयता की छटा देख पड़ती है। इनके सभी प्राप्य ग्रन्थों का सम्पादन हमने काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा की ग्रन्थमाला में किया है। यहाँ विशेष नहीं लिखते। भूषणजी बड़े ही उत्कट कवि थे और हिन्दी नवरत्नों में यह भी सम्मिलित हैं।

भूषण के अनुज मतिराम ने १६८० के लगभग रसराज बनाया। इसकी भाषा बहुत ही उत्तम होती थी यहाँ तक कि सिवा देवजी के कोई भी कवि मतिराम के बराबर इस गुण में नहीं पहुँचता। उदाहरण—

गुच्छन को अवतंस लसै सित पच्छन अच्छ किरीट बनायो। पल्लव लाल समेत धरी कर पल्लव सो मतिराम सोहायो॥ गुंजन को उर मंजुल माल

निकुंजन ते कहि बाहर आयो । आजु को रूप लखे नँदलाल को नैनन को फल आजुहि पायो ।

मतिरामजी ने भी हिन्दो के नवरत्नों में स्थान पाया है। लाल कवि ने इसी समय से छत्रप्रकाश नामक ग्रन्थ प्रारम्भ किया जो १७०७ में समाप्त हुआ। इसकी उद्दंडता परम प्रशंसनीय है।

जिस संवत् में भूषण कवि ने शिवराज भूषण समाप्त किया उसी में महाकवि देवदत्त का जन्म हुआ। यह कवि भाषा का राजा था इसने भाषा सबसे उत्तम नगीना सी रख दी है। और विषयों के बाहुल्य में भी प्रशंसनीय प्रभुता दिखाई है। श्रृंगार वैराग्य कथा (देवचरित) नाटक ("देवमाया प्रपंच") जाति भेद, देशभेद, रागरागिनी, षडऋतु, अष्टयाम आदि सभी विषय सफलतापूर्वक इसने कहे हैं। वृक्षों पर तक वृक्षविलास नामक एक बड़ा ग्रन्थ लिख डाला है। रूप वर्णन में इन्होंने तसवीरें खड़ी कर दी हैं और अमीरी के साज सामानों का वर्णन इनके सदृश कोई कवि नहीं कर सकता है। श्रृंगार के मानो यह आचार्य ही थे। क्या संयोग क्या वियोग दोनों का वर्णन इनका दर्शनीय है। इतने प्रकार के और इतने सर्वांग पूर्ण रीतिग्रन्थ किसी कवि ने नहीं कहे। इनके विशेषण कभी कभी एक पूरी पंक्ति भर के हो जाते हैं यथा—

"नूपुर संजुत मंजु मनोहर जावक रंजित कंज से पायन'। क़समें भी इस कवि ने ख़ूब ही खिलाई हैं—

बाँभन की सैाँ बबा की सैाँ मोहन मोहिं गऊ कि सैाँ गोरस की सैाँ। कैसी कही फिर तैा कहैा कान्ह अबै कछु हैाहूँ कका कि सैाँ कैहैाँ।

अनुप्रास यमकादि का जितना व्यवहार सफलतापूर्वक इन्हों ने किया है दूसरे ने नहीं किया। उदाहरण—

छपद छबीले रस पीवत सदीव छोव लम्पट निपट नेह कपट दुरे परत। भंग भये मध्य अंगै डुलत खुलत साँस मृदुल चरन चारु धरनि धरे परत। देवमधुकर टूक टूकत मधूक धोखे माधवी मधुर मधुलालच लरे परत। दुहुकर जैसे अलरुह परसत इहाँ मुँह पर भाँईं परे पुहुप झरे परत।

ब्राह्मणी (जाति बिलास से)।

गंग तरंगनि बीच बरंगनि ठाढ़ी करै जपुरूप उदोती। देव दिवाकर की किरनैं निकसैं बिकसैं मुख पंकज जोती।

खतरानी।

ज्यों बिनही गुन अंक लिखे घुन त्यों करि कै करता कर भारयो। बारिये कोटि सचो खतरानी इनो खतरानी को रूप निहारयो।

देवजी को हिन्दी नवरत्नों में तीसरा स्थान हमने दिया है। इसी समय आलम कवि हुए हैं। यह ब्राह्मण थे। एक बार उन्होंने यह पद बनाया—

कनक घरी सी कामिनी काहे को कटि छीन।

फिर दुसरा पद इनके बनाये उस समय न बना इन्होंने यह काग़ज़ का टुकड़ा पाग में बाँध लिया। संयोग वश यही पाग रँगने के लिये वे सेख नामक रँगरेजिन के यहाँ दे आये। सेख ने वह गाँठ खोली और दोहे का चरण पढ़कर उसका दूसरा चरण योँ लिख दिया—

कटि को कंचन काटि बिधि कुचन मध्य धरि दीन्ह।

यह पद पढ़कर आलम के हृदय में सेख के ऊपर इतना प्रेम उमग आया कि उन्होंने मुसलमान होकर उसके साथ विवाह कर लिया। सेख को लोग "आलम की औरत" कहा करते थे अतः उसने अपने पुत्र का नाम "जहान" रक्खा और जब कोई उसको आलम की स्त्री कह कर मज़ाक करता तो अपने को "जहान की मां" बतलाती थी। आलम ने वियोग, श्रृंगार बहुत उत्तम कहा है। बोधा, ठाकुर, नेवाज, घनानन्द, और आलम ये पाँच बड़े प्रेमी कवि भाषा में हुए हैं। उदाहरण—

जाथर कीन्हे विहार अनेकन ताथर काँकरी बैठि चुन्यो करैं। जा रसना सोँ करी बहु बातन

ता रसना सों चरित गुन्यो करैं ।। आलम जौन से कुंजन में करी केलि तहाँ अब सीस धुन्यो करैं । नैनन में जे सदा रहते तिनकी अब कान कहानी सुन्यो करैं ।।

इस शताब्दी में प्राणनाथ, सुन्दरदास, कुलपति, भूषण, महाराजा जसवन्तसिंह, महाराजा अजीत सिंह, श्रीपति, बैताल, रघुनाथ, महाराणा राजसिंह, घासीराम, महाराजा छत्रसाल, कालिदास, कवीन्द्र, नरोत्तमदास, सहजराम आदि भी बड़े बड़े कवि हो गये हैं। घाघ ने भी ग्रामीण भाषा में मोटिया नीति अच्छी कही है। यथा—

चमा पहिरे हर ज्वातैं औ वोझु धरे अँठिलायँ ।
घाघ कहै ई तीनिउ भकुवा पीसति पान चबायँ ॥
मुये चामते चाम कटावैं सँकरी भुँइ माँ स्वावैं ।
घाघ कहै ई तीनिउ भकुवा उढ़रि जाय तौ रुवावैं ॥

बेनी कवि इसी समय में एक प्रसिद्ध भँड़ौवाकार होगया है। उदाहरण—

चींटी की चलावै को मसा के मुख आयु जायँ साँस की पवन लागे कोसन भगत हैं। ऐनक लगाए मरु मरु कै निहारे परैं अनु परमानु की समानता खगत हैं॥ बेनी कवि कहै हाल कहाँ लौं बखान करौं मेरी जान ब्रह्म को बिचारिबो सुगत है। ऐसे आय दीने दयाराम मनमोद करि जाके आगे सरसौं सुमेर सो लगत है। १।

चूकते सरस चोखे लूकसी लगावैं हिए हूक उपजावैं ए अपूरब अराम के। रस को न लेस रेसा चोपी है हमेस तजि दीने सब देस बिललाने परे घाम के ।। बुरे बदसूरत मिलाने बदबोयदार बेनी कवि अकला बनाए मनौ चाम के। परम निकाम के ए आए बिन दाम के हैं निपट हराम के ए आम दयाराम के।। २॥

भँडौवाकारों का यह कवि अगुवा है।

१८ वीं शताब्दी ।

इस शताब्दी में कई उत्तम कवि हो गये हैं परन्तु बहुत निकलता कोई भी नहीं था। शम्भुनाथ मिश्र, घनानन्द, दूलह, देवकीनन्दन, बैरीसाल, महाराजा नागरीदास, गंजन, दास, गुरुदत्तसिंह, रसलीन, सुखदेव, ठाकुर, पद्माकर, प्रताप, बोधा, प्रियादास, सूदन, सोमनाथ, हरिकेश, किशोर, गोकुलनाथ, गोपीनाथ, मणिदेव, तोष, ग्वाल, आदि बड़े बड़े प्रवीण कवि इस शताब्दी में वर्तमान थे, परन्तु इनमें से किसी भी कवि को नवरत्न में परिगणित होने का सौभाग्य नहीं प्राप्त हुआ। सूरति मिश्र ने इसी शताब्दी में गद्य काव्य में बैतालपचीसी नामक एक ग्रन्थ बनाया। यही कवि गद्य का प्रथम वास्तविक लेखक हुआ है। गंजन कृत कमुरुद्दी खाँ विलास, दास कृत काव्यनिर्णय, तथा शृंगार निर्णय, गुरुदत्तसतसई, सुखदेव के पिंगल, बोधा ठाकुर एवं घनानन्द की प्रेम कविता, पद्माकर की पदमैत्री, प्रताप की मतिराम से टक्कर लेनेवाली भाषा, सूदन कृत वीरकाव्य, नागरीदास की भक्ति, और हरिकेश की उद्दंडता इस काल को भी परम पूज्य बनाती है। उदाहरण—

डह डहे डंकन को सबद निसंक होत बहबही सत्रुन की सेना आनि सरकी। हाथिन को झुंड मारू राग को उमंड इतै चम्पति को नन्द चढ्यो उमड़ि समर की॥ कहै हरिकेस काली तालो दै नचति ज्यों ज्यों लाली परसति छत्रसाल मुखवर की। फरकि फरकि उठैं बाहु अस्त्र बाहिबे को करकि करकि उठैं बड़ी बखतर की ।।

१६ वीं शताब्दी ।

इस शताब्दी में सर्दार, शेखर, पजनेश, गनेश परसाद, लल्लूलाल, सदल मिश्र, बेनी प्रवीण, रामचन्द्र, सेवक, लेखराज, शिवसिंह, सेंगर, द्विजदेव, राजा शिवप्रसाद, प्रतापनारायण मिश्र, राजा लक्ष्मणसिंह, आदि बड़े कवि और लेखक होगये हैं। शेखर का हम्मीरहठ, पजनेश के उद्दंड छन्द, गनेश प्रसाद को लावनियाँ, रामचन्द्र को चमत्कारी कविता परम प्रशंसनीय हैं। बेनीप्रवीण की कविता बहुत ही विशद है। शिवसिंहजी ने कवियों

के चरित्रादिक लिखने में प्रशंसनीय श्रम किया है। लल्लुलाल ने व्रजभाषा के खड़ी बोली से मिलाकर प्रेमसागर गद्यात्मक काव्य लिखा है। सदलमिश्र ने उन्हीं के साथ साथ खड़ी बोली में गद्य लिखा है।

राजा शिवप्रसाद ने उर्दू मिश्रित हिन्दी लिखी ग्रैार पाठशालाग्रों में हिन्दी का विशेष ग्रादर करवाया। राजा लक्ष्मणसिंह ने पहिले पहिल उत्तम गद्यात्मक ग्रन्थ लिखा। परन्तु इस शताब्दी के शृंगारस्वरूप भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ने १८५० में जन्म ग्रहण कर १८८५ पर्यन्त पीयूष वर्षिणी कविता की है। वर्तमान साधु गद्य के वास्तविक उन्नायक यही महाशय हुए हैं। नाटकों के तो माना इन्होंने जन्म ही दिया। हिन्दी का उपकार जितना इनसे हुग्रा किसी दूसरे से नहीं हो सका। देशहितैषिता ने तो माना पृथ्वी पर इन्हीं के स्वरूप में ग्रवतार लिया था। इनकी कविता में हास्य ग्रैार प्रेम बहुत ग्रच्छे ग्राये हैं। सत्रहवीं शताब्दी के पीछे केवल यही एक कवि हिन्दी नवरत्नों में गिना गया है।

इसी शताब्दी में स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने ग्रार्यसमाज संस्थापन ग्रैार वेदों के उद्धार में प्रशंसनीय श्रम ग्रैार ग्रात्मसमर्पण किया है। हिन्दी को भी इनकी ग्रैार इनके ग्रनुयायियों की कृपा से विशेष सहायता मिली ग्रैार ग्रायन्दा भी मिलने की ग्राशा है।

वर्त्तमान काल में गद्य उत्तरोत्तर उन्नति करता जाता है परन्तु पद्य में परमोत्तम कवि एक भी नहीं देख पड़ता। २०वीं शताब्दी के विषय में कुछ समालोचना करना हम उचित नहीं समझते। हिन्दी में महाराणा कुम्भकरण, महाराजा छत्रसाल ग्रैार राव बुद्ध कवियों के बड़े ग्राश्रयदाता हो गये हैं। भाषा कविता में प्रायः युद्ध, भक्ति, नायिकाभेद, प्रेम, रीति, ग्रलंकार, नखशिख, षडऋतु, रामकथा, कृष्णकथा, स्फुटकथा, ग्रादि विषयों पर कविता हुई।

कविता की भाषा प्रायः व्रजभाषा, प्राकृत मिश्रित भाषा, बैसवारी, बुँदेलखंडी, राजस्थानी, खड़ी बोली, ग्रादि हैं। खड़ी बोली में सबसे पहिले भूषण ने १७ वीं शताब्दी में कुछ कविता की। उसी शताब्दी में रघुनाथ कवि ने भी खड़ी बोली में कुछ छन्द कहे हैं, ग्रैार सीतल कवि ने केवल खड़ी बोली में "गुलज़ार चमन" नामक एक ग्रद्वितीय ग्रन्थ रचा है। वर्तमान समय में भी बहुत से कवि खड़ी बोली में उत्तम कविता करते हैं। गद्य में सबसे प्रथम लेख दान पत्रादि मिलते हैं। गद्य ग्रंथ सबसे प्रथम १६ वीं शताब्दी में सूरदास के समकालीन श्री-स्वामी गोकुलनाथजी ने बनाये जो बिट्ठलनाथजी के पुत्र ग्रैार महर्षि बल्लभाचार्य्य के पौत्र थे। इनके ग्रंथों के नाम बावन ग्रैार दो सौ चौरासी वैष्णवों की वार्ता है। ये बड़े ग्रंथ हैं ग्रैार इनकी भाषा व्रज-भाषा है परंतु यह काव्य ग्रंथ नहीं है ग्रैार साधारण बोल चाल में इनके द्वारा वैष्णवों का वर्णन लिखा गया है। गद्य का वास्तविक प्रथम कवि सूरत मिश्र १८ वीं शताब्दी में हुग्रा है।

समाचार-पत्रों का प्रचार विशेषतया भारतेन्दुजी के समय से हुग्रा, ग्रैार तबसे उनकी संख्या ग्रैार भाषा में उत्तरोत्तर उन्नति होती जाती है। ग्राजकल भाषा में कई ग्रच्छे ग्रच्छे मासिक पत्र, ग्रर्द्धमासिक पत्र, ग्रैार साप्ताहिक एवं ग्रर्द्ध साप्ताहिक पत्र निकल रहे हैं ग्रैार दैनिकपत्र भी एकाध हैं। यदि इसी भाँति समाचार-पत्र ग्रैार पत्रिकाएँ उन्नति करती गईं तो ग्राशा है कि थोड़े समय में भाषा उन्नत ग्रवस्था में हो जायगी। सभाएँ भी कई ग्रच्छा काम कर रही हैं।

इतिहास की ग्रोर भी कुछ लोगों की रुचि हुई है ग्रैार कुछ इतिहास-ग्रंथ लिखे भी गये हैं। हमारा संकल्प पृथ्वी भर के इतिहास प्रकाशित करने का है। इन सबका साधारण रीति से भी वर्णन करने से लेख का बहुत विस्तार हो जाता ग्रतः दिग्दर्शन मात्र से संतोष किया गया। निदान हिन्दी भाषा-साहित्य में ख़ूब परिपूर्ण है ग्रैार गद्य में भी उन्नति होती जाती है। ग्रब समयोपयोगी काव्य ग्रैार कला के ग्रंथो की ग्रावश्यकता है।

——:०:——

व्रजभाषा ।

[पंडित राधाचरण गोस्वामि लिखित]

दोहा।

व्रज समुद्र मथुरा कमल, वृन्दावन मकरन्द।
व्रज वनिता सब पुष्प हैं, मधुकुर गोकुल चंद ।।
जिन तृण सम किय जानि जिय,कठिनज गत जंजाल।
जयति सदा सो ग्रन्थ कवि प्रेम जोगिनी बाल ।।१।।

व्रज शब्द का अर्थ समूह है "समूहो निवह व्यूह सन्दोह विसर व्रजाः" "गोष्ठाध्व निवहाः व्रजाः" इत्यमरः, "व्रजो गोष्ठाध्ववृन्देषु" इति मेदिनी, "व्रजः अग्रवन मथुरयोश्चतुष्यापूर्व्ववर्त्तिदेशः इति शब्द कल्पद्रुमः।

जिस भूमि में गो समूह रहता है, वह व्रज है। सदैव से व्रजभूमि में गौओं का निवास रहा है। किन्तु श्रीकृष्ण के व्रजभूमि में अवतार लेने से व्रज को बहुत प्रतिष्ठा प्राप्त हुई है।

शास्त्रोक्त व्रज का माहात्म्य, और शास्त्रोक्त व्रज की सीमा छोड़ कर वर्त्तमान प्रणाली से इस समय काम लूँगा। व्रजमंडल की जो भाषा है उसका नाम व्रजभाषा है।

इस समय व्रजभाषा की विलासभूमि अलीगढ़ ज़िले के सिकन्दराराऊ की तहसील, एटा का जलेसर पर्गना, आगरे का फ़ीरोज़ाबाद फ़तहाबाद किरावली तहसीलें, भरतपुर के बयाना कुम्हेर दीग नगर तहसीलें गुड़गाँवे की परवल, बुलन्दशहर की ख़ैर .खुर्जा, तहसीलों के मध्यवर्त्ती देश। शुद्ध व्रजभाषा इतने ही प्रान्त में है, बाक़ी प्रान्त में कान्यकुब्जी, शूरसेनी, बुन्देलखंडी, दुढ़ारी, अन्तर्वेदी भाषाओं से मिश्र व्रजभाषा बोली जाती है।

इस बात को सब लोग मान लेंगे कि संस्कृत, और प्राकृत से जो भाषा का रूपान्तर हुआ है, उसमें व्रजभाषा की ही प्रधानता है। अर्थात् भाषाओं, में व्रजभाषा ही प्रथमावतरण है। चन्दकवि से लेकर अब तक जितने कवि हुए हैं, उन्होंने व्रजभाषा में ही कविता की है। न केवल मध्य देश के कवि वररुच मिथिला के विद्यापति, वंगदेश के चंडीदास, गोविन्ददास आदि ने भी इसी भाषा में कविता की है। और पंजाब, गुजरात, महाराष्ट्र आदि में भी इस भाषा के अनेक कवि हुए हैं जिनके ग्रन्थ ही इसके प्रमाण हैं। कवियों की यह साधारण भाषा है।

व्रजभाषा की मधुरता के लिये इतना कहना यथेष्ट होगा कि "वाचि श्रीमाथुरीणाम्" अर्थात् मथुरा प्रान्त की स्त्रियों की बोली में काम का निवासस्थान है। राजा शिवप्रसादजी ने अपने नये गुटका में एक ईरानी कवि की कथा लिखी है जो व्रज में कविता को पराजित करने आये थे, यहाँ एक लड़की के मुख से स्वाभाविक उक्ति में "सीकरी गलीन में कीकरा लगतु हैं" वचन सुन कर घर को लौट गये।

आगे के राजा लोग भी और और ऐश्वर्य्यों के साथ कविता की भी सम्पत्ति रखते थे। इसी से व्रजभाषा के प्रसिद्ध प्रसिद्ध कवियों ने बड़े बड़े राजा महाराजों और अकबर, शाहजहाँ आदि बादशाहों के दर्बारों में स्थान पाया था। इनके संग से राजा लोग भी कविता करते थे। स्वयम् अकबर के अनेक कवित्त मिलते हैं। पृथ्वीसिंह अकबर के प्रसिद्ध कवि और सर्दार थे। समय समय पर इन कवियों ने शतशः ग्रन्थों के द्वारा इस भाषा की पुष्टि की है और कितने ही कार्य्य किये हैं। नरहरि का "जो कोऊ तृण गहै" इस छप्पै के द्वारा अकबर से गोवध बन्द कराना, भूषण कवि का शिवराज को उत्तेजित करना, प्रवीणराय का "झूंठी पातर द्वै भखें कै कागा कै स्वान" के द्वारा आत्मरक्षा करना प्रसिद्ध है।

एक बात जो व्रजभाषा के भाग्य में है और जो भाषाओं को प्राप्त नहीं हुई वह यह है कि सूरदासजी नन्ददासजी, कृष्णदासजी आदि अष्ट सखा और श्री हरिवंशजी, श्री स्वामी हरिदासजी आदि महात्माओं ने अपनी भक्ति और भावना के

द्वारा श्रीकृष्ण की लीलाओं को प्रत्यक्ष किया था, अपने अनुभव और प्रेम से जो कुछ उस समय में देखा था, वह सब पद, और धमारों के द्वारा वर्णन किया वह उदगारजीवों के उद्धार का कारण हुआ है ! श्रीनागरीदासजी के पद प्रसंग में अनेक आख्यान मिलेंगे ! तानसेन, बैजू बावरे, गोपाल, स्वामी हरिदासजी आदि गवैया लोगों ने अपनी गानकला भी व्रजभाषा को अर्पित कर दी है। उनके ध्रुवपद आदि इस टूटे समय में भी भारत का मुख उज्ज्वल कर रहे हैं। मैं एक कवित्त नीचे लिखता हूँ जिससे जाना जायगा कि भाषा के कवियों को कहाँ तक आदर मिला है। इस कवित्त का विषय, औपन्यासिक नहीं ऐतिहासिक है।

"मान दस लाख हुए होहा हरिनाथ की पै लाख हरिनाथ दै कलङ्क कवि तै है को। वीरबल है छकोटि केशो के कवित्त पर शिवा हाथी वामन दै भूषण ज्यों पै है को। छप्पै पै छतीस लाख गङ्ग खानखाना हुये ताते दूने दाम हुये ईडर में पे है को। श्रीगभीरसिंह राजा छन्द खूबचंद के पै विदा में दगा दई हुई न फिर दै है को"

बिहारीलाल की सतसई के दोहों पर एक एक अशर्फ़ी देना तो पुरानी बात है, परन्तु अभी महाराज योधपुर ने कविराज मुरारिदानजी को "यशवन्तयशोभूषण" पर एक लक्ष रुपये का सिरोपाव दिया है। श्री नंददासजी,[१] राघवदासजी,[२] आनन्दघनजी,[३] इसी भाषा की कविता करते भगवच्चरणारविन्दों में लीन हो गये !

संस्कृत-साहित्य के जितने गुण हैं, व्रजभाषा में सब पाये जाते हैं। अलङ्कार, नायिका भेद, रसों का समावेश सब इस भाषा में है। अलङ्कार-साहित्य के सब ग्रन्थ इस भाषा में लिखे गए हैं। सब रसों का वर्णन भी है।

(१) नंददास ठाढ़ो तहाँ निपट निकट।

(२) चल जाहु जहाँ हरि खेलत गोपिन संग।

(३) बहुत दिनान कै अवधि आस पास खरे।

व्रजभाषा कविता की परिमार्जित भाषा है इसके गुण कहाँ तक लिखे जा सकते हैं। अकबर की सभा में सूरदासजी के "जसुधा बार बार यों भाखै" इस पद पर बड़ा रमणीय विचार हो चुका है।

श्रीतुलसीदासजी की रामायण में कहीं कहीं बुंदेलखंडी और बैसबाड़ी भाषा की झलक है, पर क्या वह व्रजभाषा से अलग है। रामायण के दोहा छन्द, चौपाई सब व्रजभाषा के सूत्र में ग्रथित हैं। इसीसे कहा है 'सूर सूर तुलसी ससी उडगन केशवदास, अब के कवि खद्योत सम जहँ तहँ करत प्रकास। व्रजभाषा की उत्पत्ति के विषय में प्राचीन पद्य है।

जनम ग्वालियर जानिये खंड बुंदेले वाल।
तरुनाई पाई सुभग मथुरा वसि सुसराल॥

हिन्दी भाषा के मुखोज्ज्वलकर्त्ता मान्यवर बाबू हरिश्चन्द्रजी भारतेन्दु व्रजभाषा के प्रधान कवि थे, उनके पिता गिरिधरदासजी भी इस भाषा के चालीस ग्रन्थों के कर्त्ता थे। भारतेन्दु के मित्र, और उपासकों में सब इसी भाषा के काव्य के पक्षपाती हैं, परन्तु दैवदुर्विपाक से दो चार महाशय इस सर्वाङ्ग सुन्दर भाषा की कविता से घृणा करते हैं और "मुरारेस्तृतीयः पन्थाः" चलाना चाहते हैं, परन्तु व्रजभाषा की रक्षा व्रजराज कुमार करेंगे। क्योंकि—

व्रजवासी बल्लभ सदा मेरे जीवन प्रान।
इनकों नेंक न बीसरों नंद बबा की आन॥

"व्रज की तुहि लाज मुकुटवारे"

व्रजभाषा गद्य में बहुत ग्रन्थ नहीं हैं, परन्तु हैं—चौरासी वैष्णवों की वार्त्ता आदि श्री बल्लभ कुल के उत्सवावली आदि श्रीगौड़ेश्वर सम्प्रदाय के, चौरासीजी की टीका श्री राधाबल्लभी मत में प्रसिद्ध हैं। प्रेमसागर-प्रणेता लल्लूलालजी की राजनीति व्रजभाषा में है। बैताल पञ्चविंशति, सिंहासनबत्तीसी, शुकबहत्तरी के मूल ग्रन्थ व्रजभाषा में हैं। श्रीमद्भागवत की कथा की यावत्

सामग्री व्रजभाषा में है। कथावालों की बोलचाल ही और है। उनकी आनुप्रासिक भाषा की छटा जिन्हें देखनी हो, किसी व्रजवासी पंडित से कथा सुने। हम इस बात को अभिमान से कह सकते हैं कि श्रीभागवत की कथा व्रजवासियों के बाँट है। प्रसिद्ध वक्ता श्रीगोस्वामी सुन्दरलालजी के श्री भागवत के कथा-प्रसंगों में से कुछ ग्रन्थ बम्बई में छपे हैं उनसे व्रजभाषा गद्य का रसिकजनों को आस्वाद मिल सकता है। दाक्षिणात्यों की हरि कथा भी बहुधा व्रजभाषा में होती है। इसका अभिनय गद्य पद्य व्रजभाषा में ही है, विशेष क्या लिखूँ।

चाहे रस चाखा तो पठन कर भाखा

जो न जाने व्रजभाखा ताहि शाखामृग जानिये।

---:0:---

दादूदयाल और सुंदरदास।

[राय साहब पंडित चन्द्रिकाप्रसाद त्रिपाठी लिखित।]

नागरी प्रचारिणी सभा ने अति कृपा से मुझ को आज्ञा दी है कि एक लेख दादूदयाल और सुंदरदास के विषय में मैं हिंदी-साहित्य-सम्मेलन में पढ़कर सुनाऊँ। तदनुसार मैं आज आप के सम्मुख यह वृत्तान्त वर्णन करने को उपस्थित हुआ हूँ।

२—आप महानुभावों के निमित्त इस विषय के तीन विभाग मैंने सोचे हैं अर्थात्—

१-दादू पंथी संप्रदाय का कुछ प्रचलित व्यवहार।
२-स्वामी दादूदयाल का संक्षिप्त जीवनचरित्र।
३-इस संप्रदाय के ग्रंथों से हिंदी-साहित्य की वृद्धि।

कविवर पंडित सुंदरदासजी स्वामी दादूदयाल के निज शिष्य थे। सो इस संप्रदाय से बाहर नहीं हुए। उनका हाल भी संक्षेप से इस वर्णन में आ जायगा।

३—आप विद्वज्जनों से छिपा नहीं है कि भारतवर्ष में धर्मसंबंधी अनेक आचार्य्य वा गुरु हो गए हैं जिनकी संप्रदायें अलग अलग चली आती हैं, ऐसी संप्रदायों म से एक संप्रदाय दादू पंथी साधुओं की भी है। इस में दो प्रकार के साधु पाए जाते हैं, अर्थात्—

एक भेषधारी विरक्त जो भगवे वस्त्र धारण करते हैं और पठन-पाठन, कथा, कीर्तन, भजन उपासनादि धर्मसंबंधी कामों के सिवा और व्यवहार नहीं करते, द्रव्य का सञ्चय करना इनका वर्जित है।

दूसरे नागे स्थानधारी जो सुफ़ेद सादे वस्त्र पहनते हैं, लेन देन खेती फौज की नौकरी वैद्यकादि धन उपार्जन के उद्योग करते हैं। सञ्चित धन अपने संप्रदाय के उपयोगों में लगाते हैं।

ये दोनों प्रकार के साधु ब्रह्मचारी ही रहते हैं, विवाह नहीं करते। गृहस्थों के बालकों को चेला कर के अपना पंथ और स्थान चलाये जाते हैं। स्त्री का संग इनमें अति वर्जित है।

४—इस संप्रदाय के बावन अखाड़े प्रसिद्ध हैं, प्रत्येक अखाड़े का एक एक महंत है। उनके स्थान अधिकतर जयपुर राज्य में हैं, कुछ अलवर, मारवाड़, मेवाड़, बीकानेर आदि राज्यों और पंजाब, गुजरात आदि देशों में भी हैं। नागाओं की फौज जयपुर राज्य में विख्यात है।

५—जयपुर और अजमेर के बीच राजपूताना मालवा रेलवे पर नराणा नाम का एक स्टेशन है। तिस नराणे में दादूपंथियों की मुख्य गद्दी है। अपने अंत समय में स्वामी दादूदयाल ने इसी स्थान में निवास किया था। उनके रहने बैठने के निशान अभी खड़े हैं। इस संप्रदाय के सर्वपूज्य महंतजी वहाँ विशेषकाल रहते हैं। दादूद्वारा नामक वहाँ एक दर्शनीय मंदिर है।

६—फाल्गुन मास के शुक्ल पक्ष की चौथ से द्वादशी तक दादूपंथियों का वार्षिक सम्मिलन नराणे में होता है। वहाँ की भूमि को दादू पंथी अति पुनीत और पावन मानते हैं। मेले पर साधु जन वहाँ की परिक्रमा करते हैं। अन्य अखाड़ों के महंत अपने स्वामी नराणे के महंतजी को भेट देते हैं, तैसेही गृहस्थ भक्त जन अपनी इच्छानुसार भेटें चढ़ाते हैं। मुख्य सेवकों को स्वामीजी के भण्डार से एक नया वस्त्र ओढ़ा दिया जाता है। इस अवसर पर तरह तरह के महोत्सव, भजन, जागरण, कथा, व्याख्यान, ज्ञानचर्चा और परस्पर सत्संग के लाभ होते हैं। साधु जन अपने सञ्चित धन से आए हुए साधुओं को बड़े बड़े भोज देते हैं। एक पक्की रसोई जयपुर राज्य से भी दी जाती है जिसमें हज़ारों साधु पंक्ति बाँध कर जीमते हैं।

७—दादू द्वारे से दर्शकों को बतासों का प्रसाद मिलता है। अखाड़ों के महंत और मंडलियों के पंडित

जन भी अपने सती सेवकों को चलते समय बताशे देते हैं। सो यात्री दूर दूर देशदेशांतरों को ले जाते हैं।

८—फाल्गुन शुदि ४ को स्वामी दादूदयाल पहली बार नराणे पधारे थे, इसलिये चैाथ के दिन वहाँ सामेला (सम्मेलन) होता है। फाल्गुन अष्टमी के दिन दयालजी का जन्मोत्सव मनाया जाता है, इस तिथि को बड़े उत्साह से भजन जागरणादि होते हैं। एकादशी का व्रत करके द्वादशी से मेला चल देता है। कोई कोई साधु जन दस पाँच दिवस पीछे भी ठहरते हैं।

९—नराणे से तीन चार कोस पर भराणे की पहाड़ी है, वहाँ स्वामी दादूदयाल ने कुछ काल निवास किया था ग्रोर वहीं उनके शरीर की अन्त्येष्टि क्रिया हुई थी। वहाँ भी अनेक साधु यात्रा को जाते हैं। मृत साधुओं के फूल भी किसी किसी अखाड़े के वहीं सिधराये जाते हैं।

१०—विरक्त साधु एक स्थान पर बहुत कम ठहरते हैं, आठ महीने जाड़े ग्रोर गर्मी के विचरने में व्यतीत करते हैं। चातुर्मास किसी एक स्थान में काटते हैं। विचरते हुए साधु जहाँ जहाँ ठहरते हैं वहाँ के गृहस्थों में धर्म उपदेश अर्थात् परमेश्वर की भक्ति, निर्गुण उपासना, ब्रह्म ज्ञान का प्रचार करते हैं।

११—पंडित जनों के साथ अनेक साधुओं की मंडलियाँ रहा करती हैं। उनमें नवजवान साधु पंडितजी से पठन पाठन में शिक्षा पाते हैं ग्रोर शेष साधु जन भजन कीर्तन में रहते हैं। बहुधा मंडलियाँ विचरती रहती हैं, जहाँ जहाँ उनके सती सेवक हैं वहाँ वहाँ उनकी प्रेरणा से साधु जन वास करते हैं। वहां के गृहस्थ अपनी श्रद्धा से भोजनों के निमंत्रण देते रहते हैं, जब तक ऐसे निमंत्रण आया करते हैं तब तक मंडली वहाँ वास करती है, पीछे दूसरे ठिकाने को चली जाती है।

१२—जहाँ जहाँ मंडलियाँ वास करती हैं वहाँ वहाँ उनके मुख्य पंडित नित्य प्रातःकाल कथा कहते हैं, यह कथा प्राचीन रीति से व्याख्यान के तौर पर होती है। मंडली के संपूर्ण साधु ग्रोर उस ठिकाने के गृहस्थ स्त्री-पुरुष एकत्र होते हैं, क़रीब एक घंटे के पंडितजी व्याख्यान देते हैं, पीछे निर्गुण सुरीले भजन गाए जाते हैं। इस काम में मंडली के साधु निपुण होते हैं। अंत में श्रोता जनों के चढ़ाये बताशे, मिठाई सर्वजनों में बाँट दिये जाते हैं। सायंकाल निर्गुण आरती गाई जाती है ग्रोर धर्मचर्चा होती है।

१३—धनी ठाकुरों तथा अन्य गृहस्थों में साधुओं के रखने की बड़ी चाह रहती है। ऐसे श्रद्धालु जन फाल्गुन मास के नराणे के मेले में मंडलियों के पंडितों को चतुर्मास के लिये निमंत्रण भेज देते हैं, बहुधा ऐसे निमंत्रण स्थानधारी साधुओं की मारफ़त आते हैं। जिस मंडली को जहाँ का रहना स्वीकार होता है। सो वहाँ का निमंत्रण ले लेती है। आषाढ़ी पूर्णिमा तक वहाँ पहुँच जाती है ग्रोर दशहरे तक वहाँ वास करती है।

१४—दादूपंथी आपस में आते जाते समय "सत्य राम" शब्द का उच्चारण करके अभिवादन करते हैं। किसी माननीय साधु के पास जब कोई जाता है तब वह तीन बार साष्टांग दंडवत करता हुआ "सत्यराम" कहता है, तिसके उत्तर में वह माननीय साधु "सत्य-राम" कह कर आशीर्वाद देता है। इसी प्रकार से मंडली के संपूर्ण साधु अपनी अपनी बारी से नित्य प्रातःसायं अपने मुख्य साधु के समीप जाकर प्रणाम करते हैं।

१५—स्वामी दादूदयाल की वाणी ही इस संप्रदाय का मुख्य ग्रंथ है। संपूर्ण साधु जन उसका नित्य पाठ करते हैं, बहुतों को संपूर्ण वाणी कंठाग्र रहती है। उस पुस्तक को वे बड़े मान से सुशोभित वस्त्रों में ऊँची गद्दी (पालकीजी) पर रखते हैं।

१६—दादूपंथी निर्गुण—उपासक हैं। एक निरंजन, निराकार, परमेश्वर की भक्ति ग्रोर उपासना करते हैं, परम ब्रह्म ही उनका इष्टदेव है। उसको सब में रमनेवाला राम कह कर भजते हैं। योगी जन ध्यान धारणा, ग्रोर समाधि करके उसी अपार ब्रह्म में लवलीन रहते हैं।

१७—मृत शरीरों के पहिले अरथी व विवान पर रख के जंगल में छोड़ देते थे। इस विषय मेंस्वामी दादूदयाल के वाक्य ये हैं—

हरि भजि साफल जीवना, पर उपगार समाइ।
दादू मरण तहाँ भला, जहँ पसु पंषी खाँइ॥

अथवा—

साध सूर सोहैं मैदाना। उनको नांहीं गोर मासाना॥

यह रीति वर्तमान समय में नहीं है। अब लगभग सारे दादूपंथी अग्निसंस्कार को ही करते हैं।

१८—दादूपंथियों का और सब संप्रदायों के साधुओं से मेल-मिलाप रहता है। सबसे ये प्रम पूर्वक व्यवहार करते हैं। अहंकार नहीं रखते। स्वभाव से बहुत कर मृदुल और सरल होते हैं, अपनी हालत में संतुष्ट रहते हैं। पुस्तकें लिखने में, पक्की स्याही बनाने में, पुस्तकों के गत्ते (जिलदें) बाँधने में, फटी पुस्तकों के पन्नों को जोड़ने में, रसोई और पकवान बनाने में, वस्त्र सीने में, तूँबों पर रंग चढ़ाने में, वैद्यक में ये साधु बड़े निपुण होते हैं।

१९—जो हाल दादूपंथी साधुओं का आज कल देखने में आता है उसका संक्षिप्त वृत्तान्त यहाँ दिया है। साधारण बातें जो सर्व संप्रदायों के साधुओं में पाई जाती हैं उनका ज़िक्र यहाँ नहीं किया गया है और न महात्माओं के उन भेदों को मैं कह सकता हूँ जिन को वे स्वयंही जानते हैं।

२०—अब इस संप्रदाय के स्थापक स्वामी दादूदयाल के चरित्र की कुछ बातें आप को सुनाता हूँ। संवत १६०० विक्रम की फाल्गुन शुक्ला अष्टमी को दादू गुजरात देश के अहमदाबाद नगर में प्रगट हुए थे, उनकी प्रथम ३० वर्ष की अवस्था का विशेष हाल नहीं मिलता है। संवत १६३० में वे सांभर आये, लग भग छः वर्ष वहाँ रहे। आंबेर (प्राचीन जयपुर) को गए, और १४ वर्ष वहाँ रहे। संवत १६४२ में अकबर शाह से फ़तेहपुर सीकरी में मिले और ४० दिवस वहाँ रहे। संवत १६५० से संवत १६५९ तक जयपुर मारवाड़, बीकानेर आदि राज्यों के अनेक स्थानों में रहते विचरते काटे। संवत १६५९ में नराणे आरहे और संवत १६६० की ज्येष्ठ वदी ८ मी को अंतर्ध्यान हुए।

२१—दादू के ज्ञान, धर्मोपदेश और कृत्य का महत्त्व उनकी अपनी वाणी की पुस्तक से और उनके अनेक शिष्यों के लेखों से पाया जाता है। उनकी शिक्षा का कोई पता नहीं मिलता है पर उनकी वाणी से स्पष्ट है कि वे हिन्दुओं के धर्म विषयों से और पैाराणिक-इतिहासों से अच्छी तरह से वाक़िफ़ थे, तैसेही मुसलमानों के धर्म का हाल भी उनसे छिपा न था।

उस तरह का हाल लोग साधु और फ़कीरों के सत्संग और कथा श्रवण से भी हासिल कर सकते हैं पर दादू के ऐसे सत्संग का भी कुछ पता नहीं मिलता है।

२२—जनगोपाल जी ने लिखा है कि दादू के ग्यारहवें वर्ष में परम पुरुष (परमेश्वर) ने एक वृद्ध बाबा (साधु) का भेष धर के दादू को बालकों में खेलते समय दर्शन दिया और एक पान का बीड़ा खिलाया, उनके मस्तक पर हाथ धरा और सर्वस्व दिया पर बालक-बुद्धि से दादू ने ग्रहण न किया। सात वर्ष पीछे वही बुड्ढे महात्मा फिर आये और दादू की बाह्य दृष्टि को अंतर्मुख करके ब्रह्म का साक्षात् करा दिया, उसी दिन से दादू परमेश्वर के भजन और चिंतन में लग गये। सुन्दरदासजी ने अपने "गुरु-संप्रदाय" नामक ग्रंथ में दादू के गुरु का नाम वृद्धानन्द दिया है सो जनगोपाल के "वृद्ध बाबा" से मिलता है, इसी शब्द से किसी ने दादू के गुरु का नाम बूढ़ण (वृद्ध) रख लिया है।

२३—प्रोफ़ेसर एच एच विलसन ने अपने हिन्दू रलीजंस नामक ग्रंथ में लिखा है कि कबीर के चेले रामानंद के संप्रदाय में दादू के गुरु बूढ़ण थे। विलसन साहब को जो और वृत्तान्त दादू का मिला था सो भी अनेक बातों में सही नहीं है। दयालजी ने अपनी वाणी में अनेक संतों के साथ कबीर साहब की भी प्रशंसा की है पर रामानंद का नाम तक नहीं लिया है। सुन्दरदास आदि संपूर्ण दादूपंथी अपने

गुरु दादू को स्वतंत्र (कबीर पंथी व अन्य संप्रदायों से अलग) मानते चले आते हैं। कबीरपंथी व रामानंदियों की तरह दादूपंथी तिलक या कंठी भी नहीं रखते।

२४—पंडित जगजीवनजी ने लिखा है कि स्वामी दादूदयाल के गुरु परमेश्वर ही थे। दादू ने स्वयं अपनी वाणी में गुरु की महिमा अनेक प्रकार से गाई है पर किसी विशेष व्यक्ति को अपना गुरु नहीं कहा है। उनके वाक्यों से स्पष्ट है कि वे दो प्रकार के गुरु मानते थे, एक बाह्य गुरु दूसरे अन्तर्गुरु। बाह्य गुरु ऐसा बतलाया है कि जो उपदेश द्वारा सन्मार्ग बतलावे और जोग बल से शिष्य को तुरन्त पलट कर अपने तुल्य कर ले। अंतर्गुरु अपना स्वयं आत्मा व परमात्मा है जिसकी अद्‌भुत कृपा से ही मनुष्य यथार्थ ज्ञान को पाता है। जनगोपाल का वृत्तान्त इस विषय में दादू के अपने वाक्यों से मिलता है। दादू ने अपने गुरु की बाबत यह साखी कही थी—

दादू गैब माँहि गुरुदेव मिल्या, पाया हम परसाद।
मस्तक मेरे कर धरया, दृष्या अगम अगाध॥

गैब एक अर्बी शब्द है जिसके मायने हैं गुप्त वा अद्‌भुत स्थान के। दादूजी कहते हैं कि गुरुदेवजी हमको गैब में मिले जिनसे हमने ऐसा प्रसाद पाया कि हमारे मस्तक पर उनके हाथ के धरतेही हमको अगम अगाध परमेश्वर की प्राप्ति रूप दीक्षा मिली, अर्थात् उस गैबी गुरु की कृपा से हमको तत्काल ब्रह्म का ज्ञान हो गया।

२५—स्वामी दादूदयाल ने अपनी वाणी में अनेक महा पुरुषों की प्रशंसा की है तिनमें दत्तात्रेय, नारद, शुकदेव, सनकादि, ध्रुव, प्रहलाद, गोरखनाथ, भर्तृहरि, गोपीचंद, नामदेव, पीपा, रयदास और कबीर के नाम दिये हैं। दादूपंथी पुस्तक संग्रहों में एक सौ से अधिक महात्माओं के ग्रंथ मिलते हैं तिनमें सब से पहले स्वामी दादूदयाल की वाणी रहती है, पीछे कबीर, नामदेव, रयदास और हरदास की वाणी, उनके पीछे दादूजी के शिष्यों के ग्रंथ, अन्त में गोरखनाथादि योगीश्वरों के ग्रंथ पाए जाते हैं। मुसलमान महात्माओं में से शेख फ़रीद क़ाज़ी महमूद शेख़ बहाउद्दीन के पद मिलते हैं।

२६—स्वामी दादूदयाल एक सिद्ध योगी थे, उनकी वाणी की पुस्तक यह बात स्पष्ट दिखाती है। जो जो दृश्य उन्होंने अपने ध्यान काल में अनुभव किए थे उनको अनेक प्रकार से सरल भाषा में वर्णन किया है। उनकी वाणी को पूरे तौर से योगिराज ही समझ सकते हैं। प्रत्येक साखी व पद में योग के विषय वा दृश्य झलक रहे हैं।

परमेश्वर की महिमा और उसका सच्चिदानन्द स्वरूप,
उसकी निर्गुण पूजा और अनन्य भक्ति,
उसकी परम उपासना और उसका अजपा जाप,
मन को परम रूप में स्थिर करने के साधन;
परम रूप का ध्यान, धारणा और समाधि,
अनहद बाजे का श्रवण और उसमें मग्न होना,
अमृत बिंदु का पान और परमानंद की प्राप्ति,
परमेश्वर से अरस परस मिलाप ब्रह्म का साक्षात् कार।

ये सब विषय स्वामी दादूदयाल ने अपनी प्रेम उपजीवनी आनन्द बढ़ावनी मिष्ट कविता में सर्व साधारण के समझने योग्य रीति भाँति से बतलाये हैं।

२७—स्वामी दादूदयाल धर्म और सामाजिक विषयों के संशोधक थे उन्होंने देश में हानिकारक चालों को देख कर उनके सुधारने का उद्योग किया है। पूर्व ऋषि मुनि आचार्य्य साधु और फ़क़ीरों की उत्तम उत्तम बातों को लेकर अथवा अपने योग बल से एक शुद्ध निर्गुण ब्रह्म की निर्गुण उपासना बतलाई है, सो उपासना एक उच्च कोटि की है। परमेश्वर को ही अपना सर्वस्व, जगत का सार और आधार माना है। सब व्यवहारों को उसकी उपासना के पीछे रक्खा है, ऐसेही उपासना से परम सुख की प्राप्ति संभव है। उस सुख के सामने सांसारिक सुख तुच्छ है। सार को पाकर कोई भूसी की चाह नहीं करता है। ऐसे अपूर्व आनंदमय परमार्थ के सरल साधन बतला कर स्वामी दादूदयाल ने दिखावटी प्रपंच, सगुण पूजा, कोरी बंदगी को गौण बतलाया है।

२८—नाना मत वाले हिन्दू और मुसलमानों में परस्पर विरोध देखकर दोनों के लिये एक राह, एक ही ईश, एकही प्रकार की बंदगी, बतलाई है। सब लोगों को एक परमेश्वर का परिवार दिखा कर सब में भाईचारे का संबंध ठहराया है। सबको परस्पर हेल मेल से चलने की आज्ञा दी है और सब जीवों पर दया की दृष्टि रक्खी है। एक दोहे में अपना सार मत इस भाँति से कहा है—

आपा मेटै हरि भजै, तन मन तजै बिकार।
निर्बैरी सब जीव सो, दादू यहु मत सार"

२९— दादू के उपदेशों का निचोड़ वही है जो हमारे प्राचीन योगीश्वरों और आचार्यों ने चलाया है। इस बात को दादूपंथी कविवर सुन्दरदासजी ने अपने ग्रन्थों में और पण्डित निश्चलदासजी ने अपने विचारसागर और वृत्तिप्रभाकर ग्रन्थों में स्पष्ट सिद्ध कर दिया है। यदि दादू के व्यावहारिक रीति के कथन छोड़ दें जो जुग जुग में बदलते आये हैं, तो दादू के परम तत्त्व और परमार्थ के मार्ग अद्वैत वेदांत के अनुसार ही हैं। उनका सार हिंदू विज्ञान से विरुद्ध नहीं है। दादू ने जहाँ जहाँ हिंदुओं के विरुद्ध कहा है वहाँ उनकातात्पर्य हिंदुओं के मूलसिद्धांतों के खण्डन में नहीं है, किंतु केवल उन अनिष्ट बातों के विरुद्ध है जिनसे हिंदू जाति को हानि पहुँच रही है। उनके संशोधन से दादू ने हमारा कल्याण किया है पर उस समय के लोगों ने दादू के खण्डन मण्डन से चिढ़ कर उनको धुनिया काफिर आदि कह कर तुच्छ बतलाया है। सुधारकों की आदि में सर्वत्र ऐसी ही निन्दा हुआ करती है. पीछे जब उनका कृत्य प्रगट हो जाता है तब उनकी कीर्ति फैलती है॥

३०—वास्तव में जो जो सुधार स्वामी दादूदयाल ने चाहे थे उन में से अधिक सुधारों की ज़रूरत अब भी भारतवर्ष में है, जैसे—

(क) हिंदू और मुसलमानों में मेल जो दादू ने चाहा है सो अब भी ज़रूरी है।

(ख) सब मनुष्यों में भाई चारे का प्रचार अब भारत के सब हितवादी आवश्यक समझते हैं।

(ग) अहिंसा परमो धर्म, यह सिद्धांत नित्य दृढ़ता पाता जाता है। हिंदू सर्वत्र इसको स्वीकार करते हैं। मुसलमानों में बहाई मत के अनुयायी जो मिसर फारस आदि देशों में बढ़ते जाते हैं, इस सिद्धांत को अपने मुख्य उसूलों में रखते हैं। दादू के वाक्य इस विषय में सर्वमान्य होंगे॥

(घ) सगुण से निर्गुण उपासना सभी विद्वान् श्रेष्ठ मानते हैं।

(ङ) तीर्थयात्रा से जो हानि और यात्रियों की जो दुर्दशा आज कल होती है सो दादू के समय में न थी। दादू का उपदेश इस विषय में आज कल हमारे लिये परमोपयोगी है।

(च) खान पान में दादू का मत सर्व-मान्य होने योग्य है।

(छ) उद्यम और परिश्रम करना दादूमत के अनुसार उत्तम है।

(ज) विवाह का निषेध यति महात्माओं के लिये है।

गृहस्थों के लिये एक नारी की आज्ञा महात्मा दासजी (दादूजी के पोता चेले) ने अपने 'पथ्य प्रष्या' ग्रंथ में साफ़ दी है। दादूपंथी नागाओं और स्थानधारियों को इस आज्ञा पर चलना उचित है। दूसरे गृहस्थों के बालकों को मूड कर अपना घर बार चलाना ठीक नहीं।

३१—दादू की प्रथम ३० वर्ष की अवस्था का विशेष हाल नहीं मिला है। संवत १६३० के पीछे सांभर में दादू की महिमा उठी। उनका कथन हिंदू और मुसलमान दोनों की प्रचलित रीति भाँति से निराला था। इस कारण से दादू के अनेक विरोधी भी हो गए थे। ऐसे लोगों ने अनेक प्रकार से दादू को सताया पर दादू ने अपना मार्ग न छोड़ा। उन दिनों में दादू ने कुछ इस प्रकार की साखी कही थी—

दादू जब थैं हम निपंख भये सबै रिसाने लोक।
सतगुर के परसाद थैं, मेरे हरष न सोक। १६-५१॥
दादू बल तुम्हारे बाप जी, गिनत न राणा राव।
मीर मलिक परधान पति तुम बिन सबही बाव॥
२४-७३॥

एक दफ़े एक क़ाजी जी दादू की तर्क से झुँझला गए ग्रैार उसने दादू के मुँह पर एक घूँसा मारा, तिस पर दादू ने अपनी शांति न छोड़ी ग्रैार अपने मुँह के फेर कर कहा भाई एक ग्रैार मार लो। तब क़ाज़ीजी शरमा कर चले गये।

३२—ग्रांबेर में दादू की महिमा ग्रैार बढ़ी। राजा भगवंतदास ने अकबर शाह के बारबार कहने से दादू के फ़तेहपुर सीकरी बुलवाया। अकबर शाह की इच्छा थी कि दादू अकबर के परमेश्वर का अवतार स्वीकार करे, पर यह बात दादू ने न मानी। राजा भगवंतदास, बीरबल अब्बुल फ़ज़ल ग्रादि ने दादू के बहुत मनाया, तरह तरह के लालच दिये पर दादू ने किसी प्रकार का लालच या भय न माना ग्रैार वे अपनी राह में दृढ़ रहे। अकबरशाह ने ग्राख़िर दादू के निर्लोभी सच्चा फ़क़ीर मान कर ग्रादर से अपने शहर में रहने के लिये बहुत कुछ कहा पर दादू ने अपनी कुटी ग्रांबेर में ही रहना पसंद किया।

३३—राजा भगवंतदास के मरे पीछे राजा मानसिंह ग्रंबेर के राजा हुए। उनसे कुछ लोगों ने दादू की निंदा की कि दादू हिंदू ग्रैार मुसलमान दोनों की चालों के विरुद्ध लोगों के उपदेश देता है। मानसिंह ने अपने मन में दादू की बातों के ठीक मान भी लिया पर लोगों के दबाव में ग्राकर वे दादू से कुछ अनुचित प्रश्न कर बैठे जिस पर दादू ग्रांबेर से उठ खड़े हुए। मानसिंह ने दादू से क्षमा माँगी ग्रैार ठहराने की बातें कहीं पर दादू अपना सब सामान लुटा कर चल दिए। कल्यानपुर ग्रादि ग्रनेक ग्रामों में वर्ष वर्ष छः छः महीने अपने प्रमियों के पास रह कर ९ वर्ष विचरते हुए उन्होंने काटे। ग्रंत में नराणे में विश्राम लिया।

३४—दादू के माता-पिता का हाल ठीक ठीक जानने में नहीं ग्राता है। दादू ने अपनी वाणी में कोई नाम या पता नहीं दिया है। दादू के शिष्य उनकी पिछली अवस्था में उनसे मिले थे, उससे पहिले का हाल शिष्यों के देखने में न ग्राया था। ऐसे नाज़ुक हाल के पूँछने का किसी के साहस भी न हुग्रा हो।

दादूपंथियों का दृढ़ निश्चय है कि अहमदाबाद में लोदीराम नागर ब्राह्मण के घर दादू पले थे। उनके प्रगट होने का हाल इस तरह से कई महात्मा लिख गए हैं कि एक टापू में कुछ योगिजन ध्यान कर रहे थे, तिनमें से एक योगी के भगवत की ग्राज्ञा हुई कि तुम भारत में जाकर जीवों का कल्याण करो। इस शब्द से बंधे हुए वे योगिराज अहमदाबाद में ग्राये, जहाँ लोदीराम साधु संतों से एक पुत्र के लिये याचना किया करते थे। उस योगी से भी लोदीराम ने वही बर माँगा, योगी ने लोदीराम की ग्राशा पूर्ण करने की प्रतिज्ञा की ग्रैार लोदीराम से कहा कि प्रभातकाल साबरमती नदी के किनारे जाग्रो, वहाँ तुमके पुत्र मिलेगा। तदनुसार लोदीराम नदी के किनारे गए ग्रैार वह योगी अपने योग बल से अपनी काया पलट कर बालक रूप धारण कर के साबरमती नदी में बहते हुए उस ब्राह्मण के प्राप्त हुग्रा। लोदीराम ने अपने घर ला कर पाला, सोई दादूदयाल हुए। इसके प्रमाण में यह साखी मिलती है—

सबद बंधाना साह के ताथैं दादू ग्राया।
दुनिया जीवी बापुड़ी सुख दरसन पाया॥

देश में कहावत चली ग्राती है ग्रैार कहीं कहीं लिखा भी मिलता है कि दादू एक रुई पींजने वाले धुनियाँ थे। इस बात के दादू पंथी स्वीकार करते हैं ग्रैार कहते हैं कि कुछ दिन दादू ने साँभर या ग्रांबेर में पिंजारे का काम किया था, सो केवल लोकदिखावे के निमित्त था। दादू के अद्‌भुत उपदेशों ग्रैार चमत्कारों की महिमा जब वहाँ फैल गई तब सैकड़ों ग्रादमियों की भीड़ें दादू के पास ग्राने लगीं

और दादू के भजन व योगाभ्यास में फ़र्क पड़ने लगा तब दादू ने वह पींजने का काम आरंभ कर दिया, जिसमें लोग कम आवें। एक महात्मा लिखते हैं कि जैसे कबीरजी ने जगत बड़ाई को रोकने के लिये गणिका संग रक्खो थी तैसे दादू ने यह रुई कृत किया था।

दादू ने अपनी वाणी के जरणा नामक अंग में बहुत ज़ोर दे कर कहा है कि साधु अपनी भक्ति को किसी से प्रगट न करे।

दादू के शिष्य सुन्दरदासजी ने तथा रजबजी, जगन्नाथजी और जनगोपाल ने भी इस रुई कृत का हाल सुना था और इन सबों ने अपने अपने ग्रंथों में इसका ज़िक्र लिखा है। सुन्दरदासजी ने दादू के रुई पींजने की महिमा इस प्रकार गाई है—

राग टोड़ी।

एक पिंजारा ऐसा आया।
रूह रुई पींजण के कारण,
आपण राम पठाया ॥ टेक ॥
पींजण प्रेम मुठिया मन को,
लय की तांति लगाई।
धनुही ध्यान बँध्यो अति ऊँचो,
कबहूँ छूटि न जाई ॥
ओइ जोइ निकट पिंजावण आवै,
रुई सबन की पींजै।
परमारथ को देह धरयो है,
सम्यक कछु ही लीजै ॥
बहुत रुई पींजी बहु विधि कर,
मुदित भये हरिराई।
दादूदास अजब पींजारा,
सुन्दर बलि बलि जाई ॥५१॥

सुन्दरदासजी ने अपने गुरुदेव के अंग में स्वामी दादूदयाल की महिमा बहुत उत्तमता से गाई है। वहाँ २७ सवैये हैं जिनमें से दो मैं यहाँ उद्धृत करता हूँ—

धीरजवंत अडिग्ग जितेन्द्रिय,
निर्मल ज्ञान गह्यो दृढ़ आदू।
सील संतोष क्षिमा जिनके घट,
लागि रह्यो सु अनाहद नादू ॥
भेष न पक्ष निरंतर लक्ष जु,
और नहीं कछु बाद बिवादू।
ये सब लक्षन हैं जिन माँहि,
सु सुन्दर कै उर हैं गुर दादू ॥ ३ ॥
कोऊ गोरष कों गुर थापत,
कोउक दत्त दिगंबर आदू।
कोऊ कंथर कोऊ भरथर,
कोऊ कबीर को राषत नादू ॥
कोऊ कहैं हरदास हमारै जु,
यों करि ठानत बाद बिवादू।
और तौ संत सबै सिर ऊपर,
सुन्दर कै उर हैं गुर दादू ॥ ५ ॥

३५—स्वामीदयाल ने किसी को मूँड कर शिष्य नहीं किया था। उनके सत्संगी हज़ारों थे। उनकी दृष्टि ऐसी मोहनी थी और वाक्य ऐसे हृदयबेधी थे कि जिसकी तरफ़ वे देखते वा कुछ कहते थे वही उनके रंग में लवलीन हो जाता था। साँभर और आंबेर में अनेक जन स्वामीजी के दर्शनों को आते थे और अपने अपने स्थान को ले जा कर बड़े बड़े महोत्सव कराते थे। मनुष्यों की क्या कहें पशु भी दादूदयाल को देख कर उनके अधीन हो जाते थे। यह सब उनके योगबल की लीला थी। जनगोपालजी ने स्वामी दादूदयाल के अनेक चमत्कारों का हाल लिखा है। ऐसे वृत्तान्तों को आज कल के लोग असंभव समझ कर स्यात् अप्रामाणिक मानें पर जिन लोगों ने इस युग में भी योगियों की शक्ति का परिचय पाया है वे दादूदयाल के अद्भुत चरित को असंभव न समझेंगे। महात्मा सुन्दरदासजी ने अपने "सर्वाङ्ग योग" नामक ग्रंथ में योगियों की शक्तियों का वर्णन किया है। तैसे ही प्राचीन योगशास्त्र में भी उनके प्रमाण विद्यमान हैं।

३६—स्वामी दादूदयाल के ५२ शिष्य प्रसिद्ध हैं, जिनके ५२ थाने और ५२ ही महंत-स्थान बने थे। इनमें तीन ब्राह्मण थे अर्थात्—

(१) काशी के पंडित जगजीवनजी,
(२) सीकरी के माधवदेव,
(३) टेटड़े वाले नागरजो।

चार महात्मा दादू के शिष्य कहलाने से पहिले संन्यासी थे, उनके नाम ये हैं—

(१) बनवारीजी,
(२) हरदासजी,
(३) हिंगोल गिरिजी,
(४) कपिल मुनि,

५२—शिष्यों में २४ संतों ने अलग अलग अपने पंथ रचे हैं। तिनमें सुन्दरदासजी (दूसर शेखावाटी में फ़तेहपुर के निवासी) ने अनेक मनोहर काव्य-ग्रंथ बनाये हैं, जिनमें से कुछ बम्बई में छप चुके हैं और बाक़ी अभी तक सर्व साधारण के देखने में नहीं आये हैं। निम्नलिखित महात्माओं के ग्रंथों के संपादन का अभी तक किसी ने नाम ही नहीं लिया है:—

जनगोपालजी,
जगजीवनदाससी,
जगन्नाथजी,
रजबजी,
जयमल जोगी,
जयमल चौहान,
चैनजी,
मोहनदास मेवाड़े,
हरिसिंहजी,
बारा हजारी संतदासजी,
माधूजी,
बाबा बनवारीदासजी,
साधुजी,
बषणाजी,
टीलाजी,
प्रागदास जी,
जग्गा जी,
मसकीनदासजी,
दूजणदासजी,
पूरणदासजी,
ग़रीबदासजी,

इनके पीछे अनेक दादूपंथी संत हुए हैं उनके भी ग्रंथ मिलते हैं, जैसे

छीतरजी के सवैये।
दास जो का पंथप्रख्या और वाणी।
चंपाराम का दृष्टांतसंग्रह।
राघवदास का भक्तमाल।
क्षेमदासजी की वाणी और अन्य ग्रंथ।

इन महात्माओं के वाक्यों के नमूने यहाँ देने की मेरी इच्छा थी पर यह लेख बढ़ गया है और समय भी थोड़ा है। दादूपंथी संपूर्ण ग्रंथ एक लक्ष श्लोकों की बराबर होंगे।

३७—ऊपर लिखे ग्रंथ दादूपंथी संग्रहों में मिलते हैं। इनका संपादन करना हिन्दी-साहित्य के लिये अति उपयोगी होगा। यह ग्रंथ पुरानी हिन्दी में हैं जो वर्तमान भाषा से किंचित् विलक्षण है। बहुधा संपादक पुरानी लेख-प्रणाली और भाषा को न समझ कर इन ग्रंथों को अशुद्ध मान लेते हैं और उनके शब्दों के असली रूपों को बदल कर प्रचलित भाषा के अनुसार करने का प्रयत्न करते हैं जिससे प्राचीन हिन्दी के इतिहास का लुप्त हो जाना संभव है।

३८—दादूपंथी पंडित निश्चलदास के विचार सागर और वृत्तिप्रभाकर ग्रंथ भारत के वेदांती विद्वानों में अति माननीय हैं। सन्यासी, उदासी निर्मले, कबीरपंथी तथा अन्य संप्रदायों के विद्वान् इन ग्रंथों की प्रशंसा करते हैं और भाषा के ग्रंथों में इनको प्रामाणिक मानते हैं। स्वामी विवेकानंदजी भी इनकी प्रशंसा लिख गये हैं। ऐसे अद्वितीय पंडित निश्चलदास का विख्यात पुस्तकसंग्रह देहली के पास एक गाँव में पड़ा सुनने में आता है। राजपूताने के दादूपंथियों के पास हिन्दी के अनेक पुराने ग्रंथ मिलते हैं। इनका संपादन करना हिन्दी के प्रेमियों का ही कर्त्तव्य है।

३९—अब मैं स्वामी दादूदयाल की विनती सुना कर इस वृत्तान्त को समाप्त करता हूँ—

सांईं सत संतोष दे, भाव भक्ति बिस्वास।
सिदक़ सबूरी साच दे, माँगै दादूदास॥

सांईं संशय दूर कर, करि शंक्या को नाश।
भानि भरम दुविधा दुख दारुण, समता सहज प्रकाश॥

तन मन निर्मल आत्मा, सब काहू की होय।
दादू विषय विकार की, बात न बूझै कोय॥

—:o:—

राष्ट्र-भाषा और राष्ट्र-लिपि ।

[बाबू शारदाचरण मित्र लिखित ।]

इस सभा के अधिवेशन में उपस्थित होने तथा इसके कार्य्यों में योगदान करने की मुझे बड़ीही प्रबल उत्कण्ठा थी, पर दौर्भाग्यवशतः सभा के अधिवेशन का समय हम बङ्गालियों के लिये अनुपयुक्त हुआ है। इस सुखप्रद समय में हमलोग अपने गृह पर परमपूजनीय जगज्जननी भगवती की अर्चना में थोड़ा वा बहुत व्यस्त रहते हैं और हमें अन्य प्रान्तों से आए हुए आत्मोयों का यथाविधि सम्मान करना होता है। अस्तु, मैं इस सभा के सदुद्देश्य से पूर्णरूप से परिचित हूं। इस सभा का उद्देश्य भारतवर्ष के लिये यथार्थ में बहुत बड़ा है। हिमालय से कुमारी अन्तरीप तक के निवासियों, विशेष कर हिन्दुओं की एकता (समीकरण) के लिये एक भाषा और एक-अक्षर का होना अत्यन्त आवश्यक है। प्राचीन समय में उच्च और सुशिक्षित समाज की भाषा संस्कृत थी और साधारण मनुष्यों की भाषा प्राकृत थी। इन दो भाषाओं में विभेद बहुत कम था, क्योंकि दोनों ही के बिभक्ति और प्रत्यय प्रायः एकसे थे। पुराने समय के अक्षर के विषय में बहुत मतभेद है, परन्तु कई शताब्दियों से संस्कृत और प्राकृत दोनों भाषाओं के लिये देवनागरी लिपि ही व्यवहार की जा रही है। इसमें कोई भी विवाद नहीं है कि भारतवासियों की भलाई के लिये एक-भाषा और एक प्रकार के अक्षर की बड़ी ही आवश्यकता उपस्थित हुई है। पर कौन सी एक-भाषा वा कौन से एक-अक्षर (लिपि) का प्रचार किया जाय इस विषय में बहुत ही मतभेद हो सकता है। बहुत से लोग ऐसा कह सकते हैं कि अङ्गरेजी भारतवर्ष की सार्वजनिक भाषा हो, रोमन अक्षर साधारण लिपि हो, कोई फ़ारसी अक्षर और उर्दू भाषा के पक्षपाती हो सकते हैं, किन्तु इन सब भाषाओं और अक्षरों के व्यवहार निरापद नहीं हैं। इसके अतिरिक्त जातीय भाव हमारी अपनी भाषा की ओर झुकता है। इस विषय में मैंने वर्षों माथा खपाया है, बुद्धि लड़ाई है और इस कई वर्ष की आध्यात्मिक तपस्या के बाद मैंने यह निश्चय किया है कि भारतवर्ष के लिये देवनागरी साधारण लिपि हो सकती है और हिन्दीभाषाही सर्वसाधारण की भाषा होने के उपयुक्त है। मेरा यह भाव आपलोगों के ऊपर बहुत दिनों से विदित है। बार बार मैंने देवनागरी लिपि और हिन्दीभाषा की उपयुक्तता को आपलोगों के दृष्टिगोचर कराया है और हाल में भी 'हिन्दुस्तान रिव्यू' नामक मासिक पत्रिका में मैंने एक लेख लिखा था जिसमें भारत के उत्तर और पश्चिम प्रान्तों की उपस्थित भाषाओं की पारस्परिक एकता का एक स्पष्ट चित्र खींचकर दिखाया था। उस प्रबन्ध में विशेषकर हिन्दी के साथ सब भाषाओं का मेल और एकता दिखाई गई थी और वास्तव में भारतवर्ष के साहित्य और पारस्परिक वार्तालाप एवं पारस्परिक पत्रव्यवहार के कार्य्यों में ठीक संस्कृत की नाईं हिन्दी ही साधारण परिवर्तन के साथ वर्त्तमान समय के लिये अति उपयुक्त भाषा है।

मेरी भाषा, अर्थात् बँगला ने यथार्थ में बहुत उन्नति की है। इसका साहित्य-भण्डार बहुत बढ़ गया है। इससे यह भारत की सार्वजनीन भाषा होने की स्पर्धा कर सकती है किन्तु इसमें कई दोष हैं जिससे इसका भारतजनसमूह की भाषा होना सम्भव नहीं है। बँगला भाषा का आसामी और उड़िया भाषाओं के अतिरिक्त भारत की और किसी भाषाओं से मेल नहीं है। गत कई वर्षों से हिन्दी ने भी बहुत उन्नति की है और क्रमशः नक्षत्र-वेग से और भी अग्रसर हो रही है। मुझे पूर्ण आशा है कि कुछ वर्षों में इसका साहित्य-सरोवर भी उमड़ चलेगा।

बँगला भाषा को उचित है कि प्यारी बहिन की नाईं हिन्दी की उन्नति में साहाय्य दे और इसकी सर्वदा सहेली और पृष्ठपोषक बनी रहे और इसके कोमल गले पर छूरा चलाने का प्रयत्न कदापि न करे, यद्यपि वैसा करना इसकी शक्ति के बाहर है। भारतवर्ष के सब मनुष्यों के माथे बँगला भाषा की नाईं एक नई भाषा को मढ़ देना दृढ़स्थापित वैज्ञानिक कल्पना और भाषा के इतिहास के प्रतिकूलही जान पड़ता है। यदि अङ्गरेज़ों के समान बङ्गालियों को शासनकर्तृत्व मिलता तो उनके मानसिक आकाश में ऐसे भावों का उदय होना सर्वथा अयोग्य न होता। अस्तु बँगला भाषा के सबलोगों में प्रचार करने की आशा करना मानो बावनरूपधारी हो चन्द्रस्पर्श की आशा रखना है। भारतगवर्नमेण्ट भी ऐसे आन्दोलन को देख आँख नीली पीली करेगी, तिवरी चढ़ावेगी और इसके मूल को गरम जल से सींचकर बहुत शीघ्रही निर्मूल करने की यथासाध्य चेष्टा करेगी।

हिन्दी समस्त आर्य्यावर्त की भाषा है। बोल चाल का विभेद कोई बड़ा कंटक नहीं है। मैंने हिन्दुस्तान रिव्यू के लेख में दिखाया है कि महाराष्ट्र, गुजरात और उड़ीसा की भाषाओं में परस्पर पार्थक्य वस्तुतः कुछ नहीं है! और विशेष कर हिन्दी के साथ इनका सम्बन्ध बहुत घनिष्ठ है। यदि हिन्दी भाषा में कुछ संस्कृत के शब्दों का व्यवहार किया जाय तो बड़ी सुगमता से हिन्दी शिक्षित-भारत वासियों की समझ में अनायास ही आ जायगी। मैं बड़े हर्ष के साथ उल्लेख करता हूँ कि आधुनिक हिन्दी लेखकों की कृपादृष्टि इस ओर पड़ी है।

जिस प्रकार बँगला भाषा के द्वारा बङ्गाल में एकता का पौधा प्रफुल्लित हुआ है उसी प्रकार हिन्दी भाषा के साधारण भाषा होने से समस्त भारत-वासियों के एकतातरु की कलियाँ अवश्य ही खिलेंगी और इसकी शुष्क पत्तियाँ लहलहा उठेंगी। हिन्दी भाषा में कई प्रकार के परिवर्तन की आवश्यकता है, विशेष कर इसकी विभक्ति और लिङ्ग में। मैं आशा करता हूँ कि साम्प्रतिक दीन जननी के महान् लाभ की ओर दृष्टि रख कर हिन्दी-प्रेमी ये सब परिवर्तन करने में नाक-भौं न सिकोड़ेंगे, वरन देशोपकार के भाव से कटिबद्ध हो तन, मन से इस कर्मक्षेत्र में उतर पड़ेंगे। आज कल सब भाषाओं से अनावश्यक विभक्तियों को निकालने का प्रबन्ध बड़े तोड़ जोड़ से हो रहा है। चारों ओर इसका बाज़ार गरम हुआ देख पड़ता है और सभी ओर से इसी आन्दोलन की ध्वनि सुनाई पड़ती है। बड़ा ही खेद का विषय होगा यदि हिन्दी इस महान आन्दोलन के समय भी स्थावर बन लम्बे लम्बे खर्राटे लेती रहे और उठने की चेष्टा न करे। क्या ही आनन्द की बात होती यदि हिन्दी भी अपनी आजन्म की तन्द्रा तोड़ सुन्दर तान से "बहिष्कार का गीत" आरम्भ कर देती और हिन्दी-प्रेमी इस मन्त्र से दीक्षित हो तन, मन से इन सब कामों के लिये चेष्टा करते। सब कोई मुक्तकण्ठ से कह रहे हैं कि विभक्तियों को सुधारना ही प्रायः सभी आधुनिक विद्वानों का प्रधान भजन है।

कलकत्ते का एक-लिपि-विस्तार-परिषद पाँच वर्ष से समस्त भारतवर्ष में एक-लिपि के प्रचार करने में तन मन से लगा है। मुझे इसके सिक्रेटरी (Secretary) होने का बड़ाही गौरव है। यद्यपि मैं बंगाली हूँ तथापि मेरे दफ़्तर की भाषा हिन्दी है। इस वृद्धावस्था में मेरे लिये वह गौरव का दिन होगा जिस दिन मैं हिन्दी स्वच्छन्दता के साथ बोलने लगूँगा और प्लेटफ़ार्म (Platform) के ऊपर खड़ा होकर हिन्दी में वक्तृता दूँगा। उसी दिन मेरा जीवन सफल होगा जिस दिन मैं सारे भारतवासियों के साथ साधु हिन्दी में वार्त्तालाप करूँगा। हमारे सुयोग्य सहकार्य्यकारी पाण्डे उमापतिदत्तशर्म्मा बी० ए० की असामयिक मृत्यु होने से मेरी और मेरे परिषद की बड़ी हानि हुई है। बड़े खेद के साथ कहना पड़ता है कि सच्चे कार्य्य करनेवालों की संख्या कर्मक्षेत्र में बहुत ही कम दिखाई पड़ती है। और बङ्गाल की दृष्टि अभी तक इस ओर नहीं पड़ी है। बङ्गाली भाई अभीतक एक-लिपि और एक-भाषा की आवश्यकता को यथार्थ-

रूप से नहीं समझे हैं। यद्यपि यह इनके गौरव का चिह्न है कि बङ्गाल ने अपनी बंगभाषा और साहित्य की विशाल उन्नति की है और एक लघु राष्ट्रीयता की नींव डाली है। मुझे सच्चे कार्य्यवाहकों की सहायता की बड़ी आवश्यकता है। आप महानुभावों के साथ इस समय सम्मिलित हो इस महान कार्य्य करने से बढ़कर और मेरे लिये अधिक सुखप्रद आमोददायक वस्तु कोई नहीं है। आपका और मेरा कर्म्मक्षेत्र केवल विहार और युक्तप्रदेश ही नहीं है, क्योंकि जैसा कि श्रीमान् पण्डित मदनमोहन मालवीय ने बार बार आप हिन्दीप्रेमियों को दिखलाया है कि उन प्रान्तों की भाषा तो हिन्दी है ही, अतः बङ्गाल प्रान्त में हिन्दी प्रचार करने के लिये हम हिन्दीभक्तों को बीड़ा उठाना चाहिए। देश प्रति कर्त्तव्य के ज्ञान की ओर बङ्गाली भाइयों को जाग्रत कराना हमारा कर्त्तव्य होना चाहिए। उन्हें जता देना चाहिए कि केवल बङ्गाल ही उनकी मातृभूमि नहीं है। मैंने सर्वदा बङ्गालियों के बिहार और उड़ीसा से विलग हो जाने की इच्छा के विरुद्ध अपने भावों को प्रकाशित किया है और केवल बँगभाषा बोलनेवाली जातियों से ही एक प्रान्त का निर्म्माण होना सर्वथा मेरे भावों के प्रतिकूल है। इस प्रकार का विभेद मेरी समझ में भारतवासियों के जातीय-संगठन का हानिकारक होगा। बङ्गालियों के लिये बंगाल, बिहारियों के लिये बिहार और पञ्जाबियों के लिये पञ्जाब इन उच्चतर ध्वनियों के मैं सर्वदा प्रतिकूल हूँ। प्रांतिक जातीयता का भाव भारत जातीयता की वृद्धि का बहुत बड़ा कंटक है। यह भाव भारतजातीयता की सच्ची वृद्धि में सर्वदा कीड़ा बना रहेगा। यह सच मुच भारत राष्ट्रीयता के मूल को नाश करता जायगा। वृक्ष बहुशाखा परिपूर्ण होने पर भी, यदि इसकी जड़ सड़ी हो, तो बहुत शीघ्र छोटे छोटे अन्धड़ों ही की झोंक से गिर जाता है। सच्ची देशभक्ति का सम्बन्ध केवल राजनीति ही के साथ नहीं है। वरन, बोलचाल, लिपि, भाषा, रहन-सहन, तथा चाल-चलन भी उसकी उन्नति के प्रधान अङ्ग हैं। अब देश में छोटे छोटे राज्यों की स्थिति का दिन चला गया। पृथ्वीमात्र के मनुष्यों का भाव उच्चतर हो गया है। सामाजिक और साहित्यसम्बन्धी एकता ही जातीय संघटन की प्रधान नींव है। हिन्दी की उन्नति और प्रचार का यथार्थ अर्थ भारत की जातीय उन्नति है। सब अवस्थाओं में प्रत्येक शिक्षित भारतवासी को हिन्दी जानना एवं उसमें कुशल होने की चेष्टा करना अति वांछनीय एवं प्रयोजनीय है। क्योंकि बनारस हिन्दुधर्म्म और संस्कृत भाषा का केन्द्र है, इससे हिन्दी सीखने में बड़ा सुभीता होगा। मैं इस आन्दोलन के सञ्चालकों को हृदयतल से एवं मुक्तकण्ठ से हार्दिक धन्यवाद देता हूँ कि जिन्होंने मुझे अपना भाव प्रकाश करने का अवसर दिया है।

—:o:—

मुसलमानी राजत्व में हिंदी।

[मुंशी देवीप्रसाद लिखित।]

हिंदी मुसलमान बादशाहों के राज में हिसाब-किताब, राज-काज, साहित्य और संगीत-संबंधी कामों के लिये बहुत प्रचलित रही है जिसका संक्षिप्त वृत्तांत मुसलमानी तवारीख़ों के आधार पर अपनी विद्या और बुद्धि के अनुसार लिखता हूँ।

हिसाब-किताब में हिंदी

मुसलमान जबसे हिंदुस्तान में आए तबसे ही उनके राज्य का काम बहुधा हिन्दी में ही होता था। हिसाब और जमाख़र्च का दफ़तर तो मोहम्मद क़ासिम के समय से अकबर बादशाह के राज तक हिन्दी में ही रहता चला आया था। इसका कारण कुछ यह नहीं था कि मुसलमान लोग हिसाब नहीं जानते हों किन्तु वे ऐश्वर्यवान और सिपाही पेशा होने से हिसाब करने और जोड़-तोड़ लगाने का परिश्रम कम उठाना चाहते थे और इसको अपनी सिपाहगरी और विजयप्राप्ति के आगे कुछ बड़ा काम नहीं समझते थे, इसलिये जो देश फ़तह करते थे वहाँ के दीवानों, दफ़तरों और लेखकों को ज्यों का त्यों बना रखते थे और उन पर शासन करने के लिये अपनी एक बड़ी कचहरी बना देते थे जिस का काम या तो आप या उन के मुसलमान मंत्री किया करते थे। देखो जब मोहम्मद क़ासिम ने संवत ७६८ में सिन्ध देश का राज दाहर से जीता था तो वहाँ के अगले दीवान को राज का काम सौंप कर ब्राह्मणों को दफ़तर में नौकर रखलिया जिनके द्वारा राज्य का कर भी प्रजा से उगाहा जाता था जिससे माल का दफ़तर हिन्दी में ज्यों का त्यों बना रहा।

फिर महमूद ग़ज़नवी ने संवत १०७० में पंजाब का राज्य हिंदुओं से लिया तो उसने भी वहाँ के हिसाब का दफ़तर हिन्दी और हिन्दुओं के हाथों में रहने दिया और ऐसा ही शहाबुद्दीन ग़ोरी ने भी किया जबकि उसने संवत १२५० में दिल्ली का राज लिया था।

इस प्रकार विजयी मुसलमानों के शासन काल में विजित हिन्दुओं की हिंदी भाषा अकबर बादशाह के समय तक उनके दफ़तरों से अलग नहीं हुई। सुलतान सिकंदर लोदी ने हिन्दुओं को फ़ारसी लिखने पढ़ने पर तो लगा दिया था क्योंकि उसको अपने धर्म का बहुत पक्ष था तो भी वह हिन्दी दफ़्तर को फ़ारसी में नहीं कर सका था, जो बड़े परिश्रम, अनुभव और सिर मारने का काम था, तलवार मारने का काम नहीं था, परन्तु राजा टोडरमल ने जब संवत १६३८ में सम्राट अकबर के प्रधान मंत्री का महत् पद पाकर बादशाही कामों में नया सुधार किया तो पुराने दफ़तरों को भी हिन्दी से फ़ारसी में बड़ी सावधानी और बुद्धिमानी से बदल दिया। जहाँ पहिले हिंदी लिपि और हिन्दी बोली हिन्दु लोग लिखते थे वहाँ अरबी और फ़ारसी बोली लिपि और अंक मुसलमान लोग लिखने लगे और इस के साथ ही हिन्दुओं को भी फ़ारसी पढ़ने और अरबी हिसाब सीखने का हुक्म देदिया जिसके वास्ते विलायत के दफ़तरों की प्रथा का ज्ञान ईरानी विद्वानों से प्राप्त करके एक सरल परिपाटी बनाई थी। इस नवीन शिक्षा का यह परिणाम हुआ कि बहुधा हिन्दू लोग हिंदी को तो भूल गये और फ़ारसी लिखना पढ़ना सीखकर पहिले के समान कम तनख़ाह के निरे हिन्दी नवीसंदे ही नहीं रहे किन्तु मुंशी, बख़शी और दीवान बनकर बादशाहों और बादशाही अमीरों की कामदारी और मुसाहिबी के ओहदों तक पहुँचने लगे। स्वयं राजा टोडरमल भी फ़ारसी शिक्षा से ही जो उनसे एक पीढ़ा पहिले सिकंदर लोदी के हुक्म से हिन्दुओं में प्रचलित हुई थी उस परमपद को पहुँचे थे। राजा टोडरमल ने फ़ारसी में जमा-ख़र्च लिखने की जो रीति चलाई थी वह आज तक मुसलमानी

रियासतों में चलरही है। रजवाड़ों के हिन्दी दफ़तरों और बनियों के बही खातों में भी उसी की छाया पर हिसाब लिखा जाता है जिस में बहुधा वेही अरबी-फ़ारसी नाम और शब्द लाये जाते हैं जो राजा साहिब ने इस नये सुधार में नियत किये थे। महात्मा सूरदासजी ने भी इनमें के कई नाम और शब्द अपने इस पद में दिये हैं—

तुम्हरी किरपा हमरे अवगुण जमा खरच कर देखे।
फाजिल पड़े अपराध हमारे इस्तीफा के लेखे॥
अवल हरफ हरफ सानी को जमा बराबर कीजे।
सनद बुरद के हाथ हमारे तलब बराबर दीजे॥
इन्तखाब दुबरकी करके
ऐसो अमल जनायो॥
दसखत माफ करो तिहि ऊपर
सूर स्याम गुन गायो॥१॥

इस प्रकार दिल्ली के बादशाही दफ़तरों में से तो सैकड़ों वर्षों की जमी हुई हिन्दी राजा टोडरमल के निकाले निकल गई परन्तु दक्षिण के बादशाहों के दफ़तरों में ज्यों की त्यों बनी रही जिन का निकास तो दिल्ली से ही हुआ था परन्तु वे अपने अपने राज्य में सैकड़ों वर्षों से स्वतंत्र थे।

तवारीख़ फरिश्ता में लिखा है कि हसनगांगू ब्राह्मणी ने जो सुलतान मोहम्मद तुगलक से प्रतिकूल होकर दक्षिण का पहिला बादशाह संवत १४०४ में हुआ था गांगू (१) ब्राह्मण को अपने हिसाब का दफ़तर सौंपा था। उस दिन से आज तक की हिजरी सन् १०१६ (संवत १६६४) है। हिन्दुस्तान के सब देशों की रीति के विपरीत दक्षिण के बादशाहों के दफ़तर और उन की विलायतों के लिखने पढ़ने के काम विशेष कर के ब्राह्मणों के हाथों में हैं।

प्रायः १७५ के पीछे हसनगांगू के घराने से राज चले जाने पर एक बादशाही की जगह ५ बादशाहियां उनके नौकरों की बीजापुर, अहमदनगर, गोलकुंडा, बिदुर और बराड़ में स्थापित होगईं जो अकबर के समय से लेकर औरंगज़ेब के दक्षिण की दिग्विजय करने तक धीरे धीरे दिल्ली के साम्राज्य में मिलगईं जिससे हिन्दी भी संवत १६४० से १७४२ तक सब मुसलमान बादशाहों के दफ़तरों से निकाली गई और उस की जगह राजा टोडरमल की चलाई हुई वही फ़ारसी लिपि और बोली भरती हुई। यही हाल मालवे, गुजरात, काश्मीर, बंगाल और सिंध वगैरः के स्वतंत्र बादशाहों के हिन्दी दफ़तरों का भी हुआ जो सब एक एक करके मुग़ल बादशाहों ने लेलिए थे।

यों हिन्दी प्रायः १००० वर्ष तक मुसलमान बादशाहों के दफ़तरों में प्रचलित रह कर एक हिन्दू प्रधान मंत्री के प्रयत्न से ख़ारिज होगई जिस की पालीसी फ़ारसी के प्रचार से हिंदू जाति के वास्ते वैसी ही उपयोगी थी जैसी कि आज कल भारत के वर्तमान नेताओं की अंग्रेज़ी के पठन पाठन की वृद्धि करने में है क्योंकि जैसे आज दिन केवल हिंदी वा उर्दू पढ़ा हुआ हिंदुस्तानी आदमी अंग्रेज़ों में कुछ आदर नहीं पा सकता है वैसे ही उस समय भी मुसलमान बादशाहों और उनके अमीरों वज़ीरों में कोरी हिंदी जानने वाले हिंदू की भी कुछ क़दर नहीं थी परन्तु जब वे भी फ़ारसी लिख पढ़ कर राज का काम करने के योग्य होगये तो मुसलमानों के बराबर अमीरों और वज़ीरों के से ओहदे और दरजे पाने लगे।

इस लेख को देख कर बहुधा लोग ऐसा कहेंगे कि हिन्दी के वास्ते अकबर का समय अच्छा नहीं था जिस में राजा टोडरमल के द्वारा हिन्दी की अवनति हो कर फ़ारसी की वृद्धि हुई। सो प्रत्यक्ष में तो यह बात ठीक ही है जो राजनीति के हित से की गई थी परन्तु अकबर मूल में हिन्दी का द्वेषी नहीं था उसने अपने

(१) हसन, गांगू ब्राह्मण का नौकर था और उसी के प्रसंग और आशीर्वाद से इस पद को पहुँचा था। उसने बादशाह होने के पीछे गांगू का उपकार याद रखने के लिये अपना नाम सुलतान हसन गांगूय ब्राह्मणी रखलिया, उसके वंशज भी सब अपने नाम के पीछे बहमनी (ब्राह्मणी) शब्द जोड़ते रहते थे।

पोते .खुसरो को ६ वर्ष की अवस्था में पहिले हिन्दी पढ़ने को ही बैठाया था। अकबरनामे में लिखा है कि ७ आज़र सन ३८ जलूसी (अगहन सुदि ६ संवत १६५०) को सुलतान .खुसरो हिन्दी विद्या सीखने को बैठा। भूदत्त ब्राह्मण जो भट्टाचार्य के नाम से सर्व साधारण में प्रसिद्ध है और अनेक विद्याओं में कम कोई उसके समान होगा उसको पढ़ाने को नियत हुआ

अब यहाँ सिकंदर और अकबर के कर्मकांड की तुलना करके देखना चाहिये कि सिकंदर ने तो हिन्दुओं को भी हिन्दी के पढ़ने से रोक दिया था और अकबर ने अपने पोते को पढ़ा कर निज घरही में हिन्दी का प्रचार किया।

अकबर ने राज्यप्रबंध के जीर्णोद्धार और शासन संस्कार में भी हिन्दी का ही बहुत कुछ प्रचार किया था जिसका पता आईन अकबरी से लगता है। सिक्कों, तोपों, बंदूकों हाथी, घोड़ों और दूसरी चीज़ों के नाम जो उसने नए निकाले थे बहुधा हिन्दी के ही रक्खे थे जिनका कुछ नमूना यहाँ भी लिखा जाता है।

सोने के सिक्कों के नाम

१ सहंसा—१०१ तोले ९ मासे सोने का होता था और ९१ तोले ८ माशे का भी
२ रहस्य—सहंसे का आधा
३ आत्म—सहंसे का चौथाई
४ विंशति—सहंसे का १० वाँ और २० वाँ भाग
५ चुगल—सहंसे का ५० वाँ भाग-२ मोहर का
६ अदल गुटका ११ माशे सोने का—मोल ९)
७ धन—१ मोहर मोल ९)
८ रवि—आधी मोहर
९ पांडव—मोहर का पाँचवाँ भाग
१० अष्टसिद्धि—मोहर का आठवाँ भाग
११ कला—मोहर का सोलहवाँ भाग

चाँदी के सिक्कों के नाम

१ रुपया
२ द्रव्य—अठन्नी
३ चरण—चौअन्नी
४ पांडव—१ रुपये का पाँचवाँ भाग
५ दशाह—दसवाँ भाग
६ कला—अन्नी वा सोलहवाँ भाग
७ सोकी—२० वाँ भाग

ताँबे के सिक्के के नाम

१ दाम—१ पैसा—१ तोले आठ माशे ७ रत्ती भर
२ अधेला—आधा दाम
३ पवला—पाव दाम
४ दमड़ी—दाम का आठवाँ भाग

तोपों के नाम

१ गजनाल
२ हथनाल
३ नरनाल

बंदूकों के नाम

१ संग्राम
२ रंगीन

तलवारों के नाम

१ जमधर—जमडाढ़
२ खपवा
३ जमखाग
४ नरसिंह मूठ
५ कटारा

पहिनने के कपड़ों के नाम

१ सर्वगाती—जामा
२ चित्रगुप्त—बुरका, गूंघट
३ शीश शोभा—टोपी—मुकुट
४ केशघन—मूबाफ बालों में गूंथने वा बाँधने का
५ कटिजेब—कमरबंदा—पटका
६ तनजेब—आधे बदन में पहिनने का नीमा
७ पटगत—नाड़ा, कमरबंद
८ पारपेरान—इजार—पाजामा

९ परम नरम—शाल
१० परम गरम—दुशाला
११ चरनधरन
१२ कंठ सोभा
१३ टकोचिया
१४ केशघन

कपड़ों के थानों के नाम ।

१ गंगाजल
२ चैातार
३ भेरों
४ मिहर कुल
५ अटान
६ असावली
७ धूरकपूर
८ कपूरनूर

हाथी के सामानों के नाम।

१ गजझांप—झूल
२ मेघडंबर—छतरीदार होदा
३ रणपील—सिरी
४ गजबागा—अंकुश

सिपाहियों के नाम ।

१ लकडेत—लकड़ी से लड़ने वाले
२ पटेत—पटेबाज़
३ ढालेत—ढाल तलवार से लड़ने वाले
४ बरछेत—बरछे से लड़ने वाले
५ कमनेत—तीर कमान से लड़ने वाले
६ बाणेत—दोनों हाथों से तलवार मारने वाले
७ एकहाथ—एक हाथ से तलवार मारने वाले
८ बिनोटिया—तलवार छीन लेने वाले
९ चड़वा—छोटी ढाल रखने वाले पुरबिये
१० तलवा—बड़ी ढाल रखने वाले दखनी
११ बनकोली—बाँकी या टेढ़ी तलवार वाले
१२ पहरायत—पहरा देने वाले
१३ खिदमतेये—सेवक
१४ मेवड़े—डाक ले जाने वाले
१५ चेले—जो पहिले गु़लाम कहलाते थे
१६ अहदी—अकेले लड़ने वाले

डेरे वग़ैरा के नाम ।

१ गुलालबाड़—बड़ी क़नात लाल रंग की जो सब डेरों के आस पास कोट के समान खड़ी होती थी।
२ रावटी—दस दस, लंबे चौड़े डेरे।
३ मंडल—४ गज़ के ४ चोबों पर खड़े होने वाले डेरे।
४ आकाशदिया—जो ४० गज़ ऊँचा होता था ।
५ सूर्यकांति—जिसको दोपहर के समय सूरज के सामने रखकर रुई में अग्नि उत्पन्न करते थे जिससे बादशाही बबरचीख़ानों और दीपकों के जलाने वग़ैरा में काम लिया जाता था।
६ चंद्रकांति—जिसे चंद्रमा के आगे करके पानी टपकाया जाता था।
७ संख—गाय के सींग जैसा ताँबे का बनाया जाता था और ऐसे ऐसे संखों को मिला कर समय समय पर दरबार में बजाते थे।

बादशाहों के सिक्कों में हिंदी।

पुराने सिक्कों के देखने से पाया जाता है कि शहाबुद्दीन गोरी से लेकर अकबर बादशाह के समय तक ४०० वर्ष के लग भग बादशाही सिक्कों में हिन्दी अक्षर रहते आये थे जिनमें बादशाहों के नाम तथा और भी कई विशेषण मुद्रित होते थे।

शहाबुद्दीन ने अपनी दिग्विजय में हिन्दुओं और हिन्दू धर्म का सर्वनाश तो किया परन्तु सिक्कों में जो हिन्दी अक्षर और राज्य चिह्न हिन्दू राजाओं के समय से चले आते थे वे सब ज्यों के त्यों रहने दिये । हम यहां उनका भी कुछ नमूना हिन्दी-प्रेमियों की भेंट करते हैं।

नम्बर	नाम बादशाह	हिन्दी अक्षर
१	मोईज्जुद्दीन मोहम्मद साम व शहाबुद्दीनगोरी	१ स्रोमहमद बिनसाम २ स्रोमद हमीर स्री महमद साम
२	महमूद बिन साम	स्रो हमीर
३	ताजुद्दीन यलदोज़	स्रो हमीर
४	शमसुद्दीन एलतमश	स्रो हमीर श्री समसदिया
५	रुक्नुद्दीन फ़ीरोज़शाह	स्रो हमीर, सुरितां स्रो रुकण दीण
६	रज़िया बेगम	स्रोहमीर,स्रोसामन्तदेव
७	मुइज्जुद्दीन बहरामशाह	स्री मुइज़
८	अलाबुद्दीन मसऊदशाह	स्री हमीर, स्रो अलावदिण
९	नासिरुद्दीन महमूदशाह	स्रो हमीर
१०	ग़यासुद्दीन बलबन	स्रो सुलतां गयासुदी
११	मुइज़्ज़ुद्दीन कैक़ुबाद	स्री सुलतां मुईजुदी
१२	जलालुद्दीन फ़ीरोज़ खिलजी	स्री सुलतां जलालुदी
१३	ग़यासुद्दीन तुग़लक़ शाह	स्रो सुलतां गयासदो
१४	शेरशाह सूर	स्रो सेर साहि
१५	इसलामशाह सूर (सलीम शाह)	स्री इसलाम साहि
१६	अकबर बादशाह	श्रो राम

अकबर बादशाह ने सब बादशाहों से बढ़कर यह काम किया कि अपने अनेक सिक्कों के साथ एक सिक्का ऐसा भी चलाया था कि जिसमें न तो अपना नाम था और न कोई राजचिह्न था। केवल एक तर्फ़ तो श्रीराम और सीताजी की मूर्ति थी जिस पर नागरी में राम नाम लिखा था और दूसरी ओर पर इलाही महीना और इलाही सन् था। ऐसे ऐसे सिक्के की छाप लखनऊ की छपी हुई आईन अकबरी में है जिसमें सीधी तर्फ़ तो रामचन्द्रजी की मूर्ति इस आकृति से बनी है कि आप मुकुट धारण किये और धनुषबाण चढ़ाये जारहे हैं। पीछे सीताजी हैं। उनके हाथ में भी १ छोटी सी डाल है। उलटी और फ़ारसी में बहमन इलाही ५० मुद्रित है। यह उस मोहर के टकसाल में पड़ने की तारीख़ है। बहमन महीना इलाही सन् ५० का हमारी ऐतिहासिक जंत्री में चेत सुदि १ रविवार संवत १६६२ ता० १० मार्च सन् १६०५ को लगा था।

सरकारी काग़ज़ों में हिन्दी।

क़ाज़ी लोग जो मुक़द्दमों के फ़ैसले लिखते थे या क़ानूनगो सरकारी काग़ज़ और परवाने निकालते थे उनमें भी कभी कभी हिन्दी लिखी जाती थी। ज़मीन संबंधी फ़ैसलों में ऐसे हिन्दू वादी प्रतिवादी के समझने के लिये जो फ़ारसी पढ़े नहीं होते थे फ़ारसी के नीचे कुछ सारांश हिंदी में भी लिख दिया जाता था। गाँववालों के नाम के परवाने दस्तक और इतलाक़नामे वग़ैरा बहुधा हिन्दी ही में होते थे। इस हिन्द की रोक किसी ने नहीं की थी। औरंगज़ेब के समय में भी चलती रही थी। मैंने ऐसे कई काग़ज़ देखे हैं।

साहित्य।

हिन्दी-साहित्य का आदर मुसलमान बादशाहों में उनका राज होते ही होगया था। सुलतान महमूद ग़ज़नवी की तवारीख़ में लिखा है कि जब उसने सन ४१३ हिजरी (संवत् १०८०) में कालंजर पर चढ़ाई की थी तो वहाँ के राजा नंदा ने उसकी प्रशंसा में एक हिन्दी शेर (दोहा) लिख कर भेजा था। सुलतान ने उसको हिन्दी अरब और अजम (ईरान) के विद्वानों को दिखलाया जो उसकी सेवा में थे, सबने सराहना की और बहुत दाद दी। तब सुलतान ने अपना बहुत गौरव मानकर (क्योंकि एक बड़े स्वतंत्र राजा ने उसकी प्रशंसा की थी) १५ क़िलों की हकूमत का फ़रमान जिनमें एक कालंजर भी था बहुमूल्य पदार्थों सहित उसके पारितोषिक में राजा के पास भेजा और उसका राज्य ज्यों का त्यों उसी के पास छोड़कर उसने ग़ज़नी की तरफ़ कूच कर दिया।

तवारीख़ में यह नहीं लिखा है कि उस दोहे में क्या भाव था। परन्तु इसमें संदेह नहीं है कि उसमें ऐसा चमत्कार होगा कि जो हिन्द, अरब, और अजम (ईरान) के विद्वानों को पसंद आगया और सुलतान ने रीझकर उसकी ऐसी क़दर की कि राजा का राज्य भी नहीं लिया जिसके वास्ते वह ग़ज़नी से इतनी दूर चलकर आया था और इसके सिवाय १४ क़िले और उसको दे गया। इस वृत्तान्त से सुलतान महमूद की प्रीति हिन्दी की प्रति स्पष्ट रीति से सिद्ध होती है और उससे ये चार बातें निकलती हैं।

१ एक तो हिन्दी की क़दरदानी।

२ हिन्द के विद्वानों को अपने पास रखना।

३ एक शत्रु राजा की हिन्दी कविता को अपने गौरव का हेतु समझना।

४ उसकी रीझ में राजा को उतना बड़ा पारितोषिक देना जो दोनों के ही मान-सम्मान का सूचक था।

यदि सच पूछो तो इन सब बातों का मूल कारण हिन्दी भाषा और उसकी कविता का प्रभाव था। जिसने महमूद जैसे कट्टर तुर्क बादशाह के दरबार में अपना महत्त्व दिखा कर अरब और अजम के विद्वानों को मोहित करलिया और उपहार भी वह पाया कि वैसा फिर कभी किसी समय में नहीं मिला होगा क्योंकि प्रथम तो कालंजर का राज्य नष्ट होने से बच गया। दूसरे राजा नंदा को अद्वितीय मान और लाभ प्राप्त हुआ जिससे उसका राज्य और दृढ़ होगया। तीसरे मुसलमान भी हिन्दी भाषा के रसिया बन कर स्वयं उसमें कविता करने लगे, जिसका पता भी उसी बादशाह के वंशजों की तवारीख़ों से लगता है, जिनमें लिखा है कि उनके समय में सुलेमान का पोता साद का बेटा मसऊद हिन्दी भाषा का बड़ा विद्वान् और कवि था। उसने जो दो दीवान फ़ारसी के बनाये थे तो एक हिन्दी का भी बनाया था। फ़ारसी भाषा में किसी कवि की सब कविता के संग्रह को दीवान कहते हैं।

पंजाब में महमूद ग़ज़नवी का राज संवत् १०७० में होगया था और जब ही से मुसलमान लोग हिन्दी बोलने लगे थे और यही कारण मसऊद के कवि होजाने का था।

जामेउलहिकायात से जो सुलतान शमसुद्दीन के राज में संवत् १२६८ के आसपास बनी है जाना जाता है कि अन्हलपुरपट्टन के राजाधिराज सोलंखी सिद्धराज जयसिंहदेव के समय में जिसने संवत् ११५० से संवत् १२०० तक राज किया था कुछ हिन्दुओं और फ़ारसियों ने मतद्वेष से खंभात के कई मुसलमानों को मार डाला था और उनकी एक मसजिद भी गिरादी थी। मसजिद का 'ख़तीब' (उपदेशक) कुतुबअली कवि था। वह यह सब हाल हिन्दी कविता में लिख कर राजा के पास लेगया। राजा ने निर्णय करके मसजिद को फिर से बनाने के लिये रुपया दिला कर अपराधियों को दंड दिया। इधर दिल्ली में तुर्कों का राज होजाने से जो संवत् १२५० में हुआ था मुसलमानों में हिन्दी का प्रचार और बढ़ा, जिनमें अमीर ख़ुसरो जैसे हिन्दी भाषा के कविकोविद उत्पन्न होगये; जिनकी मधुर और प्रासाद कविता ने मुसलमानों को हिन्दी-साहित्य का रसिया बना दिया। ख़ुसरो के समकालीन सुलतान फ़ीरोज़ तुग़लक के राज्य में मुल्ला दाऊद ने नूरक और चंदा के प्रेम का हिन्दीकाव्य बनाया था, जिसको उस समय के लोग बड़े प्रेम से पढ़ते थे और शेख़ 'तक़ीउद्दीन' उपदेशक भी दिल्ली की जामामसजिद में व्याख्यान देते हुए उसके दोहे और कवित्त पढ़कर लोगों को मुग्ध कर देता था। एक दिन किसी मोलवी ने कहा कि मसजिद में यह हिन्दी-कविता क्यों पढ़ी जाती है तो शेख़ ने कहा कि इसके भाव सब सूफ़ियों और क़ुरान की शिक्षाओं से मिलते हुए हैं। इस बात से जो मुल्ला अब्दुलक़ादिर बदऊनी ने अपने इतिहास में लिखी है यह सिद्ध होता है कि उस समय हिन्दी की कविता मुसलमानों में ख़ूब समझी जाने लगा थी और फिर कोई समय ऐसा नहीं था कि जो मुसलमान कवियों से

ख़ाली रहा हो। हमको हिन्दी-पुस्तकों का खोज में कई मुसलमान कवियों का पता लगा है और कई ग्रंथ भी उनके रचे हुए मिले हैं। परन्तु विस्तारभय से हम यहाँ केवल उनके नाम किंचित् परिचय सहित प्रमाणस्वरूप लिख देते हैं।

१ अकबर (बादशाह)
२ अनवरख़ाँ
३ अनीस
४ अब्दुल रहमान
५ अलहदाद
६ अलीमन
७ अहमद
८ आज़म
९ आदिल
१० आरिफ़
११ आलम
१२ आसिफ़
१३ इनशा
१४ कमाल
१५ क़रीम
१६ क़ाज़ी अकरम
१७ ख़ान
१८ ख़ान आलम (नवाब)
१९ ख़ान सुलतान
२० ख़ुसरो
२१ ग़ुलामी
२२ जमाल
२३ जलील
२४ जानजानाँ
२५ ज़ुलकरनैन
२६ ज़ेनुद्दीन
२७ ताज
२८ तानसेन
२९ दाऊद
३० दानियाल (शाहज़ादा)
३१ दानिशमंद ख़ाँ
३२ दिलदार
३३ दिलाराम
३४ नज़ीर
३५ नबी
३६ नयाज़
३७ निवाज़
३८ निशात
३९ पंथी (मिरज़ा रोशन ज़मीर)
४० प्रेमी (शाह बरकत)
४१ फ़रीद
४२ फ़ज़ायलख़ाँ
४३ फ़हीम
४४ बाज़ीद
४५ बारक
४६ मदनायक (निज़ामुद्दीन बिलगरामी)
४७ मलिक मोहम्मद जायसी
४८ मलिकनूर मोहम्मद
४९ महबूब
५० मीरमाधो
५१ मीर रुस्तम
५२ मुबारक
५३ मोहम्मद
५४ रज्जबजी
५५ रहमतुल्लाह
५६ रहमान
५७ रहीम (नवाब ख़ानख़ाना)
५८ रसनायिक (तालिबअली)
५९ रसिया (नजीबख़ाँ)
६० लतीफ़
६१ वजहन
६२ वहाब
६३ वाहिद
६४ साहिब
६५ सुलतान
६६ सुलतान पठान
६७ शाह मोहम्मद

६८ शाहशफ़ी
६९ शाहहादी
७० शेख़
७१ शेख़गदाई
७२ शेख़ सलीम
७३ हाशम बीजापुरी
७४ हिम्मत ख़ाँ
७५ हिम्मत बहादुर (नवाब)
७६ हुसेन
७७ हुसेन भारहरी
७८ हुसेनी

इनमें कई कई तो रहीम श्रीर ख़ान आलम वग़ैरः जैसे आप भी कवि थे वैसे कवियों की क़दर भी ख़ूब करते थे। संभव है कि इनके सिवाय श्रीर भी मुसलमान कवि हुए हों श्रीर अब भी अमीरअली-मीर जैसे अच्छे कवि मुसलमानों में विद्यमान हैं।

प्रायः सबही मुसलमान बादशाह हिन्दी भाषा श्रीर हिन्दी-कविता को समझते थे श्रीर कई कई तो पढ़ते भी थे और स्वयं कविता भी करते थे। अकबर बादशाह की फुटकर कविता बहुधा कवियों को याद है। जहाँगीर की कविता तो कोई नहीं सुनी गई परन्तु इसमें संदेह नहीं है कि हिन्दी के अच्छे अच्छे दोहे श्रीर कवित्त उसको याद थे। उसने अपनी दिनचर्य्या में जिसका नाम तुज़ुक जहाँगीरी है कई जगह ऐसी बातें लिखी हैं जिनसे उसको हिन्दी कविता का याद होना प्रतीत होता है। वह संवत् १६७४ के वृत्तांतों में कुमुदनी और कमल की व्याख्या करते हुए कहता है "कि यह बंधी हुई बात है कि कमल दिन को फूलता है और रात को सुकड़ जाता है। कुमुदिनी दिन को मुँद जाती है और रात को खिलती है। भौंरा सदा इन फूलों पर बैठता है और इनके भीतर जो मिठास होती है उसके चूसने के लिये इनकी नालियों में भी घुस जाता है। बहुधा ऐसा होता है कि कमल मुँद जाता है और भौंरा सारी रात उसी में बैठा रहता है। इसी तरह कुमुदिनी में भी। फिर उनके खिलने पर भौंरा निकल कर उड़ जाता है। इसी लिये हिन्दुस्तान के कवीश्वरों ने बुलबुल के समान उसको फूलों का रसिया मानकर अपनी कविताओं में उत्तम युक्तियों से उसका वर्णन किया है।"

"तानसेन कलावंत मेरे बाप की सेवा में रहता था। वह अपने समय में अद्वितीय ही नहीं था वरन किसी समय में भी उनके तुल्य गवैया नहीं हुआ है। उसने अपने ध्रुपद में नायका के मुख को सूर्य की, उसके आँख खोलने को कमल के खिलने और उसमें से भौंरे के उड़ने की उपमा दी है। दूसरी जगह कनखियों से देखने को भौंरे के बैठने से कमल का हिलना कहा है।"

अब दो एक दृष्टांत इस बादशाह के कवियों को निहाल करने के भी लिखे जाते हैं।

(१) संवत् १६६९ के बैशाख वदि ११ के वृत्तांतों में लिखा है "कि राजा सूरजसिंह[1] हिन्दी भाषा के एक कवि को भी लाया था जिसने मेरी प्रशंसा में इस भाव की कविता भेट की कि जो सूरज के कोई बेटा होता तो सदाही दिन बना रहता। रात कभी नहीं होती क्योंकि सूरज के अस्त होने पर यह उसकी जगह बैठकर जगत् को प्रकाशमान् रखता। परमेश्वर धन्य है जिसने आपके पिता को ऐसा पुत्र दिया जिससे उनके अस्त होने पर लोगों में शोक-रूपी रात्रि नहीं व्यापी, सूरज बहुत पश्चात्ताप करता है कि हाय मेरा भी कोई ऐसा ही बेटा होता जो मेरी जगह बैठ कर पृथ्वी में रात नहीं होने देता जैसा कि आप के भाग्य के चमत्कार श्रीर न्याय के तप-तेज से ऐसी भारी दुर्घटना हो जाने पर भी संसार इस प्रकार से प्रकाशमान् हो रहा है कि मानो रात का नाम श्रीर निशान ही नहीं है।"

"ऐसी नई युक्ति हिन्दी भाषा के कवियों की कम सुनी गई थी। मैंने इसके इनाम में उस कवि को हाथी दिया। राजपूत लोग कवि को चारण कहते हैं।

(२) बैशाख वदि ३० मंगलवार संवत् १६७५ को जहाँगीर ने अहमदाबाद गुजरात में बूखराय

(१) मारवाड़ का राजा

भाट को १०००) दिये और इसके विषय में लिखा कि "यह गुजराती है। इस देश की बातें .खूब जानता है। इसका नाम बूटा था। मेरे जी में आया कि बूढ़े आदमी को बूटा कहना अनमिल बात है और विशेष कर के उस दशा में जब कि मेरी कृपादृष्टि से हरा भरा हो कर फूल फल से लद गया है। इसलिये मैंने हुक्म दिया कि इसको बृखराय कहा करें। बृख (वृक्ष) हिन्दी में दरख़्त को कहते हैं।"

जहाँगीर का बेटा शाहजहाँ हिन्दी बोलने और हिन्दी-कविता के समझने में अपने बाप और दादा से बढ़ गया था। इन मुग़ल बादशाहों की मातृभाषा तो तुर्की थी और घर में तुर्की ही बोला करते थे परन्तु हिन्दुस्तान में राज करने से हिन्दी भी बोलने लगे थे और शाहजहाँ की मातृभाषा तो मानों हिन्दी ही थी। जब वह जन्मा था तो अकबर बादशाह ने उसे अपनी बड़ी बेगम सुलतान रुक़ैया को सौंप दिया था कि तुम्हारे संतान नहीं है इसी को अपना बेटा समझ कर पालो। बेगम की बोली तुर्की थी इस लिये वह शाहजहाँ से तुर्की ही बोलती और बहुत चाहती थी कि यह भी तुर्की ही बोला करे परन्तु शाहजहाँ को तुर्की पसन्द नहीं थी और न उसका जी तुर्की बोलने में लगता था।

मुल्ला अब्दुल हमीद ने बादशाहनामे में लिखा है कि "हज़रत बादशाह ज़ियादा तो फ़ारसी बोलते हैं और जो लोग फ़ारसी नहीं जानते उनसे हिन्दुस्तानी बोली में बातें करते हैं; कुछ तुर्की भी समझते हैं परन्तु बोलते कम हैं। बोलने का अधिक अभ्यास नहीं है। बचपन में इस भाषा की तरफ़ कुछ रुचि नहीं थी। मिरज़ा हिंदाल की बेटी और बाबर बादशाह की पोती रुक़ैया सुलतान जो बादशाह के लालन पालन को नियत हुई थी उसकी बोली तुर्की थी और वह महल में तुर्की बोला करती थी। और बादशाह को ज़बरदस्ती तुर्की बोलना सिखाती थी परन्तु बादशाह को यह बोली नहीं सुहाती थी इसलिये बहुधा शब्द तो समझ में आ गये परन्तु अच्छी तरह से बोलना नहीं आया। एक दिन जहाँगीर बादशाह ने प्यार से कहा कि जो कोई मुझसे पूछे कि वह क्या उत्तम गुण है जो बाबा .खुर्रम (शाहजहाँ) में नहीं है तो मैं यह कहूँगा कि वह तुर्की बोलना है।"

"बादशाह ने बड़े अदब से अपने बाप को उत्तर दिया कि हज़रत के प्रताप से यह गुण भी प्राप्त हो जायगा परन्तु वे अपने को निरा निर्दोष ही नहीं बनाया चाहते थे इसलिये नज़र नहीं लगने के लिये इस कमी को पूरा नहीं किया।"

निदान मुल्ला ने भी वाक्य-चापल्य से अलंकार के रूप में वही बात कही जो हम ऊपर कह आये हैं कि शाहजहाँ तुर्की नहीं बोलता था, हिन्दी बोलता था।

शाहजहाँ को भी हिन्दी कविता से अधिक प्रेम था। वह अपने दरबार-कवीश्वरों में से जगन्नाथ-राय, त्रिशूली हरनाथ महापात्र और सुन्दर कविराय की कविता बहुत पसंद करता था और इनको बड़े बड़े इनाम और इकराम देता था।

कहते हैं कि जोधपुर के महाराजा जसवंतसिंह को शाहजहाँ बादशाह के सत्संग से ही कविता करना आया था। एक बेर शाहजहाँ ने महाराजा से एक कवित्त का अर्थ पूछा था। जब महाराजा से पूरा पूरा अर्थ न हो सका तो सूरतमिश्र को हुक्म दिया कि राजा को कविता सिखाओ और कवि बनाओ।

शाहजहाँ का बेटा दाराशिकोह तो हिन्दी और संस्कृत के समझने में अपने बाप दादाओं से भी बढ़ कर निकला था जिसने स्वयं उपनिषदों का उलथा फ़ारसी में किया था परन्तु औरङ्गज़ेब हिन्दुओं का द्वेषी हो कर भी हिन्दी भाषा और हिन्दी कविता से विमुख नहीं रहा था। आगरे की छपी हुई मुआसिर आलमगीरी में लिखा है कि १० जमादिउल अव्वल सन् १००१ (फागुन सुदि ११ संवत ११४६) को बादशाह के डेरे दक्षिण में कृष्णानदी पर गाँव बदरी के पास हुए। एक दिन सलाबतख़ाँ मीर तुज़ुक ने बादशाही अदालत की कचहरी में पहिले एक आदमी को बादशाह की नज़र से गुज़राया

कि यह अर्ज़ करता है कि मैं बङ्गाल के दूर देश से चेला होने के वास्ते आया हूँ सो मेरा मनोरथ पूरा होना चाहिए। बादशाह ने मुसकरा कर खीसे में हाथ डाला और १००) के सोने और चाँदी के 'चरन' सलाबतख़ाँ को दे कर फ़रमाया कि इसको दे दो और कहो कि हम से जो रोकड़ लाभ लिया चाहता है तो यह है। जब ख़ान ने यह रक़म उसको दी तो वह बखेर कर नदी में कूद पड़ा। ख़ान चिल्लाया कि यह तो डूबता है। बादशाह के हुक्म से तैराक लोग उसको नदी में से पकड़ लाये। तब हजरत ने दरवाज़े के भीतर मुँह करके सरदारख़ाँ से कहा कि एक आदमी बङ्गाल से आया है उसके सिर में यह झूठा ख़याल समाया हुआ है कि मेरा मुरीद (चेला) हो जावे। दोहरा—

चूहा खड़ा न मावे तरकल बंधी जज्ज।
तोले नंदी मादरवेंदी खदी नलज्ज ॥१॥

इसको मियां फ़र्रुख़सहरंदी के पास ले जाओ और कहो कि इसको मुरीद कर लो और टोपी पहिनादो।

बड़े खेद की बात है यह दोहरा जिसके लिये इतनी कथा लिखी गई है ठीक ठीक पढ़ने में नहीं आता और इसका कारण यही है कि फ़ारसी लिपि में हिन्दी भाषा सही नहीं लिखी जाती।

कलकत्ते की छपी हुई प्रति में यह दोहरा यों लिखा है।

टोपी लँदे बावरी देंदे खरे निलज्ज।
चूहा खड नमावली तोकल बंधे छज्ज ॥१॥

तज़करे चगत्ता में भी यह दोहा ऐसा ही संदिग्ध लिखा हुआ है।

रुक्केआत आलमगीरी में लिखा है कि एक बेर शाहज़ादा मोहम्मद आज़म ने कुछ आम बाप के पास भेजे थे और उनके नाम रखने की प्रार्थना की थी। औरंगज़ेब ने बेटे को लिखा कि तुम स्वयं विद्वान् हो कर बूढ़े बाप को क्यों ऐसी तकलीफ़ देते हो, और तुम्हारी ख़ातिर से सुधारस और रसनाबिलास नाम रक्खा गया।

बहुत से हिन्दी के हिन्दू-कवियों ने भी मुसलमान बादशाहों से हिन्दी-कविता पर बड़े बड़े मान-सम्मान और इनाम पाये हैं। अकबर आदि मुग़ल बादशाहों में तो कविराय का एक पद ही नियत हो गया था जो हिन्दू-कवियों को मिला करता था। राजा बीरबर को सबसे कविराय का ही ख़िताब मिला था। बीरबर के कविराय होने से पहिले एक कविराय और भी था जिसको बादशाह ने उड़ीसे के राजा मुकंददेव के पास भेजा था। शाहजहाँ के समय में सुन्दर कविराय और जगन्नाथ महा कविराय था। दूसरा ख़िताब महापात्र का भी था जो नरहर और हरनाथा वग़ेरा कवियों को मिला था और ऐसे ही और भी बादशाहों के राज्य में हिन्दीभाषा के हिन्दू और मुसलमान कवि प्रतिष्ठा पाते रहे हैं जिनका वर्णन करने से लेख बहुत बढ़ जाता है। सारांश यही है कि मुसलमान बादशाहों और विशेष करके मुग़लों के समय में हिन्दी-कविता ने उनकी और उनके अमीरों की उदारता से बहुत उन्नति पाई है और अच्छे अच्छे हिन्दू मुसलमान कवि जिनमें से १७५ नाम सुजान-चरित्र में लिखे हैं इन्हीं के समय में हुए।

और तो क्या हिन्दी तथा ब्रजभाषा के साथ साथ ही डिंगल कविता की उन्नति भी मुग़ल बादशाहों के समय में ही हुई है जो राजपूतों और राजपूताने में विशेष कर के प्रचलित है। जैसे हिन्दी में कई भाषाओं के मिलने से उर्दू बोली निकल पड़ी है वैसी ही मारवाड़ी बोली में भी कई बोलियाँ मिल कर डिंगल भाषा बनी है जिसमें राजपूताने के चारण, भाट और सेवक जाति के कवि कविता करते हैं।

डिंगल कविता पहिले तो बहुत विस्तृत नहीं थी परन्तु जब मुग़ल बादशाहों के समय में राजपूतों का ऐश्वर्य बढ़ा तो उसके साथही डिंगल भाषा के कवियों के भी भाग खुल गए जो राजाओं की रीझ और मौज से तो लाख पसाव पाते ही थे अब उनके प्रसंग से बादशाहों तक भी पहुँच कर उनसे और

उनके उदार अमीरों से भी अपनी मनघड़[1] कविता के पारितोषिक पाने लगे और डिंगल भाषा राजपूताने के जंगलों से निकल सभ्य बादशाहों के मुँह लगने लगी।

चारणों के कहने से तो अकबर बादशाह भी डिंगल भाषा के कवि थे क्योंकि वे उनकी कविता भी पढ़ा करते थे।

जहाँगीर ने एक चारण की जिस कविता का भावार्थ अपनी दिनचर्य्या में लिखा है वह डिंगल भाषा की ही थी। शाहजहाँ और औरंगज़ेब भी डिंगल भाषा जानते थे ऐसा चारणों के ग्रंथों से पाया जाता है। नवाब खानखाना तो डिंगल भाषा का रसिक ही नहीं था वरन् उसकी कविता भी करता था। डिंगल कवियों में उसका भी नाम लिखा जाता है। सारांश यह है कि यह डिंगल कविता भी मुग़लों के समय में उन्नति से विमुख नहीं रही थी। इस भाषा के नीचे लिखे प्रधान प्रधान कवि मुग़ल बादशाहों के समय में ही हुए हैं।

१ पीथल (पृथ्वीराज राठोड़)
२ लक्खा, बारहठ।
३ दुरसा, आडा।
४ सूराचन्द, तापरिया।
५ झूला, साईयाँ।
६ हापा,
७ माला, साँदू।
८ संकर, बारहठ।
९ रंगरेला, बीठू।
१० ईसरदास, बारहठ।
११ जाड़ा, मेहू।
१२ ओपा,
१३ आसा, बारहठ।
१४ राजसिंह।
१५ अल्लू।
१६ पाहूखान, आडा।
१७ किसना, आसिया।
१८ हेम, सामोर।
१९ केसोदास, गाडण।
२० जग्गा, खिड़िया।
२१ हुकमीचन्द, खिड़िया।
२२ नरहरदास, बारहठ।
२३ करनीदान, कविया।
२४ बीरभाण, रतनू

संगीत

हिन्दी-संगीत भी मुसलमान बादशाहों में बहुत फैला क्योंकि बहुधा बादशाह राग-रंग के रसिया थे। नाच, गान बिना वे और उनके अमीर अपने जीवन को फीका समझते थे और इसकी सामग्री भी प्राचीन समय से दूसरे देशों की अपेक्षा भारत में बहुत रहती आई है। गोपालनायक, बख़्शूनायक, चिरजू-नायक, तानसेन, रामदास, और सूरदास, आदि बड़े बड़े गवैये इन बादशाहों के समय में ही हुए हैं जो विशेष करके हिन्दीभाषा के गीत और गाने गाते थे। उनके संगत से बहुत से मुसलमान गवैये भी उत्पन्न हो गए थे जिनकी संतान आज तक इस विद्या की धनी बनी हुई है। भाँति भाँति के हिन्दी-गीत बनाने वाले तथा राग-रागिनियों के जोड़ने वाले भी अनेक कवि अमीर ख़ुसरो से लेकर लखनऊ के अंतिम बादशाह वाज़िद अलीशाह तक हो गए हैं जिनका नाम हिन्दी-संगीत में सदा अमर रहेगा। हिन्दू-गवैयों का मुसलमान बादशाहों ने मानसम्मान भी राजाओं से बढ़ कर किया है। गोपाल नायक को

---

(१) दरबार जोधपुर के कविराजा महामहोपाध्याय मुरारदानजी ने बारडिक क्रानिकल के प्रसंग में जो अपनी अनुमति कलकत्ते के महामहोपाध्याय पं० हरिप्रसादजी शास्त्री को लिखी थी उसमें डिंगल भाषा का अर्थ अनघड़ पत्थर वा मिट्टी का डगल (ढेला) बताया है। आजकल गवर्नमेंट का ध्यान बारडिक क्रानिकल की ओर बहुत झुका हुआ है जो विशेष करके डिंगल भाषा में है जिसके लिये श्री दरबार मारवाड़ ने बहुत सा रुपया व्यय करके जोधपुर में एक बारडिक कमेटी बनाई है जिसकी प्रधानता इसी उदाहरण से सिद्ध होती है कि मारवाड़ राज्य के प्रधान मंत्री उसके प्रेसीडेंट हैं।

अलाउद्दीन ख़िलजी जैसे कट्टर और अभिमानी बादशाह ने तख़्त पर अपने बराबर बैठा कर उसका गाना सुना था। अकबर ने तानसेन को बड़े आदर-सत्कार से बुलाकर पहिले ही मुजरे में १ करोड़ दाम का इनाम दिया था। बाबा रामदास को बैरमख़ाँ ख़ानख़ाना ने १ दिन में १ लाख टके चाँदी के दे डाले थे। महापात्र जगन्नाथराय त्रिशूली के बराबर शाहजहाँ ने रुपये तोल दिये थे और महा कविराय की पदवी देने के सिवा गान-विद्या में भी उसका पद दरबार के सब गवैयों से ऊँचा ही रक्खा था। शाहजहाँनामे में जहाँ बड़े कलावत लाल ख़ाँ को गुणसमुद्र की उपाधि मिलने का उल्लेख है वहाँ कई कलावतों के गुण-वर्णन करके अंत में यही लिखा है कि इस आनन्द मंगल के समय में तो सब राग-रागिनियाँ बनाने और गानेवालों का अग्रगण्य तो जगन्नाथराय महाकविराय ही है।

सबही हिन्दी भाषा की चीज़ें गा गा कर मुसलमान बादशाहों को रिझाया करते थे और उनसे लाखों रुपये के इनाम और जागीरें पाते रहते थे। बादशाहों के हिन्दीभाषा समझने से ही हिन्दी गवैयों का कल्याण और उनको लाभ होता था।

—:०:—

देशी रियासतों में नागरी अक्षरों का प्रचार ।

[पंडित गणपति जनाकी दुबे लिखित ।]

Professor S. S. Laury says, "Mind grows only in so far as it finds expression for itself. It cannot find it through a foreign language. It is round the language learned at the mother's knee that the whole life of feeling, emotion, thought gathers."

विज्ञान-विशारद लॉरी साहब का यह कथन ऊपर दिया है जिसका अनुवाद यों है कि जितना कि मन के अनेक कार्य और धर्म के रूप प्रगटित होते जाते हैं वैसेही मन की भी समुन्नति होती जाती है। उन्नति मन को परकीय भाषा के द्वारा प्राप्त नहीं हो सकती। सम्पूर्ण मनोराग, मनोविकार और विचारों के साधना आविर्भाव माता की गोद में सीखी हुई भाषा ही के साथ संलग्न होते हैं।

१—इस वैज्ञानिक सिद्धान्त से यह सिद्ध है कि यदि मनुष्य उन्नति कर सकता है तो वह केवल मातृभाषा ही के द्वारा कर सकता है अन्यथा नहीं। इसी कारण आजकल इस बात पर अधिक ज़ोर दिया जाता है कि मातृभाषा के द्वारा ज्ञानार्जन कराया जाय। मातृभाषा ही के द्वारा उच्चजातीय वैज्ञानिक शिक्षा प्राप्त करने के उपादान संपादित किये जाँय और मातृभाषा ही को समस्त कार्यों में जो सभ्यता के मार्ग में उपयुक्त हों सर्वोच्च स्थान दिया जाय।

२—वैज्ञानिक सिद्धांतों का ऐसा हाल है कि उनके ज्ञात होते ही उनपर अमल नहीं होने लगता। उन सिद्धान्तों को प्रथम तो कुछ काल प्रचार के लिये दरकार होता है फिर उनके पाए जाने पर उनपर अमल होने लगता है। उसके उपरान्त उनके फल में अनेक रूप दिखाई देते हैं। इसी तरह मातृभाषा के द्वारा ज्ञानार्जन के प्रश्न का भी हाल है। वैज्ञानिकों ने उसे मान लिया है। अब अमल में लाने का विचार है।

३—सरकार गवर्नमेंट के उस उदार भाव के लिये धन्यवाद है कि उसने प्राथमिक शिक्षा का सम्बन्ध देशी भाषाओं के ही द्वारा कराने की प्रणाली शुरू से प्रचलित की। अब इतनी बात अवश्य है कि उसके आगे चलकर देशी भाषाओं को विद्यापीठों में भी स्थान दिया जाना उचित था परन्तु न तो उसके लिये प्रथम से कुछ साहित्य ही रचा गया न गवर्नमेंट इस बात की अधिक चिंता ही करती है। इसका स्पष्ट कारण इतनाही है कि उच्चप्रति की वैज्ञानिक शिक्षा का प्रचार और प्रदान दोनों अँगरेज़ी ही भाषा के द्वारा होना उन्हें स्वाभिमान, राजकीय अधिकार और साधनाभाव के कारण अधिक इष्ट है।

४—तात्पर्य, गवर्नमेंट जितना कुछ भी करती है उसके लिये वह धन्यवाद के लिये पात्र है। परंतु देशी रियासतों की यह बात नहीं है। देशी रियासतें इस विषय में वह काम कर सकती हैं जो कि गवर्नमेंट करने में सकुचाती है। देशी रियासतें ऐसा काम कर सकती हैं जो गवर्नमेंट के लिये आदर्श-स्वरूप बन सकता है, क्योंकि किस भाषा की शिक्षा और किस कारोबार में उपयोग करना चाहिये इस विषय में वस्तुतः सब छोटी मोटी रियासतों को सम्पूर्ण स्वाधीनता प्राप्त है।

५—इसलिये नागरी प्रचार का प्रथम कार्य-क्षेत्र देशी रियासतों को बनाना चाहिए। मेरी समझ में तो देशी रियासतों में जितना अधिक और शीघ्र नागरी अक्षरों का प्रचार हो उतना भला है। इसके लिये विशेष यत्न की ज़रूरत है। क्योंकि छोटी छोटी रियासतों का ऐसा कुछ विचार है कि राज-काज में पुरातन से जिन फ़ारसी अक्षरों का प्रचार

चला आता है उन्हीं को क़ायम रक्खा जाय। कारण अदल बदल करने से कदाचित् ऊपर के कर्मचारी लोग उसे पसंद न करें। इस विचार से वे इस विषय में कुछ चेष्टा नहीं करते। इसलिये उनका ध्यान इस बात पर आकर्षित कराना चाहिए कि उनके दरबार का सब काम-काज नागरी अक्षरों में ही किया जाय तो सफलता होगी और गवर्नमेंट को भी उसमें कुछ विरोध नहीं है।

६—बड़ी रियासतों के दो विभाग हो सकते हैं। (१) प्रथम तो वे जिन्होंने नागरी का प्रचार कर दिया है। (२) दूसरी वे जहाँ नागरी का प्रचार होना बाक़ी है और इन्हीं के अन्तर्गत वे रियासतें भी हैं जहाँ नागरी को छोड़ अन्य लिपि का प्रचार है।

७—वे रियासतें जिन्होंने नागरी प्रचार प्रचारित कर दिया है उनमें टिकैत का सम्मान रियासत ग्वालियर को है। ग्वालियर-नरेश ने नागरी अक्षरों का प्रचार करके अपनी रियासत और अपनी मातृ-भाषा का बड़ा उपकार किया है इसलिये वे हिन्दी-जगत् के सर्वोपरि मान्य हैं।

८—ग्वालियर रियासत भर में इस समय तीन भाषाएँ और तीन लिपि प्रचलित हैं। जमाख़र्च की भाषा मरहटी है और उसकी लिपि भी मरहटी है। किन्तु कई विभाग ऐसे हैं जिनमें जमाख़र्च हिन्दी में है और क्वचित् अँगरेज़ी में भी हैं। परन्तु वह केवल ज़रूरत के विचार से है। शिरस्ता भी इसी प्रकार तीन भाषाओं में विभाजित है। हिन्दी लिपि जुडीशियल, पुलिस, कस्टम, जंगल, काग़ज़ात-देही इन विभागों में प्रचलित है। जुडीशियल और पुलिस विभाग की हिन्दी उर्दू ही है किन्तु नागरी अक्षरों में लिखी जाती है। वैसे तो सर्वतः "सरकारी हिन्दी" जिसे कहते हैं उसी का अधिक उपयोग करते हैं। परन्तु जुडीशियल और पुलीस का विशेष उल्लेख करने से यह मतलब है कि ग्वालियर के क़ानून की भाषा इतनी क्लिष्ट होती है कि उसने ब्रिटिश राज्य में प्रचलित उर्दू में जो क़ानून जारी है उसे कठिनता और दुर्बोधता के विचार से नीचा दिखा दिया है। तात्पर्य, साम्प्रत हिन्दी का जो उपयोग क़ानून की तरफ़ ग्वालियर में किया जाता है वह देखने से यह मालूम होता है कि मानो ग्वालियर-नरेश की सम्पूर्ण प्रजा मौलवी की योग्यता रखती है और उसके लिये यह भाषा आम-फ़हम है। परंतु यह नितान्त विरुद्ध है। क़ानून की भाषा जहाँ तक हो सरल हो और सर्व साधारण की समझ में आने में कठिन न हो। ग्वालियर में क़ानून कठिन भाषा में हैं इसका कारण यह है कि क़ानून-निर्माण करने का काम शायद मौलवी-वर्ग पर निर्भर रक्खा हो वरना साधारणतः लिखे पढ़े लोग और विशेषतः पश्चिमी विद्या पारंगत लोग इस काठिन्य को कदापि पसंद नहीं करते, अस्तु। यदि ग्वालियर में आम क़ानून की भाषा में से दुर्बोधता और क्लिष्टता का दोष कम होजाय तो ग्वालियर-नरेश का नागरी-प्रचार का हेतु सत्यरूप से फलित होजाय। यह सुधार सचमुच सोने में सुगन्ध होगा।

१०—हिन्दी-भाषा को मरहठी की मुड़िया लिपि में लिखने का प्रचार आप ग्वालियर में विशेष कर पाइयेगा, यह एक अनोखा मेल है। कदाचित् यह बात बहुतों को मालूम नहीं होगी कि हिन्दीभाषा मरहठी मोडी लिपि में लिखी जाती है। इस प्रथा ने अंशतः नागरी के अक्षरों में हिन्दीभाषा को लिखने में भी कुछ बाधा डाल रक्खी है परन्तु इसका केवल कारण इतना ही जान पड़ता है कि जहाँ अक़सर मरहठो जाननेवाले नहीं हैं और दफ़्तर मरहठी में हैं तो पत्रों की इबारत हिन्दी में होती है और लेखक उसे अपनी लिपि में लिखते हैं। परन्तु आशा है कि कालान्तर में हिन्दी के लिये नागरी ही अक्षरों का प्रयोग होगा।

११—समाचार-पत्र की भाषा बहुधा विशुद्ध हिन्दी होती है तथापि 'सरकारी हिन्दी' की ओर अधिक झुकाव है। सरकारी गज़ट की भाषा सरकारी हिन्दी होती है, 'ग्वालियर गज़ट' ने कई उलट फेर देखे हैं, आदि में वह निरो उर्दू में छपता था, फिर दो कालम हुए और एक ही मज़मून हिन्दी

अर्थात् नागरी अक्षरों में और उर्दू में सामने बराबर में छपते रहे। जब से नागरी अक्षरों को उर्दू अक्षरों के स्थान में प्रचलित किया है तब से नागरी मज़मून के बराबर अँगरेज़ी-अनुवाद छपता है। सारांश, यद्यपि राजभाषा मरहठी है तथापि गज़ट में आज्ञा-पत्र, प्रसिद्धपत्र इत्यादि सब नागरी और अँगरेज़ी में छापे जाते हैं।

१२—मध्यभारत की बड़ी बड़ी रियासतों में से केवल इन्दौर ने ग्वालियर का अनुकरण करने में उत्साह और साहस दिखाया है। इन्दौर भी ग्वालियर की तरह मरहठा राजधानी है तिस पर भी हिन्दी-प्रचार का काम इन्दौर ने किया है इसके लिये धन्यवाद के लिये वह भी पात्र है। इन्दौर राज में नागरी प्रचार के इतिहास में दीवान राय नानकचंद साहब का नाम अमिट रहेगा।

१३—खेद का विषय है कि महाराष्ट्र-जातीय राजा लोग तो नागरी अक्षरों के प्रचार के काम में योग देकर सुयश लूटें और उन्हीं के बराबरवाले अन्य राजा गण जैसे जयपुर, जोधपुर, उदयपुर, बीकानेर, धौलपुर इत्यादि के राजा महाराजा जिनकी मातृभाषा हिन्दी है, नागरी अक्षर जिनकी वंशानुवंश की लिपि है वे उर्दू अक्षरों को हटाने में हिचकिचावें! इस विषय में सभा की सेवा में मेरी विनीत सूचना है कि वह एक प्रतिनिधि मंडल जिसमें एक महाशय स्थानीय सज्जन हो हरएक दरबार की सेवा में उपस्थित होकर नागरी-प्रचार के पवित्र काम में उनका ध्यान आकर्षित करें। आशा है कि मध्यभारत में नागरी प्रचार का काम जितना आवश्यक है उतनाही सुकर भी होगा।

१४—रही अन्य रियासतें जहाँ हिन्दी को छोड़ अन्य भाषाएँ प्रचलित हैं उनमें भी बड़ौदा अग्रसर है। बड़ौदा की देशभाषा गुजराती है तथापि श्रीमान् बड़ौदा-नरेश का हिन्दी भाषा के विषय में जो अनुराग है वह गत वर्ष में उनकी राजधानी में जो महाराष्ट्र-साहित्य-संमेलन हुआ था उसी के साथ हिन्दी-विचारिणी सभा की भी बैठक हुई थी उसके अधिवेशन में नागरी अक्षरों को भारतवर्ष की एकलिपि बनाने और हिन्दी भाषा के राष्ट्रभाषा बनाने के विषय में गंभीर विचार हुआ था, उससे मालूम हो सकता है। महाराजा बड़ौदा भी महाराष्ट्र जातीय हैं। उनकी मातृभाषा मराठी और देशभाषा गुजराती है तिस पर भी उनका हिन्दीभाषा पर प्रेम होना सराहनीय है।

१५—अब बड़ी रियासतों में हैदराबाद निज़ाम का राज रहा। निज़ाम के राज में मराठी तेलगू का व्यवहार प्रजा के कारण होता है परन्तु दरबार की लिपि उर्दू है। इस कारण राजा और प्रजा दोनों ही को भिन्न भाषा और भिन्न लिपि के कारण कष्ट उठाना पड़ता है। यह त्रुटि अँगरेज़ी भाषा और लिपि ने अंशतः मिटाई है तथापि उसका कदापि सर्वजन की भाषा या लिपि होजाना संभवनीय नहीं। ऐसे ठिकाने में नागरी लिपि और हिन्दीभाषा का प्रचार बहुत उपयोगी होगा।

१६—कई छोटी छोटी रियासतें ऐसी हैं जैसे रायपुर वगैरा जहाँ उर्दू लिपि ही का अधिक प्रचार है, वहाँ प्रजा की सुविधा के लिये नागरी अक्षरों का प्रचार बड़ा लाभकारी होगा।

इसके लिये मेरी अल्प समझ में भारतवर्ष के संपूर्ण दरबारों की सेवा में एक प्रतिनिधिपत्र (रिप्रेसेंटेशन) भेजा जाय और उनको अनुमति और विचार-सभा में भेजने के लिये निवेदन किया जाय तो ठीक होगा। इसका यह लाभ होगा कि स्थानिक विरोध क्योंकर है, दरबारों को नागरी-प्रचार के काम को उठाने में क्या आपत्तियाँ और बाधाएँ हैं उनसे सभा परिचित हो जायगी ताकि प्रतीकार करने के लिये उपक्रम किया जाय।

इस लेख से मालूम हो जायगा कि मराठा रियासतों ने नागरी-प्रचार और हिन्दी-भाषा के लिये अनुकरणीय चेष्टा की है। आशा है कि उत्तरभारत और मध्यभारत के राजा लोग और प्रजागण इस बात की ओर ध्यान देंगे। भारत का भाग्य ऐसा ही

दिखाता है कि अन्य लोग तो उसकी भलाई के
लिये यत्न करें और जिनका असली कर्तव्य है वे पीछे
हटे रहें, ऐसा प्रवाह मध्य और उत्तरभारत के लिये

कहा जाता है। उसे मिटाने का साहस और बुद्धि
ईश्वर समस्त राजा और प्रजागणों को देवे हमारी
यही प्रार्थना है।

—:०:—

नाटक और उन्यास।

[बाबू गोपालराम लिखित।]

उपदेश जगत् का बहुत बड़ा बोझा साहित्य के इन्हीं दो अटूट और अजर पहियों पर रहता है। ये दोनों चक्के ऐसे पक्के और प्रौढ़ हैं कि जबसे जगत् की सृष्टि हुई और उपदेश का जब से उपयोग होने लगा तबसे ये दोनों सदा सब देश के साहित्य में उपदेशवहन का कार्य्य निरन्तर करते आते हैं किन्तु तनिक भी नहीं घिसे, न नाकाम हुए।

मतलब हमारे कहने का यह है कि जब किसी देश के मर्म्मज्ञानी साहित्यसेवी ने देशसुधार का काम अपने माथे उठाया तब उपदेश का काम इन्हीं दो उपन्यास और नाटकों से लिया है।

जो साहित्य का इतना प्रधान और इतना आवश्यकीय अङ्ग है, जिस पर साहित्य-संसार का इतना बड़ा भार है, जिसकी महिमा सब देशों के साहित्य में इतनी ऊँची है, उसकी कुछ गति, विधि जानना और कुछ लेखा हिसाब रखना हिन्दी-साहित्य-स्नेही और साहित्य-सम्मेलन के लिये बहुत ज़रूरी है।

यह हम जानते हैं कि जिस अँगरेज़ी-साहित्य में उपन्यास और नाटकों की बड़ी चहल पहल है और जिसके अगम्य संसार में इनकी ठेलमठेल है उसी अँगरेजी के इन धुरन्धर विद्वानों के सामने इस विषय पर मेरा कुछ कहना सूरज को चिराग़ दिखलाना होगा लेकिन इसी भरोसे से कुछ कहने की इच्छा हुई है कि बड़े लोग कम समझ बालकों की बात पर अनखाते और हँसते नहीं बल्कि उनकी भूल और ढिठाई बिसार कर उनके भाव और उत्साह के विचार से .खुश होकर उनकी बातें सुनते हैं।

जो लोग नई रोशनी की चलती में अपने प्राच्य-साहित्य की ठीक ख़बर नहीं रखते अथवा एकदम घर की सम्पत्ति बिसार कर पश्चिमी सभ्यता की बाढ़ में बह रहे हैं वे कह सकते हैं कि नाटक और उपन्यास विलायती वस्तु हैं। किन्तु उन महाशयों से हम यह नम्रतापूर्वक कहना चाहते हैं कि नाटक और उपन्यास विदेशीय वस्तु नहीं हैं, न हमारे देश में विलायत की नक़ल से चले हैं।

जैसे सब देशों में साहित्य के इन दोनों अंगों की स्थिति और उन्नति है और हुई वैसेही इस देश में भी है, इतनाही नहीं बल्कि यह ज़ोर से कहा जा सकता है कि हमारे देश में नाटक और उपन्यास की उन्नति चर्म्म-सीमा को पहुँच गई थी।

इसके प्रमाण में हम कविवर बाणभट्ट की कादम्बरी नहीं पेश करते, न कविकुलदिवाकर कालिदास की शकुन्तला का नाम लेना चाहते हैं। उत्तररामचरित और मालतीमाधव की बात भी नहीं कहते। कहते हैं साहित्य की वह बात जो आज आप अपने देश भर में, प्रान्त प्रान्त, नगर नगर, गाँव गाँव और घर घर में देख सकते हैं, और जिसका प्रभाव आज भी आँखों के सामने मौजूद है, लेकिन सब लोग उधर ध्यान नहीं देते। और जिनका ध्यान कभी गया भी है तो उसे तुच्छ और अकिञ्चित्कर समझ उन्होंने छोड़ दिया है। यही कारण है कि कुछ लोग आज अपने देश के इस उज्ज्वल और व्याप्त साहित्याङ्ग को अनजाने में विदेशीय माल अथवा विलायती वस्तु कहते और समझते हैं।

दिन भर के काम-काज से निपट कर जब भारतवर्ष के लोग अपनी मँड़इया में विश्राम करते हैं तब जिनको सदा स्वतंत्र भाव से पेट भरना और बृटिश सरकार के राम-राज्य में नित्य अपने बाल-बच्चों सहित दिन बिताने का सौभाग्य है अथवा जिनको पेट के निमित्त पराई सेवा के लिये पराधीन होकर परिवार से दूर रहना और वहाँ के नवपरिचितहित-मित्रों में समय काटना पड़ता है ऐसे दोनों दरजे के आदमी

उस विश्राम के समय जब साथ में दो चार और रहते हैं तब यह बात उठती है कि भाई कोई क़िस्सा कहो। इसी को देहाती कहते हैं अच्छा एक कहानी कहो। होश सम्हाले हुए बालक बालिका माता, पिता, काका, ताऊ से कहती हैं—ए ओ कहनी कह।

बड़े बूढ़े, भाई बहन या पड़ोसी जिनसे यह अनुरोध किया जाता है वह एक राजा या सात राजा अथवा राजा की बेटी या राजा के कुँवर की कहानी कहते हैं। उन कहानियों में करुणा, वीर, शान्त, वियोग, मिलन, रोना, गाना, भयानक, रुद्र सब आते हैं। किस्सा कहनेवाले ऐतिहासिक हुए तो राजा हरिश्चन्द्र की कहानी, गोपीचन्द्र, योगी भरथरी का क़िस्सा; रसिया हुए तो चार यार, छबीली भटियारी का क़िस्सा; कहने वाला मसख़रा हुआ तो वज्रमूर्ख अहीरों का क़िस्सा होने लगा, जिनमें से एकने सुसराल जाने के लिये माता का बतलाया नाक के सामने का सीधा रास्ता तै करते हुए बीच में ताड़ का पेड़ देख कर ऊपर चढ़ जाना और सीधा उतर कर तो आगे बढ़ना ठीक समझा था।

कहीं कहनेवाले पुराण के ज्ञाता हुए तो सीता-वनवास की कथा, वसुदेव देवकी की कथा या ऋषि उद्दालक की दातव्यता कहने लगे। जो जिस ढंग का हुआ वह उसी तरह का ऐतिहासिक वा कल्पित सुना अथवा समझा हुआ क़िस्सा कहने लगता है।

उन कहानियों में कोई बिलकुल सच्चे सत्य-हरिश्चन्द्र, रामलक्ष्मण या क़तल हक़ीक़त राय की तरह, कोई आकाश-पाताल बांधनेवाले आल्हा ऊदल के समान, कोई आसमान में घर बनाने वाले हातिमताई की तरह और कोई वीर परोपकारी नायक विजयमल की तरह गद्य पद्य दोनों में होते हैं।

बालक, बड़े, बूढ़े स्त्री-पुरुष में इन कथा-कहानियों की इतनी रुचि और इतना चलन क्या आप लोगों को नहीं बतलाते कि हमारे देश में पहिले उपन्यासों से उपदेश देने का कितना अधिक प्रचार था?

यह उपन्यासों की बात हुई। अब नाटकों की बात लीजिए। जहाँ दस लड़के कुछ छोटे कुछ बड़े कुछ अबोध, कुछ सुबोध, कुछ कच्ची अक़ल के, कुछ पक्की समझ के जमा हुए कि उन्होंने नाटक खेलना शुरू कर दिया।

आप बालकों की दुनिया में जाइये तो देखियेगा कि कोई दल बाँधकर स्नान का नाटक खेल रहा है। एक चौतरे पर से कुछ बालक पाँव फैला कर स्नान कर रहे हैं, कोई नीचे उतर कर डुबकी लगाता है, कोई धोती उतारकर निचोड़ रहा है। और कोई जलचारी मगर घड़ियाल बनकर उन्हें पकड़ता और घसीटता है। कोई चिल्लाकर भागता, कोई गिरता और धूल-पोंछ कर उठता, कोई मदद करके जलचारी से अपने साथी की रक्षा करता है।

इस झोंका झपटी में जो धक्का और चोट लगती है उसको कुछ परवा न करके लड़के उठते हैं और धोती पहन कर सूखी ज़मीन में जाने का नाट्य करते हैं। इसको लड़के "बुड़ुआ कुड़ुआ का खेल" कहते हैं।

कहीं आप देखोगे कि लड़कों ने बाज़ार बसाया है, दूकानें लगी हैं, तराज़ू से चीज़ें तौली जाती हैं। चीज़ों में देखियेगा कि ठीकरों के बताशे और मिट्टी के लड्डू बने हैं। ठीकरों के पैसे और ठीकरों ही के तिलवे हैं। किसी ने धूल का सत्तू और उसे बारीक़ छानकर मैदा बनाया है। ढेलों के गुड़ और कीचड़ का हलुवा बनाकर ख़रीद बिक्री जारी कर दी गई है।

कहीं ब्राह्मण के बालक सयाने हुए तो देखियेगा उन्होंने महल्ले भर के लड़कों को जमाकर कर्मकाण्ड का स्वाँग रचा है। आप पुरोहित बनकर पैतालिये सङ्कल्प कराते फिरते हैं। पिण्डदान, दक्षिणा आदि देते हुए यजमान उनका आज्ञापालन कर रहे हैं। कहीं रेलवे का नाटक है तो चार छः लड़के गाड़ी बन कर एक दूसरे से हाथ मिलाये चल रहे हैं। सबसे आगे का लड़का एञ्जिन बनकर

मुँह से भभ भभ भभ भभ भक भक बोलता, कभी सीटी देता, कभी ठहरता, कभी सरपट दौड़ाता है। कोई सिगनलमेन, कोई खलासी बना है, कोई घंटा बजाता है। कहीं घुड़दौड़ रची गई है तो वहाँ एक लड़का दूसरे को अङ्गोछे की लगाम लगाकर दौड़ाता और डरबी और सेण्टलेजर की दौड़ करा रहा है। कोई राजा बना न्याय करता है। दारोगा साहब असामी को पकड़ कर मेजिस्ट्रेट के सामने लाते हैं और क़ायदे से गवाह पेश होते हैं। इज़हार होते हैं, फ़ैसला सुनाया जाता है। बेत लगते हैं। यह सब बालकों का साहित्य देख कर क्या नहीं समझा जाता कि आपके लड़के आप की बेख़बरी में कैसा नाटक खेल रहे हैं ?

लड़कों का जो दल भेड़ बकरी बनकर बाघ की लीला करता है उसका नाटक हमने पहाड़ी जगहों में देखा है। रोहतासगढ़ मण्डल आदि जङ्गल-मय स्थानों के लड़के बाघ के शिकार और हङ्कुआ का नाटक किया करते हैं।

कहने का मतलब यह कि नाटक और उपन्यासों का उपयोग हमारे देश में सदा से है और यहाँ सब से अधिक था। और उसी का यह फल है कि आज भी बालक बड़े बूढ़े, स्त्री-पुरुष सब में उसका प्रचार है। जिन उपन्यास और नाटकों का प्रचार साहित्य-जगत् में इतना वाञ्छनीय है, जिनके समान उपदेश के लिये साहित्य में दूसरा आधार ही नहीं समझा जाता उनकी इन दिनों हिन्दी-साहित्य में क्या दशा है ? यही कह कर हम इस प्रबन्ध को समाप्त करेंगे।

पहिले हम नाटक की बात कहते हैं। हिन्दी भाषा को लल्लूलालजी के बाद सुन्दर शृंगार देने और उसे उन्नत करने में जैसे हिन्दी-प्रेमी, हिन्दी पाठक, हिन्दी-ग्रन्थकार, हिन्दी-समाचार-पत्र-सम्पादक और हिन्दी-लेखक गोलोकविहारी भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का आन्तरिक सम्मान के साथ नाम लेते हैं और लेते रहेंगे वैसेही उसमें नाटक साहित्य-कार दुर्दान्त अङ्ग पुष्ट करने के लिये भी भारतेन्दु का नाम साहित्य-जगत् में सदा सुप्रकाशमान् सुवर्णाक्षरों से लिखा रहेगा। भारतेन्दु का यह यश जब तक सातों समुद्र में जल रहेगा, जब तक आकाश में नक्षत्रों की ज्योति दीख पड़ेगी, जब तक सूर्य-चन्द्र का नभ-मण्डल में चक्कर लगता दिखाई देगा तब तक अटल और अनघ होकर विराजमान रहेगा।

यह बात ठीक है कि भारतेन्दु के लिखने से पहिले भी हिन्दी में कुछ नाटक बने थे किन्तु उनकी गिनती अनामिका की पोरों पर ही हो जाती थी।

उपन्यास भी श्रद्धास्पद मान्य भारतेन्दुजी ने लिखे हैं। नाटक और उपन्यास ही नहीं किन्तु इतिहास, काव्यादि सब विषय के ग्रन्थ उन्होंने रचकर हिन्दी-साहित्य की सूखी वाटिका हरी भरी की और उन्हीं के सजाये साहित्योद्यान में आज हम लोग विचरण कर रहे हैं किन्तु कहने का तात्पर्य यह कि साहित्य के और अङ्गों की पुष्टि तो हिन्दी के और सुलेखकों ने भी भारतेन्दुजी से पहिले अथवा पीछे की है, किन्तु नाटक जिसे नाटक कहना चाहिए भारतेन्दुजी के बाद आजतक कोई पच्चीस वर्ष के बने हुओं में पाँच भी नहीं मिलेंगे, कहते हिन्दी-लेखकों का मस्तक नीचा हो जाता है। इस अवसर पर किसी अच्छे बुरे नाटक का नाम लेकर समालोचना करना और अमान्य के इस चढ़ते युग में किसी से वैर बिसाहना हमको पसन्द नहीं है। इस कारण नाटक के विषय में हम इस से आगे कहना उचित नहीं समझते।

उपन्यास का नाम लेते भी डर लगता है। यह काशी है और भारतवर्ष में उपन्यास के लिये इस समय काशी का नाम बहुत ऊँचे गया है। उपदेश के लिये नाटक का जितना ऊँचा दरजा है उपन्यास का उससे सूत भर भी नीचे नहीं है। अन्तर दोनों में इतना ही है कि नाटक में सब कुछ साज सरंजाम तैयार करके ठाठ बाट के साथ दर्शकों के सामने अभिनय दिखा दिया जाता है। इस कारण अच्छे काम करनेवाले पात्र का अच्छा

परिणाम और बुरे कर्मवालों की दुर्गति सब सामने ही देखने का अवसर रहता है। किन्तु उपन्यास में वे सब बातें नहीं होतीं। केवल बातों ही से सब घटनाओं का वर्णन करना होता है। इसी कारण नाटक दृश्य काव्य और उपन्यास श्राव्य काव्य कहलाता है। इस दशा में नाटक स्वभाव ही से कितना रोचक और चित्त पर असर करनेवाला होगा सो कहने की कुछ ज़रूरत नहीं है।

जिस उपन्यास में नाटक के समान कुछ ठाट बाट नहीं, कुछ लक्क दक्क सजावट नहीं, कुछ हाव भाव नहीं केवल बातों से समझाना बतलाना है उसको पाठकों का मन अपनाने के लिये दो ही चीज़ें हैं एक भाषा दूसरी घटना।

भाषा ऐसी चुहुलदार हो कि पढ़ते ही मन फड़क उठे और घटना इतनी मन खींचनेवाली हो कि पढ़नेवाला उसी में तन्मय हो जाय यही लेखक की बहादुरी है। वेदान्त और फिलासफ़ीवाले सज्जन यहाँ तन्मय शब्द व्यवहार के लिए मुआफ़ करें। यहाँ ब्रह्मज्ञान के तन्मय से मतलब नहीं है, न उपन्यास लेखक सबको योगी बनाने का दावा रखते हैं।

उपन्यास-साहित्य का बड़ा मधुर अङ्ग है। जिस ज़माने का उपन्यास है वह उपन्यास उस ज़माने का इतिहास है। उस समय के देश काल और समाज का उपन्यास मानों एलबम होता है। अच्छे और उत्तम उपन्यास जिस ज़माने में बनते हैं उस समय की भीतरी बाहरी गुप्त से गुप्त और प्रगट सब बातें उसमें मौजूद रहती हैं।

अगर हम इस ज़माने का कोई उपन्यास पढ़ने लगें और पढ़ते पढ़ते जहाँ हमारे मन में यह बात आ गई कि ऐसा कैसे हो गया, अथवा ऐसे होते तो कभी नहीं सुना, बस वहीं समझना चाहिए कि उस उपन्यास लेखक की सब मिहनत मिट्टी में मिल गई।

मतलब कहने का यह है कि उपन्यास में वेही बातें लिखी जानी चाहिएं जो उस समय में होती हों जिस समय का उपन्यास है। उपन्यास के पात्रों का बर्ताव, व्यवहार, कार्य्यकर्तव्य, उनका फल, परिणाम सब वैसाही होना चाहिए जैसा उस समय हुआ करता है।

ऐसी कोई घटना अथवा ऐसा कोई काम जो कहीं नहीं होता, जब उपन्यास में आया और पढ़ने वाले के मन में यह बात आई कि अरे! यह तो बिलकुल अनहोनी बात या अघठित घटना है या पाठक ने यह कह दिया—यार यह तो बिलकुल गप्प है वहीं ग्रन्थकार के उपदेश-कार्य्य की नाव डूब गई और समझना चाहिए कि उपन्यास-लेखक ने अपनी सब मिहनत वहीं बोर दी।

यह बात ठीक है कि उपन्यास के पात्र, उपन्यास की घटना और उसके परिणाम सब स्वतंत्र होते हैं। लेकिन इस स्वतंत्रता का यह अर्थ नहीं है कि हम आज इस समय की एक घटना का नाटक बनावें और उसमें शकुन्तला की तरह लिख दें कि जब दुष्यन्त अपनी प्यारी को मुनि दुर्वासा के शापवश भूल गया तब मेनका अप्सरा आकाश से आग का शोला बनकर आई और बिलखती हुई अपनी कन्या शकुन्तला को गोद में उठा ले गई। या सत्यहरिश्चन्द्र की तरह किसी दानवीर आधुनिक राजा का नाटक बनाकर उसके कुँवर की लाश रोहिताश्व के समान मरघट पर पहुँचावें और कफन का टैक्स देने के लिये उसे फाड़ते समय त्रिलोक कँपा देने और त्रिलोकीनाथ को वहाँ बुलाने की बात लिख देवें।

जिस समय की ये बातें हैं उस समय के हो नाटकों में यह सब घटना शोभा पा सकती है। इन दिनों की घटना के जो नाटक, उपन्यास बनाए जाते हैं उनमें अगर उस ज़माने की घटनाओं के समान घटना वर्णन हो तो वर्णन करनेवाला बावला बनेगा और लोग उसकी हँसी करेंगे। तब उसकी मिहनत बेकाम होगी और वह अपना (उपदेश का) काम कुछ नहीं कर सकेगा।

इस कारण स्वतंत्रता उतनी ही है जितनी पच सके। जिससे अजीर्ण होकर यक्ष्मा हुआ और अन्त को शरीर में सङ्कट पहुँचा वह स्वतंत्रता काहे की; वह तो आफ़त का पहाड़ हुआ। तब उपन्यास के पात्र, घटना और परिणाम स्वतंत्र यों होते हैं कि उनसे किसी व्यक्ति विशेष पर सोलहों आने लक्ष न प्रगट हो। इसी कारण नाटक और उपन्यास के पात्र, घटना और उनका परिणाम स्वतंत्र होना चाहिए कि उनका काम (उपदेश) हो जाय और व्यक्तिगत आक्षेप और द्वेष न हो।

जो घटना और घटना का जो परिणाम व्याप्त हो उसको उपन्यास में न लाना अथवा चुन चुन कर लाना और बाक़ी छोड़ देना उपन्यास को अधूरा रखना है। देश काल और पात्र के साथ जितना संबन्ध है वह सब लिखना ही विज्ञ उपन्यास-लेखक का कर्तव्य है। किसी निन्द्य कार्य्य का करनेवाला पात्र उसका संयोगवश उत्तम परिणाम पावे तो उसे उड़ा देना उचित नहीं उसे लिख कर और पात्रों से उसका अपवाद प्रकट करना उचित है। क्योंकि ऐसा परिणाम कहीं कहीं पहिले देखा जाता है लेकिन उपन्यास-लेखक जब ज़माने का इतिहास देखने में जल्दी नहीं करेगा तब देखेगा कि वह उत्तम परिणाम स्थायी नहीं है और गम्भीरता से देखने पर उसका उचित फल अवश्य दीख पड़ेगा।

कुछ लोगों का कहना है कि उपन्यास में नीच स्वभाव के पात्रों का गर्हित कर्म नहीं लाना चाहिए। लेकिन इस तरह छान बीन कर रखने से उपन्यास पूरा नहीं हो सकता। उपन्यास में सब याथातथ्य रखना चाहिए। केवल ध्यान इसी बात का रहना चाहिए कि गर्हित कर्म का दुःखदायी परिणाम ऐसी योग्यता से दिखाया जाय कि पढ़ने वालों के चित्त पर असर करे। लेकिन वह भी इस सुन्दरता से सवारा जाय कि कहीं अति रञ्जित न होने पावे।

ज़माने में जो हो रहा है उसका निन्दित भाग व्याप्त होने पर भी छिपा देना उत्तम होता तो मिस्टर रेनल्ड इङ्गलैण्ड ही से नहीं बल्कि दुनिया भर से निकाल दिए जाते।

कहने का तात्पर्य्य यह है कि जो बातें हो रही हैं वे सब उपन्यास में इस चतुराई से सजानी चाहिएं कि पढ़नेवाले को उसके आदि से अन्त तक सब बयानों पर आस्था उपजती जाय और उनके मन में यह बात बैठी रहे कि उपन्यास-लेखक सब बातें आँखों देखी हुई सत्य सत्य कह रहा है। सब कुछ ऐसा हो भी जिस पर पाठक को कलाम न हो, यही सर्वाङ्ग सुन्दर उपन्यास है।

कलाम दो तरह का होता है एक घटना पर दूसरा भाषा पर। घटना की बात हम कह चुके कि उपन्यास में वही घटना योग्य है जो उस समय होती हो जिस समय का उपन्यास है।

रही भाषा की बात, उसमें इस बात को पहिले समझना चाहिए कि उपन्यास की भाषा के दो भाग होते हैं। एक वह जो उपन्यास लेखक की कही हुई है, दूसरी जो उपन्यास के पात्रों की है। उपन्यास लेखक की भाषा तो उसके अभ्यास और ज्ञान पर निर्भर करती है किन्तु पात्रों की भाषा में उपन्यास-लेखक की चतुराई और ज्ञान दरकार है। जो पात्र जैसा है, उपन्यास में उसकी रहन सहन और शिक्षा जैसी बतलाई गई है उसी के अनुसार भाषा उसके मुँह से शोभा पाती है। एक पढ़ी लिखी शिक्षिता बाला के मुख से लखनऊ की कुँजड़िनों की सी बोली सुनाना, अथवा चौक की भठियारियों से एक पण्डिता के समान शब्दोच्चारण कराना दोनों अयोग्य हैं। एक मज़दूर या ख़िदमतगार से संस्कृत या फ़ारसी अरबी के शब्द कहलाना या एक पण्डित अथवा मौलवी से घुरहू भरहू की ग्रामीण भाषा कहलाना उपन्यास-लेखक की अयोग्यता प्रकट करता है।

तीसरी बात जो उपन्यास में भाषा और घटना से परे होने पर भी अधिक आवश्यक है और जिससे समाज का बड़ा काम हो सकता है वह स्त्री-चरित्र है। स्त्रीचरित्र को हम समझाने के लिये

दो भागों में बाँटेंगे। एक पत्नीत्व भाव, दूसरा मातृत्व भाव। इन दिनों के उपन्यास लेखक अपने उपन्यासों में स्त्री चरित्रके केवल पत्नीत्वभाव से ही लबालब भरे रखते हैं। बंग भाषा के उज्ज्वल रत्न साहित्यमुकुट स्वर्गवासी बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय के उपन्यासों का स्त्रीचरित्र भी पत्नीत्व का भाव से भरा हुआ है। किन्तु जिन हिन्दू-नारी के लिये पति के सिवाय दूसरी गति नहीं, जिन आर्य्य महिलाओं का महत्त्व पति ही से है उनका उज्ज्वल अलङ्कार मातृत्व भाव भी कम महिमा और महत्त्व का नहीं है। उपन्यास में जहाँ स्त्री-चरित्र दिखाया जाय वहाँ आर्य्य नारी के लिये मातृत्व भाव जगत् में उज्ज्वल रत्न है। यह सब उपन्यास-लेखकों को ध्यान रखना चाहिए।

आजकल हिन्दी ही नहीं, बङ्गला भाषा अथवा उर्दू ज़बान में जितने उपन्यास देखे जाते हैं उनमें पत्नीत्व भाव के सिवाय स्त्री-चरित्र का महत्त्वपूर्ण भाग मातृत्वभाव दर्शन को भी नहीं मिलता। इस कारण घटना और भाषा के साथ उपन्यास में स्त्री-चरित्र का रङ्ग भरते समय इन दोनों बातों का ध्यान रखना परमावश्यक है।

लेकिन इन दिनों हिन्दी में उपन्यासों की जो धूम है उसके आगे तो सुविज्ञ हिन्दी-सुलेखकों को पनाह माँगना पड़ता है। यह ख़ुशी की बात है कि हिन्दी-पाठकों में उपन्यास पढ़ने की रुचि बड़ी तेज़ी से बढ़ रही है। भारतेन्दुजी के समय उपन्यास का प्रचार बहुत ही कम था। उन्होंने स्वयं जहाँ कई कोड़ी नाटक लिखे तहाँ दो चार ही उपन्यास लिखे। यह क्या इस बात का कम प्रमाण है कि उस समय हिन्दी-पाठकों की रुचि उपन्यास की ओर नहीं थी। किन्तु इधर पचीस वर्ष से हिन्दी-पाठकों की रुचि उपन्यास की ओर बेतरह बढ़ रहा है और साथही उपन्यास-लेखक भी हिन्दी में बरसाती मेंढ़क की तरह कचबचा कर पैदा हुए हैं।

किन्तु बड़े ही दुःख से कहना पड़ता है कि इन उपन्यास बनानेवालों में अधिक ऐसे हैं जो यह भी नहीं समझते हैं कि उपन्यास किस वास्ते लिखा जाता है। इस कारण उनके परिश्रम की इतिश्री आरम्भ ही में हो जाती है। जो मुसाफ़िरी करने निकल पड़ा है उसको अगर इतनी भी ख़बर नहीं कि उसे कहाँ जाना है? तब वह किस रास्ते जायगा और उसकी यात्रा का क्या परिणाम होगा? यह सब लोग समझ सकते हैं। यही कारण है कि ऐसे अनबूझ उपन्यास-लेखकों की बाढ़ आज हिन्दी-साहित्य के उपन्यास देश में ढठाढाह कर रही है और पाठकों का समय और दाम खोने और उनकी रुचि बिगाड़ने वाले उपन्यासों की भरमार देखी जाती है।

इन दिनों नाम के उपन्यासों में बङ्गभाषा से अनुवाद किये हुए उपन्यासों का ही नम्बर बहुत है। किसी भाषा से अनुवाद करना बुरा नहीं है। न किसी नये या पुराने ग्रन्थ के आश्रय से पुस्तक रचना ही निन्दित है। निन्दा की बात यही है कि किसी पुस्तक का अनुवाद किया जाय या किसी ग्रन्थ से आख्यान लिया जाय और उसका नाम न दिया जाय। यह दोष हमारे हिन्दी-ग्रन्थकारों में बहुत है। यहाँ तक देखा गया है कि जो इस दोष को दिखाते हैं वे भी इससे नहीं बचे। इसी तरह इस लेख के लेखक से भी ऐसी भूल हुई है। यह भी देखा गया है कि जो लोग हिन्दी-समाचार-पत्रों में इसे चोरी और डकैती कह कर औरों को कोसते हैं उन्होंने भी ख़ुद वे काम किये हैं। इतनाही नहीं बल्कि इस काम के लिये बङ्गभाषा के जो लेखक हिन्दी अनुवादकों को कुवचन कहते हैं वे ख़ुद अङ्गरेज़ी, फ़्रेञ्च आदि यूरोपीय भाषाओं से माल लाकर धनी हुए हैं। यहाँ हम बङ्ग-साहित्य के उन धुरन्धर स्वर्गवासी सुलेखकों की उधेड़-बुन नहीं करना चाहते जिनके पेट में बहुत सा भाग परदेशी लूट के जूठन और यूरोपियन उच्छिष्ट से ही भरा है। न हम उन पराई पतरी का जूठा बरा लेकर बड़ाई बघारनेवालों की आलोचना करके प्रसङ्ग बाहर बात कहना चाहते हैं। कहना यह है कि जो दोष है सो दोष ही है वैसे ही दोष का बोझा कपार पर लादे हुए जो आदमी हमारे वैसे दोष दिखलाता है वह हमारा धन्यवादार्ह है। जब हम

में वह दोष है तब जो चाहे उस पर उँगली बतलावे हमको उस दोष से मुक्त होना ही उचित है। ख़ुशी की बात है हिन्दी-लेखकों का यह दोष बहुत कुछ दूर हुआ है। भरोसा है कि समालोचकों की चाबुक लगने से यह कलङ्क जो और भाषाओं में पूरी मात्रा से मौजूद है हमारी हिन्दी से दूर हो जायगा।

दूसरी भाषाओं से अनुवाद कैसा होना चाहिए? अनुवाद के लिये कैसी योग्यता चाहिए? "ओरिजिनल" लिखने से अनुवाद करने में कितनी कठिनता और पराधीनता होती है ये सब बातें आज इस अवसर पर नहीं कहेंगे। उससे प्रबन्ध ही नहीं बढ़ेगा बल्कि प्रसङ्ग से बाहर बात होगी। यदि भगवान् ने इस सम्मेलन के दूसरे अधिवेशन का शुभ दिन दिखाया तो दूसरी भाषाओं से अनुवाद विषय पर वे सब बातें कही जायँगी।

कहना इस समय यह है कि हिन्दी का उपन्यास-साहित्य इन दिनों बङ्गभाषा ही के अनुवादित उपन्यासों से भर रहा है। जैसे स्वनिर्मित उपन्यास लिखने की रुचि उपन्यास-लेखकों में बिलकुल नहीं रही है वैसे और भाषाओं से उपन्यास वा आख्यान लेकर हिन्दी में लाने की रुचि और उपयोग आज हिन्दी-उपन्यास-लेखकों में बहुत ही कम देखे जाते हैं। यहाँ तक कि जो हिन्दी सुलेखक अङ्गरेज़ी के धुरन्धर विद्वान् हैं, जो गुजराती के ज्ञानवान पण्डित हैं, जो उर्दू फ़ारसी के पूरे जानकार हैं, जो स्वयं उपन्यास लिखने की शक्ति सामर्थ्य रखते हैं वे भी बङ्गभाषा सीखकर बङ्गला से ही अनुवाद करने की अधिकरुचि और उत्साह दिखाते हैं। इस तरह एक ही ओर सब की रुचि तब अच्छी होती जब और भाषाओं में रत्न न होते! अथवा सबसे उत्तम पदार्थ केवल उसी भाषा में पाये जाते। किन्तु इस तरह एक ही ओर की झोंक से आज हिन्दी-उपन्यास-साहित्य में कूड़ा-करकट भर रहा है। उपन्यास-लेखकों को उचित है कि जिनको स्वयं संसार का अनुभव है और प्लाट बाँधकर आप उपन्यास लिख सकते हैं वे ओरिजिनल उपन्यास लिखें। जो अङ्गरेज़ी, गुजराती, उर्दू आदि के पण्डित हैं वे उन भाषाओं से रत्न लाकर हिन्दी-साहित्य की शोभा बढ़ावें। यदि बङ्गभाषा ही का उपन्यास अनुवाद करने की बड़ी प्रवृत्ति हो तो वे कम से कम इतना अवश्य देख लें कि कौन उपन्यास हिन्दी में नहीं हुआ, कौन हिन्दी में होने योग्य है, और किसकी हिन्दी में आवश्यकता है। इन बातों के जाने समझे बिना ही आजकल अनेक उपन्यास-लेखक अपनी नासमझी से हिन्दी-सुलेखकों को मर्म्मवेदना पहुँचा रहे हैं।

उपन्यास-साहित्य की आज जो दशा है उसकी बात क्या कहें। यदि भारतेन्दु के चन्द्रप्रभापूर्णप्रकाश, श्रीयुत राधाचरण गोस्वामी महाराज की सौदामिनी, लाला श्रीनिवासदास का परीक्षा-गुरु, बाबू राधाकृष्णदास का निःसहाय हिन्दू, स्वर्गवासी बाबू बालमुकुन्द गुप्त की मडेल भगनी, अभ्युदय कार्य्यालय की शिक्षा-निबन्धावली आदि ऐसे ही चालीस पचास उपन्यास हिन्दी उपन्यासों से निकाल दिये जायँ तो आज जो बाज़ार में उपन्यासों की आप ठेलमठेल देखते हैं वह सब पंसारी की दूकान के लिये टके सेर रद्दी ही के लायक़ रह जायँगी।

उपन्यास में पहिले जानने योग बात, घटना की जवनिका में छिपा रखना और इधर उधर की जो बेसिलसिले और बेजोड़ न हों पहिले कहना और घटना पर घटना का तूमार बाँधकर असल भेद जानने के लिये पाठकों के हृदय में कुतूहल बढ़ाना और रहस्य पर रहस्य साजकर ऐसा उपन्यास गढ़ना कि पूरा पढ़े बिना पूरा स्वाद न मिले लेकिन पढ़ने वालों को ऊब न हो बल्कि जितना पढ़ता जाय उतना ही उस में उलझता जाय ऐसी ही गुम्फनिका से जो ग्रन्थकार उपन्यास रचने में सिद्धहस्त हैं उन्हीं की लेखनी का साहित्य में आदर होता है और उन्हीं का परिश्रम सार्थक समझा जाता है। जिसका उपन्यास पढ़कर पाठक ने समझ लिया

कि सब सोलहों आने सच है उसी की लेखनी सफल-परिश्रम हुई समझना चाहिए।

यहाँ एक बात कहकर हम अपना यह प्रबन्ध पूरा करते हैं। यद्यपि इसमें अपनी बड़ाई है किन्तु बात सच्ची और अप्रिय नहीं है और प्रसङ्गवश उदाहरण के समान उसका बतला देना उचित है। एक बार हमने एक उपन्यास "हम हवालात में" नाम का लिखा था, जो जासूस में छपा और उसको पढ़कर बहुतेरे कृपालु महाशयों ने लिखा कि आप पर तो बड़ा सङ्कट पड़ा था। उपन्यास लिखने के कारण हवालात में जाना पड़ा।

इतनाही नहीं बल्कि आधुनिक कई मासिक और साप्ताहिक पत्रों के एक सुयोग्य सम्पादक, प्रसिद्ध हिन्दी-लेखक ने जो इस समय यहाँ मौजूद हैं उसे पढ़कर चिट्ठी में हमसे पूछा था कि सच बतलाइये आप हवालात में बन्द किये गये थे या नहीं।

कहने का तात्पर्य्य यह कि ऐसे ही जब उपन्यास का आदि से अन्त तक पढ़ने वालों को सच्चा जान पड़े तभी उपन्यास-लेखक को सफल-मनोरथ समझना चाहिए।

हम अपने सब हिन्दी सुलेखक मान्यवर ग्रन्थकारों से नम्रतापूर्वक बिनती करते हैं कि उपन्यास लिखते समय इन बातों पर ध्यान रखने से साहित्य और जगत् का बड़ा उपकार होगा। नाटक उपन्यास की रीति बताने का हमको समय नहीं है। इस कारण अब सभापति और समस्त सज्जनों से यथायोग्य अभिवादन करके प्रबन्ध यहाँ समाप्त करते हैं।

—:0:—

भाषा लिटरेचर की बढ़ती के निमित्त खिष्टियान मिशनों का काम।

[रेवरेंड जी. जे. डन लिखित]

यद्यपि सन् १७९३ ईसवी से पहिले उत्तरी भारतवर्ष में खिष्टियान मण्डली का कुछ काम हुआ था तथापि केरी साहब के आने से, जो उसी बरस में हुआ, भाषा लिटरेचर लिखने का काम आरम्भ हुआ। खिष्टियान मण्डली इसलिये स्थापित हुई कि प्रभु यीशू खिष्ट का प्रचार हो। हमारे मुख्य धर्म्मशास्त्र का नाम इन्जील अर्थात् सुसमाचार है इसीलिये केरी श्रीर उसके साथियों ने उस ग्रन्थ को बँगला में अनुवाद करना अपना प्रथम काम समझ कर १८०२ ईसवी में पहिली बार छपवा कर उसे प्रकाशित किया। उसके अनन्तर हिन्दी, मराठी, उड़िया श्रीर छत्तीस श्रीर भाषाओं में उन्होंने सुसमाचार को प्रकाशित किया। उसी दिन से जैसे जैसे भाषाओं में मिशनरियों की निपुणता बढ़ती चली जाती है वैसे वैसे प्रत्येक भाषा की बैबलवाला अनुवाद सोधा चला आता है। धर्म्मविषयक अनेक पुस्तकें छोटी बड़ी लिखी गई हैं श्रीर प्रति वर्ष कितनेक लाख बिकती हैं।

सच पूछिये तो जिस भाषा में कुछ भी लिखा गया उसी में अवश्य सुसमाचार का अनुवाद हुआ श्रीर कितनी ऐसी भाषाएं हैं जिनमें सुसमाचार को छोड़ कर श्रीर कोई पुस्तक पाना अनहोनी बात सी है। सब भाषाओं में मिशनरियों के काम का वर्णन यदि लिखूँ तो महाभारत के तुल्य ग्रन्थ रचना करनी पड़ेगी पर ऐसी कहानी के श्रोतागण कहाँ।

इसलिये मैं एक ही भाषा पर जो मेरी समझ में मुख्य है इस समय कुछ लिखूँगा। श्रीर वह हिन्दी भाषा है।

पद्यभाग

जौन चैम्बरलेन एक अङ्गरेज़ था जो बङ्गाली, हिन्दी, उर्दू इत्यादि में शीघ्र निपुण हो गया। उसने अनेक ऐसे भजन लिखे थे जो अब तक बड़े चाव से गाये जाते हैं। इसके उदाहरण के लिये मैं एक भजन लिखता हूँ।

भजन

हे मेरे प्रभु, मो पापी उद्धारियो।
छोड़ो न कभु, न मोहे बिडारियो ॥१॥
हे प्रभु मैं पापी, यह निश्चय आप जानियो।
हाय कैसो संतापी, मो दुखी आप पहचानियो २
हे कृपानिकेतु, मो पापी पै लखियो।
श्रीर तारण के हेतु, मोहे चरण पै रखियो ॥३॥
मैं अति अशुद्ध, अशुद्ध कु शुद्ध करियो।
मैं अति निर्बुद्धि, निर्बुद्धि कु बुद्धि भरियो ॥४॥
मैं अधम अयोग्य, तो आप यह न मानियो।
पै आप पापी लोग, नित अपनी श्रोर तानियो॥५॥
जब होयगो मरण, तब प्रभु शान्त करियो।
श्रीर जब लौ है जीवन, मोहे प्रेम करके भरियो ६

शुजाअत अली एक लखनऊ के अमीर पुरुष थे। वे लखनऊ से कलकत्ते में जाकर मसीही हो गये उन्होंने उर्दू श्रीर हिन्दी में बहुत ही ऐसे भजनों श्रीर ग़ज़लों को लिखा जो दिलगुदाज़ श्रीर मनोरञ्जक पाये जाते हैं। सच पूछिए तो हिन्दी भजनों में शुजाअत अली के पद रचने पर बहुत नुक्ताचीनी हुई पर यह भी सच है कि "क्यों मन भूला है यह संसारा, मन मत दे टुक कर ले गुजारा" आदि भजन गाते समय शुजाअत अली अभी तक लोगों की आँखों में आँसू श्रीर मनों में हर्ष उत्पन्न करते हैं।

देहली के टामसन साहब ने खीष्टचरितामृत नाम की पुस्तक लिखी है। उस प्रान्त में मुझे ऐसे लोग मिले हैं, जिन्होंने यह पुस्तक कण्ठ की है। पर थोड़े दिन हुए कि पण्डित नन्दकिशोर ने प्रभु ईशु की मङ्गल कथा ब्रजभाषा में लिखी है श्रीर बहुत लोग उसको चाहते हैं।

मुङ्गेर में कितने भजन लिखे गये। नैनसुख और सुदीन और जौन पारसन्स (आश्रित) के भजन अब तक गाये जाते हैं। पर मुङ्गेरवालों में जौन क्रिश्चन अर्थात् (जान अधम) जो प्रायः जाम साहब के नाम से सब को स्मरण आते हैं सबसे बड़े थे। मुक्तिमुक्तावली, सत्यशतक, गीतसंग्रह आदि पुस्तकों में उनके मनोहर भजन पाये जाते हैं उनमें से एक को लिखता हूँ।

भजन

कौन करे मोहि पार तुम बिनु

दीनदयाल दयामय स्वामी, दुःख सुख पालन हार।
१ नर अपराधी कैसे तरिहैं, दारुण भव नदधार॥१॥
माया जलनिधि केवट कामा, इच्छा धरे पतियार।
तृष्णा तरङ्ग पवन उठावत, कपट पाल हङ्कार॥२॥
मोह जलधर गर्जन लागे, छाय लियो करुआर।
कामिनी दामिनी ऐसी चमकत, झहरत नयन निहार॥
आशा लङ्गर तोहिं पर बाँधो, तुम्हीं मम कनिहार।
जान अधमभव अरणव बूड़त, कोऊ न आवत कार।४

डाक्टर ग्रियर्सन साहब ने लिखा है कि जान साहब के भजन सारे बिहार में गाये जाते हैं, न केवल खिष्टियानों में वरन साधू और गानेवालों में भी उनकी मधुरता के कारण उनका प्रचार है। मुङ्गेर में अब तक प्रेमचन्द और फ़तहगढ़ में हरप्रसाद और इटावे में जौनसन साहब जीते हैं। भजन और काव्य लिखते हैं। जौनसन साहब के सुलेमान के दृष्टान्त प्रेम दोहावली और दाऊदमाला चारों ओर फैले हुए पाये जाते हैं।

गद्य भाग में अधिक लिखा गया है। वेदतत्त्व प्रोफ़ेसर बिलसन साहेब के ऋगवेद संहिता के अँग्रेजी अनुवाद की भूमिका का अनुवाद है। नहमियाह गोरे ने (जो पहिले नीलकंठ गोरे कहलाते थे) छः दर्शन के विषय में षड्दर्शन दर्पण नाम जगद्विख्यात पुस्तक लिखी है।

संस्कृत विद्याभूषण डाक्टर जौन मूर की मत परीक्षा हिन्दी में बडन साहब ने उदथा की। धर्म्म संबन्धी वाद विवाद के अनेक और ग्रंथ सब जानते हैं पर इस सभा के सम्मुख हेवेलेट साहब के खीष्टानुकरण ऐसी भक्तिजनक पुस्तक का नाम सुनाना उचित है। यह एक प्रसिद्ध लातीनी भक्त की पुस्तक का अनुवाद है। जौन पारसंस का यात्रा स्वप्नोदय जो बनियन साहेब के जगन्मोहन पिलग्रिम्स प्रोग्रेस का अनुवाद है, हिन्दी गद्य का एक नमूना गिना गया है। इसी भाग में ऐसे लेख गिनने चाहिए जैसे हूपर, जौनसन, ग्रीवस, डैन, इत्यादि के लिखे हुए बैबल के अनेक भागों की टीका हैं।

धर्म्मविषयक पुस्तकों को छोड़ कर कितने महान् लोगों के जीवनचरित्र हिन्दी में लिखे गये हैं। महारानी विक्टोरिया, महाराजाधिराज एडवर्ड सातवें, सिकन्दर महान, चीनदेशनिवासी, शो नाम पादरी, डफ़, जडसन, केरी, इत्यादि इनमें से हैं।

इतिहास के विषय में पूर्वकाल के रोमियों का वृत्तान्त और युनानियों का, संसार का प्राचीन संक्षेप इतिहास और जौन पारसंस का, खिष्टियान मण्डली के वृत्तान्त को छोड़ कर और अनेक हैं।

भूगोल विद्या कितने प्रकारों से पढ़ाई जाता है। जो जापान, चीन, मिश्र, बरमा, राजपुताने, लंका, कश्मीर, पलास्टीन, इत्यादि के वर्णन के ग्रंथ लिखे गए हैं वे मनभावने और सचित्र हैं। हमलोग अपना मन उन बातों में लगाते हैं जो भारतवर्ष के निवासियों के स्वास्थ्य, आरोग्यता और विश्राम से सम्बन्ध रखती हैं। इसी कारण इटावे के डाक्टर जौनसन साहेब जिनकी जन्मभूमि अमेरिका है अनेक विद्या-संबंधी अँगरेज़ी पुस्तकों के अनुवादक हुए हैं। जैसे तपरोग, हैज़े का वृत्तान्त, भलेचंगे रहने के उपाय, बालकों की आरोग्यता, बालोत्पन्न शिक्षा, निर्मलता की आवश्यकता, निर्मल जल इत्यादि।

लोगों की चाल सुधारने के उपदेश के लिये गाली देने का निषेध, विवाह और श्राद्ध का ख़र्च, आभूषण का लोभ, विधवा उपाय, और विशेष करके

मादक द्रव्यों के निषेध के लिये पियक्कड़ दर्पण, नशादमन, इससे क्या लाभ होगा? और निषेध वा चिकित्सा? लिख कर प्रकाशित किये गये हैं। मेरे रहने का घर, इसमें मनुष्य के शरीर की विद्या का सरल वर्णन है। कीट पतंगों का वृत्तान्त एक मनोहर अँगरेज़ी पुस्तक का अनुवाद है। कितनी ही कहानियों के भी अनुवाद हुए और कितने हिन्दी ही में लिख कर तैयार हुए हैं। फुलमणी और करुणा श्रेष्ठ आदर, अपनी बेड़ियों का तोड़ना, विश्वासविजय, मुमुक्षु-वृत्तान्त, रामपालसिंह की कथा इन में से कुछ हैं।

शिक्षा की पुस्तकें अनेक लिखी गई हैं। क्रिश्चन लिटरेचर सोसाइटी की ओर से लाखों रीडर और बंगाल शिक्षा-भाग की प्रेरणा से डैन साहेब के कितने रीडर, साइंस रीडर, इत्यादि अब प्रकाशित किए गए हैं।

अन्त में इस ग्रन्थ और ग्रन्थकर्त्ताओं का जंगलरूपी सूचीपत्र का वर्णन समाप्त कर और एक दूसरे भाग के विषय में कुछ कह कर इस लेख को समाप्त करूँगा। हिन्दीव्याकरण विद्यासागर ज्ञान समुद्ररूपी पुरुषों के योग्य विद्या है और मैं समझता हूँ कि इसमें हम लोगों ने अपने भारतनिवासी भाइयों की सेवा करने में बहुत यत्न किया है। आदम और टौमसन और येट साहबों के डिक्शनरियों को बुरा भला कहना कठिन नहीं, कदापि हम सभों ने किया हो। परन्तु इन्हीं लोगों ने मार्ग खोला है। भला होगा कि यह सभा उसको पूर्ण करे। आदम और बडन ने छोटे व्याकरणों को लिखा तो है पर पथरिंगटन का भाषाभास्कर किसने नहीं देखा। पर इन पर्वतों में मानो हिमालय पर्वत के लोग साहब का व्याकरण आकाश से बातें करता है और हम छोटे छोटे ढेररूपी ग्रीवस और डैन उन्हीं के ऊपर के गगन मण्डल से बूँद बूँद बटोर कर विद्या की सरिता चलाने के लिये यत्न कर रहे हैं। परमेश्वर दीनदयाल ऐसा करे कि भाषा के हितार्थी परस्पर सहायता करके इस बात पर सम्मत हो जाँय कि प्रत्येक नगर और प्रत्येक गाँव का निवासी ऐसी मनोहर और मधुर भाषा बाँचने और बोलने लगे कि भारतवर्ष उनके कलोल से यहाँ तक गूँज जाय कि सारे जगत् के लोग सुन कर विस्मित और मोहित हों।

—:0:—

नागरी-प्रचार देश-उन्नति का द्वार है।

[बाबू गोपाललाल खत्री लिखित ।]

इसमें कोई सन्देह नहीं कि आज का यह सम्मेलन होनहार मङ्गल की शुभ सूचना है। केवल हिन्दी ही क्यों, हिन्दू जाति की भी बहुत कुछ भलाई इस स्मरणीय सम्मेलन की सफलता पर निर्भर है! भिन्न भाषाभाषी महाराष्ट्र, गुजराती, बङ्गाली आदि हमारे देशभाई निज निज भाषा की उन्नति के लिये इस सदुपाय से बहुत कुछ सफलता प्राप्त कर चुके हैं। मराठी, गुजराती, बँगला आदि भाषाओं की वर्तमान अवस्था ही इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है। अतएव इस सदुपाय के पथ-प्रदर्शक अथवा यों कहो कि इस सत्कार्य में प्रवृत्त करनेवाले भिन्न भाषाभाषी सज्जन अवश्य ही हम हिन्दी-सेवकों के हार्दिक धन्यवाद के पात्र हैं।

प्यारे सज्जनो, यद्यपि मैं हिन्दी का कोई कवि, लेखक या चतुर वाग्मी नहीं हूँ तथापि यह कहने में मुझे कुछ भी सङ्कोच नहीं है कि मैं हिन्दी-भाषा और नागरी लिपि से प्रेम रखता हूँ। अपने को हिन्दी का अकिञ्चन भक्त या लघु किङ्कर समझ कर कृतार्थ मानता हूँ। मैं हिन्दुस्तान में रहनेवाला हिन्दू हूँ, हिन्दी मेरी मातृभाषा है और इसी नाते से मुझे अपनी भाषा और अपनी लिपि पर अटल प्रेम है। मैं अपने अहोभाग्य समझता हूँ कि ईश्वर की कृपा से हिन्दी, हिंदू, हिन्दुस्तान से मेरा सम्बन्ध है। मेरी समझ में पूर्व-पुण्य-प्रताप से जो जो भाग्यशाली सज्जन सर्वदा हिन्दी, हिंदू, हिन्दुस्तान को अपनी इष्टसिद्धि का मूलमंत्र मान कर कर्तव्य-पथ में अग्रसर हो रहे हैं वे धन्य हैं! उनका जन्म सार्थक है! उनका जीवन अमूल्य है!

यद्यपि मैं जानता हूँ कि इस पण्डितमण्डली के समक्ष मुझ सरीखे अगण्य पुरुष का किसी विषय में कुछ कहने का साहस करना सर्वथा बालस्वभाव सुलभ धृष्टतामात्र है तथापि हृदय की उमंग से विवश होकर अपने विचारों को प्रकट करता हूँ। अपने विचार प्रकट करने के और भी दो प्रबल कारण हैं। एक तो यह कि इस सम्मेलन का उद्देश्य ही यह है कि सब लोग हिन्दी व नागरी के विषय में अपने अपने विचारों को प्रकट करें। दूसरा कारण यह है कि मुझ सरीखे क्षुद्र व्यक्ति के विचारों में भी कदाचित् कोई विचार काम का हो। कभी कभी बालकों के भी कोई कोई विचार उपादेय निकल आते हैं और बूढ़ों के भी कोई कोई विचार वास्तव में असार होते हैं। इसी अनुभव पर किसी कवि ने कहा है—

युक्तियुक्तमुपादेयं वचनं बालकादपि ।
अन्यत्तृणमिव त्याज्यमप्युक्तं पद्मयोनिना ॥

अर्थात् यदि बालक की भी उक्ति युक्तियुक्त हो तो उसे ग्रहण करना चाहिए और यदि साक्षात् ब्रह्मा का भी वचन युक्तियुक्त न हो—असार हो—तो उसे तृण सा तुच्छ जानकर त्यागना चाहिए।

महाशयो, नागरी लिपि कैसी सरल, शुद्ध और सुबोध है और हिन्दी भाषा कैसी मधुर और मनोहर है इस विषय में अधिक कहने की आवश्यकता नहीं है। इस विषय पर अनेक अनुभवी लेखक लोग अपनी लेखनी से ललित लेख लिख चुके हैं और अनेक वक्तागण प्रभावशाली सारगर्भित व्याख्यान दे चुके हैं। नागरी लिपि की उत्तमता का एक उत्तम उदाहरण यही है कि हमारे महाराष्ट्रदेशनिवासी भाइयों ने अपनी भाषा को नागरी लिपि से अलङ्कृत किया है—वे नागरी लिपि को "बालबोध" लिपि कहते हैं। इसके अतिरिक्त यह निश्चित—निर्विवाद सिद्धान्त हो चुका है कि भारत की राष्ट्रभाषा होने का गौरव हिन्दी भाषा को ही प्राप्त होगा और उसके लिये नागरी लिपि ही राष्ट्रलिपि होगी। इस सिद्धान्त का सूत्रपात भी कलकत्ते के "एकलिपि-

विस्तार-परिषद्" ने "देवनागर" पत्र निकाल कर किया है। भिन्नभाषाभाषी भावुक सज्जनों ने, उदार-हृदय अनुसन्धानशील विदेशी विधर्मी विद्वानों ने तथा हिन्दी बोलनेवाले स्वदेशनिवासी भाइयों ने जो समय समय पर हिन्दी भाषा और नागरी लिपि के गुणों का गान किया है उसकी अवतारणा करने के लिये बहुत समय की आवश्यकता है। हमारी नागरी लिपि सर्वाङ्गपूर्ण है—हमारी हिन्दीभाषा अपनी जननी या जननी की जननी देववाणी संस्कृत के सम्बन्ध से सनाथ होकर सर्वाङ्गसुन्दर है। आप नागरी लिपि में संसार की चाहे जिस भाषा के कठिन से कठिन शब्दों को ठीक वैसेही लिख सकते हैं जैसे उनका उच्चारण किया जाता है। अन्य किसी भी लिपि को यह सौभाग्य प्राप्त नहीं है।

बहुत लोग कहते हैं कि नागरी लिपि देर में लिखी जाती है, अन्य लिपियाँ इसकी अपेक्षा बहुत शीघ्र लिखी जाती हैं। ऐसा कहनेवालों से हमारा यही निवेदन है कि लिखनेवाले के अभ्यास के अनुसार हर एक लिपि शीघ्र लिखी जा सकती है। लोग अन्यान्य लिपियों को सर्वदा लिखा करते हैं, इसलिये उनके हाथ उन्हीं लिपियों के लिखने में अभ्यस्त हैं। इसी से वे नागरी की अपेक्षा अन्य लिपियों को शीघ्र लिख लेते हैं। ऐसे लोग बहुत कम मिलेंगे जो नागरी लिपि में ही सब काम-काज करते हों। नागरी लिखने का अभ्यास न होने के कारण ही हम आप उसे शीघ्र नहीं लिख सकते। हमने अपनी आँखों से ऐसे कई आदमियों को देखा है जो अँगरेज़ी और उर्दू के समान समय में ही नागरी लिख लेते हैं। पूछने से विदित हुआ कि उनको नागरी लिखने का अच्छा अभ्यास है, वे सब समय नागरी लिपि को ही काम में लाते हैं। इसके सिवाय यदि यह भी मान लिया जाय कि नागरी लिपि में इतनी त्रुटि है तो यह त्रुटि नागरी के निराले गुणों के आगे अत्यन्त तुच्छ है। नागरी का यह ख़ास गुण है कि जो लिखिये वही पढ़िये। अन्य भाषाओं के समान यह नहीं है कि आपही २ अकतूबर लिखकर उसे १२ कबूतर पढ़िये। नागरी लिपि में एक बच्चा भी जो लिखेगा उसे सब लोग सुगमता से सही सही पढ़ लेंगे।

हिन्दुस्तान की भाषा हिन्दी है और उसका हृदय रूप या उसकी लिपि सर्वगुणागरी नागरी ही है। हमारा देश बहुत दिनों से विदेशी शासकों के हाथ में है। विदेशी जातियों के संसर्ग से केवल भाषा ही क्यों, हमारे भाव, भोजन, वेश और मत में भी पूर्ण परिवर्तन नहीं तो गड़बड़ अवश्य हो गई है। यदि आप ध्यान दे कर देखेंगे तो हिन्दुस्तान के निवासी हिन्दू ही अधिक मिलेंगे, जिनकी मुख्य भाषा हिन्दी ही या हिन्दी का कोई रूपान्तर है। चाहे वे किसी समय में विवश हो हिन्दू से मुसलमान हो गये हों अथवा अकाल से बिहाल हो कराल काल के गाल में जाने से बचने के लिये या किसी अन्य अनिवार्य कारण से ईसाई बन गये हों; परन्तु निस्सन्देह वे पहिले हिन्दू ही थे। इसी से अब भी किसी न किसी रूप में उनकी भाषा हिन्दी ही है। भारत के किसी प्रान्त का रहनेवाला हो, चाहे बंगाली हो, चाहे महाराष्ट्र हो, चाहे गुजराती हो—सब टूटी फूटी हिन्दी बोल लेते हैं और समझ भी लेते हैं। इसी से विज्ञजनों की सम्मति है कि देश में हिन्दीभाषाभाषी जन अधिक हैं, इस कारण यहाँ की राष्ट्रभाषा हिन्दी ही हो सकती है, साथ ही राष्ट्र-लिपि होने का सम्मान नागरी ही पा सकती है।

हमारे देश-भाइयों में अशिक्षित अपढ़ लोगों की संख्या अधिक है। इस देश की इस अवनति का प्रधान कारण यही है। अवनति के मूल में अविद्या का अस्तित्व स्वभाव-सिद्ध है। इस देश की भाषा हिन्दी है। यदि देशवासियों को हिन्दी भाषा में शिक्षा दी जाय तो इसमें कोई सन्देह नहीं कि अपरिचित विदेशी भाषाओं की अपेक्षा अपनी हिन्दी भाषा को वे बहुत शीघ्र सीख सकते हैं। हमने बहुत से ऐसे आदमी देखे हैं जो कई वर्षों तक विदेशी भाषाओं के सीखने में श्रम कर फिर भी कुछ लाभ नहीं उठा सके, मुश्किल से अपने हस्ताक्षर भर कर

लेते हैं। यह उनकी मोटी बुद्धि का भी दोष कहा जा सकता है। किन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि यदि वे अपनी भाषा में इतना श्रम करते तो कभी यों विफल-मनोरथ न होते। इस समय अवस्थानुसार अवश्य ही उनकी गणना शिक्षितों में होती और वे अपना सब मतलब भली भाँति हल कर लेते। इसके अतिरिक्त हमारा देश इस समय धनहीन है, और विदेशी भाषा सीखने में अधिक समय लगाने की आवश्यकता है। हिन्दी भाषा सीखने में उतने समय और व्यय की आवश्यकता नहीं है। नागरी लिपि का प्रचार भी हिन्दी-भाषा के प्रचार से कम आवश्यक नहीं है। हमारे धर्मशास्त्र, स्तोत्र, मन्त्र आदि सब इसी लिपि में हैं। नागरी प्रचार से धर्म की भी उन्नति हो सकती है। नागरी बहुत सरल और सुन्दर लिपि है। बहुत शीघ्र—एक दो दिन में ही अध्यवसायनिष्ठ पुरुष साधारण रूप से इसको सीख सकता है। प्यारे सज्जनो, नागरी और हिन्दी का चोली दामन का साथ है—एक ढाँचा है तो दूसरी जान है। उन्नति के रथ के ये दोनों पहिये हैं। इसी लिये जाति की—समाज की—धर्म की और देश की उन्नति के लिये नागरी लिपि और हिन्दी भाषा का प्रचार परम अपेक्षित है।

पहिले कहा जा चुका है कि अविद्या के बढ़ने से ही—ज्ञान के न होने से ही—अपढ़ अशिक्षितों की अधिकता से ही देश की दुर्गति होती है—अवनति होती है। यह भी प्रकारान्तर से कह दिया गया है कि मातृभाषा या देशभाषा के प्रचार और उन्नति से शीघ्र शिक्षा का विस्तार और अशिक्षितों का उद्धार हुआ करता है। विदेशी भाषा की अपेक्षा देशी भाषा की सहायता से सहज में ही विद्या (शिक्षा) का विस्तार हुआ करता है। आज बंगाली या महाराष्ट्रों में अधिक विद्वान् और लेखक क्यों देख पड़ते हैं? इसका अन्यतम कारण अँगरेज़ी शिक्षा भले ही हो, किन्तु मुख्य कारण यही है कि बँगला, मराठी आदि भाषाओं के सच्चे सेवकगण अन्य भाषाओं में लिखी हुई पुस्तकों का अपनी भाषा में अनुवाद कर तथा अन्य देशीय विद्वानों के विशद विचारों को अपनी भाषा में प्रगट कर अपनी अपनी भाषा के साहित्यभाण्डार को भर रहे हैं। औरों को जाने दीजिये, हमारे बंगाली भाइयों ने ही पृथ्वी की अन्य भाषाओं के उपयोगी साहित्य से अपनी भाषा को भूषित कर ऐसी सुगमता कर दी है कि साधारण समझ के सर्वसाधारण जन सहज में ही—बिना कोई दूसरी भाषा सीखे भिन्न भाषाभाषी विद्वानों के विचारों से लाभ उठाते हैं और अपने ज्ञान को बढ़ाते हैं।

बहुत लोगों में यह भ्रान्त धारणा है कि केवल नौकरी, क्लर्की आदि के लिये ही विद्या की आवश्यकता है। किन्तु वास्तव में जो पढ़ा लिखा नहीं है—जो शिक्षित नहीं है वह किसी भी काम को भली भाँति नहीं कर सकता। क्या कारीगर, क्या सौदागर, क्या नौकरीपेशा और क्या किसान और मज़दूर—सबको ही पढ़ने लिखने की आवश्यकता है। इनको अपनी भाषा की शिक्षा ही सहज में—स्वल्प समय में दी जा सकती है। यह कहने से मेरा यह अभिप्राय कदापि नहीं है कि विदेशी भाषाएँ पढ़ी न जाँय। मेरा मतलब यह है कि जो समर्थ और प्रतिभाशाली सम्पन्न पुरुष हैं वे पहिले अपनी भाषा और लिपि को अवश्य सीख लें, फिर भले ही पारदर्शिता प्राप्त करें तथा यथाशक्ति विदेशी विभिन्न भाषाओं के साहित्य से अपनी भाषा को लाभ पहुँचाना अपना कर्तव्य समझें। किन्तु क्या धनी और क्या दरिद्र—सबको पहिले अपनी भाषा और अपनी लिपि की शिक्षा मिलनी चाहिए। इससे एक उपकार यह भी होगा कि पहिले अपनी भाषा सीख कर हम लोग फिर विदेशी भाषाओं को सहज में ही सीख सकेंगे। आरंभिक शिक्षा अपनी भाषा में मिलने से आगे अन्य भाषाएँ सीखने में बड़ी सहायता मिलती है। संसार में कोई भी ऐसा देश न होगा जहाँ के रहनेवाले अपने देश की भाषा और लिपि को न जानते हों। यह बात हमारे ही यहाँ देखियेगा कि यहाँ के अधिकांश लोग चाहे अन्यान्य

भाषाओं के धुरन्धर पण्डित हों किन्तु हिन्दुस्तान में रहनेवाले हिन्दू होकर भी हिन्दी-साहित्य से एकदम अपरिचित हैं। हिन्दी समझने पर भी नागरी लिपि पढ़लेने पर भी बेहूदी हिन्दी कह कर हिन्दी की उपेक्षा करने वाले महाशयों का इस देश में अभाव नहीं है। अन्य भाषाओं में थोड़ी सी योग्यता होने पर ही हिन्दी में साधारण बात चीत करने को भी पाप समझने वाले समझदार भी कम नहीं हैं। हा! कैसे शोक और लज्जा की बात है कि इस देश के बड़े बड़े कुलीन हिन्दू—देहाती नहीं, नागरिक, अपनी भाषा को, अपनी लिपि को जानतेही नहीं और न जानने की चेष्टा ही करते हैं। हम मानते हैं कि वे विदेशी भाषाओं के पूर्ण पंडित हैं। परन्तु इससे वे चाहे विदेशी भाषा और लिपि की सहायता से सपरिवार अपने पेट का पालन भलेही करलें, परन्तु अपने घर के रत्नों से आजन्म अनभिज्ञही रहेंगे। उनको अपने धर्म का, अपनी नीति का, अपने पूर्व पुरुषों के अमूल्य विचारों का कुछ भी ज्ञान नहीं हो सकता। केवल इतना ही नहीं, पहिले अपनी लिपि व अपनी भाषा न सीख कर अन्य विदेशी भाषाओं की शिक्षा में मगन होने वाले पुरुष देश की बड़ी भारी हानि करते हैं। वे अपनी सभ्यता न जानने से विदेशी सभ्यता की चमक दमक में चौंधिया कर लक्ष्यभ्रष्ट हो जाते हैं। अपनी समाजनीति न जानने के कारण विदेशी लोगों के विभिन्न विचारों से सहमत होकर--या उनके आगे परास्त होकर समाजसुधार के नाम से समाजसंहार करने पर उतारू होते हैं। अपने धर्म का सच्चा रूप न जान सकने के कारण विदेशियों की दृष्टि से अपने धर्म को देखते हैं और उनके ही चेला बन कर धर्म के मूल में कुठाराघात करते हैं, आचार विचार का संहार करते हैं और कोई कोई अपना धर्म छोड़ कर अपनेही धर्म्म की निन्दा करते हुए अन्य पंथों का प्रचार करते हैं—अपने सरीखे स्वभाषानभिज्ञ भोले भाले भाइयों को भुला कर अपना दल बढ़ाते हैं। हम इन सब हानियों के विचार का भार उन्हीं ज्ञानियों या पांडित्याभिमानियों पर छोड़ते हैं जो कर्तव्यबुद्धि से हिन्दी और नागरी प्रचार के सूत्र से अपना संबन्ध जोड़ते हैं या "स्टुपिड हिन्दी" कहकर हिन्दी नागरी की सेवा से मुख मोड़ते हैं। आशा है, दोनों श्रेणियों के सज्जन इस विषय पर ध्यान देकर विचार करेंगे।

साथही एक बात और कहूँगा। हो सकता है कि वह बात "छोटे मुँह बड़ी बात" हो, किन्तु मेरी समझ में बात बड़े काम की है। हमारे देश के माननीय मुखिये देश की उन्नति के लिये बहुत वर्षों से उद्योग कर रहे हैं और इसी उद्देश्य से कांग्रेस की जातीय महासमिति की स्थापना की गई है। यदि कांग्रेस के साथ साथ नागरी-हिन्दी के प्रचार का कुछ भी प्रयत्न किया जाता तो आज बहुत कुछ सफलता हो गई होती। आज दिन लाखों साधारण जन—किसान, व्यापारी, सौदागर और नौकरी चाकरी करने वाले निम्न कोटि के लोग आपके समान कांग्रेस के महत्त्व को समझ गए होते और वे केवल ज़बानी जमा ख़र्च ही नहीं वरन् कार्यतः आपकी सहायता करते—आप के उस उत्तम कार्य से सहानुभूति दिखाते और इस प्रकार आपका मत यथार्थ लोकमत माना जाता। आप के अमूल्य विचारों का, आपके उदार प्रस्तावों का प्रजा पर पूर्ण प्रभाव पड़ता। कांग्रेस के मंडप में बैठ कर प्रस्ताव पास कर केवल तालियां पीट देने से क्या फल हुआ। कांग्रेस के महत्त्व को, अपने स्वत्व को, विद्या के विशेषत्व को केवल आपही तो समझ सके सर्वसाधारण को उससे रत्ती भर भी लाभ नहीं हुआ। देहाती किसान, श्रमजीवी साधारण लोग—जिनकी संख्या आपसे कहीं अधिक है, आपकी चेष्टा के महत्त्व का कुछ भी तत्त्व नहीं समझ सके। वे नहीं जानते कि आपके उस धूमधामी मण्डप में क्या हो रहा है। शायद वे यही अनुमान करते होंगे कि किसी राजा के यहाँ कुछ काम काज है, ये लोग बरात में आये होंगे। यही कारण है कि इतने दिनों से निरन्तर उद्योग होने पर भी कांग्रेस को यथेष्ट सफलता नहीं प्राप्त हुई।

हम यह मानते हैं कि सब देशों में राजभाषा का महत्त्व अधिक है। तदनुसार यहाँ भी राजभाषा का महत्त्व होना ही चाहिए, क्योंकि बिना उसके सीखे काम ही नहीं चल सकता। यह भी सच है कि यहाँ समष्टि रूप से भिन्न-भाषा-भाषी राजा का राज्य है—इसलिये हमको विदेशी भाषा सीखने की आवश्यकता है। किन्तु व्यष्टिरूप से हमारे देश के अधिकांश देशी नरेशों की मातृभाषा प्रायः हिन्दी ही है। इसलिये देशीनरेशों को अपने अपने राज्य में भूतपूर्व राजभाषा उर्दू का स्थान हिन्दी-भाषा और नागरी लिपि को देना चाहिए। हम अपनी विज्ञ सर्कार को इस बात के लिये हार्दिक धन्यवाद देते हैं कि उसने अदालतों में नागरी प्रचार की भी आज्ञा दे दी है। परन्तु शोक के साथ कहना पड़ता है कि अदालतों में पूर्णरूप से उस आज्ञा का पालन नहीं होता। केवल गवर्नमेंट की आज्ञा से सफलता नहीं हो सकती। गवर्नमेंट की उस आज्ञा का पालन करना हमारे देशभाइयों का ही काम है। इसलिये वे यदि एकमत होकर इसके प्रचारकों का साथ दें तो पूर्ण सफलता प्राप्त होने में कोई सन्देह नहीं है। इसी से कहते हैं कि सब देशी नरेश यदि अपने अपने राज्य के कार्यालयों में राजभाषा अँगरेज़ी के साथ हिन्दी-भाषा और नागरी लिपि को स्थान दें और गवर्नमेंट भी कर्मचारियों को उत्साहित करती हुई अपने समस्त साम्राज्य के कार्यालयों में नागरी लिपि को स्थान दे तथा हमारे देश भाई भी, जो गवर्नमेंट के कार्यालयों में काम करते हैं, कुछ कष्ट उठा कर नागरी में ही यथासम्भव कार्यनिर्वाह करें तो नागरी के प्रचार में बहुत कुछ सहायता मिल सकती है। महाराणा उदयपुर, महाराजा जोधपुर, महाराजा बूँदी, महाराजा जैसलमेर, श्रीमान् कोटा नरेश, श्रीमान् बीकानेर नरेश, महाराजा अलवर आदि देशी नरेश और विशेष कर टोंक की मुसलमानी रियासत—ये सब हमारे हार्दिक धन्यवाद के पात्र और भक्तिभाजन हैं। इन श्रीमानों ने अपने अपने राज्य के कार्यालयों में कृपापूर्वक नागरी को स्थान देकर अपने उदार उन्नत विचारों का परिचय दिया है। हम ईश्वर से प्रार्थना करते हैं कि वह महाराजा जयपुर आदि अन्य देशी नरेशों को भी ऐसी ही सुमति दे कि वे नागरी के गुणगौरव को जान सकें। हम सर्वसाधारण जनों का भी यही कर्तव्य है कि राजभाषा अँगरेज़ी के साथ साथ राष्ट्रभाषा व राष्ट्रलिपि का आदर करें, प्राणपण से नागरी व हिन्दी के प्रचार का प्रयत्न करें और महाकवि कालिदास के "आफलोदयकर्म्मणाम्" अर्थात् "सफलतापर्यन्त काम करते रहने वाले" इस अमूल्य उपदेश को चित्तपटल पर अङ्कित कर नागरी-प्रचार में तन, मन, धन से तत्पर रहें—लगे रहें। यदि कोई सङ्कीर्ण हृदय भिन्नभाषा-भाषी विदेशी हमारी भाषा के प्रचार का विरोध करे और हमारे इस उद्योग से सहानुभूति न प्रगट करे तो क्या हमारा भी वही कर्तव्य है? या हताश होकर हाथ खींच लेना उचित है? कभी नहीं।

प्रिय मित्रो, आप जानते ही हैं कि देश में एक ऐसी भाषा अर्थात् राष्ट्रभाषा अवश्य होनी चाहिए जिसे एक सिरे से दूसरे सिरे तक सारा देश सरलता के साथ सहज में बोल सके और एक ऐसी राष्ट्रलिपि भी होनी चाहिए जिसमें सब देशवासी अपनी प्रान्तीय भाषाओं को लिख कर परस्पर एक दूसरे की भाषा को सहज में पढ़ सकें। ऐसी कल्पना हमारे देश में हो चुकी है और वह राष्ट्रभाषा हिन्दी तथा राष्ट्रलिपि नागरी वर्णमाला चुनली गई है। हमको फिर भी अपनी उदार गवर्नमेंट से निवेदन करना चाहिए कि हमारी राष्ट्रभाषा हिन्दी है और राष्ट्रलिपि नागरी है। सर्कारी काम काज, जिनसे सर्वसाधारण का घनिष्ठ सम्बन्ध है-जैसे कचहरियों की लिखापढ़ी, देश के विभिन्न विभागों के विभिन्न विषयों की विवरणी, सर्कारी सर्क्यूलर आदि में राजभाषा अँगरेज़ी के साथ हमारी भाषा और लिपि को भी स्थान मिलना चाहिए, जिससे हम सर्वसाधारण सर्कारी बातों को सहज में समझ सकें—हमारे सब देश-भाई—

उन उपकारों को जान सकें, जो हमारी सर्कार हमारे ऊपर कर रही है।

बहुत लोग अदालतों में नागरी—हिन्दी के प्रचार का विरोध करते हुए यह आपत्ति करते हैं कि हिन्दी में अदालती शब्द बहुत कम हैं, इसलिये हिन्दी से अदालत का काम चल नहीं सकता। उनसे हमको यही कहना है कि यदि यह बात यथार्थ है तो इसका दूर हो जाना कुछ कठिन नहीं है। आवश्यकता पड़ने पर किसी न किसी प्रकार अभाव की पूर्ति कर ली जाती है। जब काग़ज़ न था तब कागज का काम भोजपत्र से चल जाता था। विद्वान् लोग विचार कर अपने सब अभावों को दूर कर सकते हैं। बड़े बड़े आविष्कार विद्वानों के विचार से ही हुए हैं। असम्भव कुछ नहीं है, ध्यान देने व उद्योग करने की आवश्यकता है। जो अदालती शब्द हिन्दी में नहीं हैं तो उनके प्रतिशब्द हिन्दी में बना लिये जा सकते हैं। जब मनुष्यों ने बड़े बड़े कोष और व्याकरण बना लिये हैं तब कुछ शब्दों को गढ़ लेना कौन बड़ी बात है। इसके अतिरिक्त जो अदालती शब्द बहुत प्रचलित हो गये हैं और जिनको सर्वसाधारण सहज में समझ लेते हैं उनको हिन्दी भाषा में सादर स्थान मिलना चाहिए। नागरी लिपि में लिखे जाने से ही वे हिन्दी की सामग्री समझे जाँयगे। इसलिये यह आपत्ति युक्ति-युक्त नहीं प्रतीत होती। आप निरपेक्ष भाव से हिन्दी—नागरी—प्रचार के विचार को हृदय में स्थान तो दीजिये, फिर कोई आपत्ति न रह जायगी।

हमारा इतना ही कर्तव्य नहीं है, हमको एक और भी उपाय करना चाहिए। वह उपाय सहज साध्य होने के अतिरिक्त हमारे ही हाथ में है, इस कारण उसमें सफलता पाने की पूर्ण आशा है। नित्य के पत्रव्यवहार में, हिसाब किताब में नागरी लिपि का व्यवहार और नित्य की बोल-चाल में, लेख—पुस्तक आदि की रचना में हिन्दी-भाषा का प्रयोग करना ही वह उत्तम उपाय है। हम में से यदि शिक्षित लोग ऐसा प्रण कर लें तो जो हमारे भाई हिन्दी वा नागरी को नहीं जानते या जान कर भी हिन्दी—नागरी के प्रचार पर ध्यान नहीं देते उनको भी विवश होकर हिन्दी वा नागरी की शिक्षा प्राप्त करनी होगी तथा हिन्दी वा नागरी का आदर करना पड़ेगा। इसके अतिरिक्त हिन्दी—नागरी के प्रचार का अत्यन्त सरल उपाय यह भी है कि हम लोग अपने लड़के, लड़की, भाई, भगिनी, स्त्री, बन्धु—बान्धव, इष्टमित्र सम्बन्धियों को नागरी व हिन्दी सिखाने का भार स्वयं अपने ऊपर ले लेवें। उनको हिन्दी व नागरी के गुण बतला कर सीखने के लिये उत्साहित करें। हिन्दी भाषा की शिक्षा कुछ समय सापेक्ष है। इसलिये कम से कम नागरी लिपि के प्रचार का प्रयत्न करने से भी बहुत कुछ सफलता हो सकती है। जो नागरी लिपि सीखेगा वह हिन्दी भाषा सीखने के लिये अवश्य ही उत्कण्ठित होगा। यह केवल कल्पना नहीं है, इसके प्रत्यक्ष प्रमाण पाए जाते हैं।

यह नियम भी स्वभावसिद्ध है कि जो मनुष्य जिस विषय में ज्ञान प्राप्त करता है वही उसको रुचता है। एक ओर जैसे चोर को चोरी, जुआरी को जुआ तथा व्यभिचारी को व्यभिचार ही रुचता है, वैसे ही दूसरी ओर विद्वान् की प्रवृत्ति प्रायः पढ़ने लिखने में ही होती है—शिक्षित मनुष्य का मन अच्छे ही कामों की ओर झुकता है। यदि मनुष्य शिक्षित है—पढ़ा लिखा है तो उसे समाचारपत्र और पुस्तकें पढ़ने की रुचि अवश्य होगी। पहिले पास का पैसा न ख़र्च कर सकेगा तो माँगनी माँग कर या पुस्तकालयों में जाकर पुस्तकें और समाचारपत्र आदि पढ़ेगा। यदि वह अपनी मातृभाषा को जानता है तो अधिकतर उसी के समाचारपत्र और पुस्तकें पढ़ेगा। पुस्तकों के पढ़ने से ज्ञान और अनुभव बढ़ेगा। समाचारपत्रों के पढ़ने से समाज की, देश की दशा विदित होगी। देश में क्या हो रहा है—यह जानने से भलाई में प्रवृत्ति और बुराई दूर करने की इच्छा का उदय अनिवार्य है। पढ़ने लिखनेवाला मनुष्य देश की, समाज की, धर्म की,

जाति की और अपनी भलाई जिसमें होगी उसका विरोध कभी नहीं करेगा, वरन् भलाई के कामों में आप सहायता करेगा और औरों को भी वैसा करने के लिये उत्साहित करेगा। इससे सिद्ध हुआ कि देश की उन्नति के लिये शिक्षा की आवश्यकता है और वह शिक्षा मुख्यरूप से हिन्दी में ही होनी उचित है। हिन्दी देश-भाषा—मातृभाषा होने के कारण उसमें मिली हुई शिक्षा सर्वसाधारण के लिये सहज होगी—इस योग्य हिन्दी भाषा ही है। हिन्दी का प्रचार पूर्णरूप से नागरी प्रचार पर ही निर्भर है। इसी लिये नागरी प्रचार देश की उन्नति का द्वार है।

बूँद बूँद जल से ही सागर बना है, छोटे छोटे परमाणुओं से ही सुविशाल पृथ्वी-मण्डल बना है, सर्वसाधारण जनों से ही देश बसा है, इसलिये प्रत्येक मनुष्य को चाहिए कि वह दूसरों को उपदेश देने के पहिले अपना सुधार कर ले। इस प्रकार अपने आदर्शचरित्र से उपदेश देना मौखिक उपदेश से कहीं बढ़कर है। इसके अतिरिक्त यदि प्रत्येक मनुष्य अपनी अपनी उन्नति करने के लिये प्रण कर ले तो फिर इतने उपदेश की—इतने परिश्रम की आवश्यकता ही नहीं है, बहुत ही सहज में देश की उन्नति हो सकती है। इसमें भी कोई सन्देह नहीं है कि अपढ़ लोगों की अपेक्षा पढ़े लिखे लोग अपनी उन्नति के लिये अधिक विचार कर सकते हैं और बहुत शीघ्र—सहज में ही अपनी उन्नति कर लेते हैं। व्यक्तिगत उन्नति ही समष्टि रूप से देश की उन्नति है। इस युक्ति का भी यही सार है कि नागरी-प्रचार देश उन्नति का द्वार है।

अपने को हिन्दू कहनेवाले हम हिन्दी भाषा-भाषियों को प्रण कर लेना चाहिए कि हम अपने लड़की लड़कों को पहिले नागरी-वर्णमाला सिखावेंगे—आरम्भिक शिक्षा हिन्दी में दिलावेंगे या स्वयं देंगे। काम काज में—उत्सव के समय में—अवसर पर जहाँ हज़ारों रुपया ख़र्च कर डालते हैं वहाँ रुपया पीछे एक पैसा या सैकड़ा पीछे एक रुपया अथवा अपनी श्रद्धा के अनुसार कुछ धन नागरी-प्रचार के हेतु निकाल कर किसी हिन्दी और नागरी से सम्बन्ध रखनेवाली संस्था को—किसी हिन्दी पुस्तकालय को भेज देंगे अथवा कहीं न भेजेंगे तो उसी रुपये से स्वयं कुछ पुस्तकें और समाचार-पत्र मँगावेंगे, जिससे नागरी के प्रचार में सहायता होगी।

हमारे देश में दान करनेवालों की कमी नहीं है। किन्तु शिक्षा के अभाव से अब दान ऐसा पुण्य कर्म भी पाप का कारण हो रहा है। हज़ारों लाखों हट्टे कट्टे पेट भरे आदमी भीख माँगते हैं। ऐसों को दान देना और देश को आलसी अकर्मण्य बनाकर हराम-ख़ोरों की सृष्टि करना एक ही बात है। ऐसे ही लाखों पंडे, पंडित, पुजारी, पुरोहित, पाधा आदि हैं जो अशिक्षित होने के कारण पुण्यार्थ प्राप्त धन का दुरुपयोग कर दाता को भी ले डूबते हैं। इस-लिये देशहितैषी विद्वानों का कर्तव्य है कि वे मातृ-भाषा और नागरी लिपि की शिक्षा का विस्तार कर लोगों को इस योग्य बनावें कि वे पढ़ लिख कर दान देने का उद्देश्य समझ सकें। दान करने का उद्देश्य परोपकार है। जिस दान से परोपकार के बदले पराया अपकार हो वह दान दान ही नहीं है। जब सब लोग शिक्षा पाकर इस तत्त्व को समझ जायँगे तब वे आपही अंधे, अपाहज, अनाथों को और विद्वान् विरक्त ब्राह्मणों को छोड़कर किसी को दान न देंगे। ऐसा होने से वे हट्टे कट्टे भिखारी अवश्य ही कोई उद्योग, व्यवसाय करने के लिये बाध्य होंगे—तब ये पण्डे, पण्डित, पुजारी, पुरोहित, पाधा आदि अवश्य ही शिक्षा पाकर चरित सुधारने के लिये विवश होंगे। हिन्दी-नागरी-प्रचार द्वारा सर्वसाधा-रण को शिक्षा देकर उनके दिव्य नेत्र खोल देने से ही उनको नागरी-प्रचार ऐसे सार्वजनिक उपयोगी काम में दान देने की रुचि होगी। तभी सब लोग स्वयं हिन्दी-पुस्तकें और समाचार-पत्र मोल मँगा-कर पढ़ेंगे और तभी यह समझेंगे कि पुस्तकें और समाचार-पत्र मोल लेकर पढ़ना भी नागरी-प्रचार

में सहायता कर अपनी उन्नति करते हुए देश की उन्नति करना है।

मेरी समझ में नागरी-हिन्दी के प्रचार के लिये यही सब सहज उपाय हैं कि स्थान स्थान में, नगर नगर में, गाँव गाँव में सभाएँ स्थापित हों। उन सभाओं में हिन्दी की उन्नति, और नागरी के प्रचार के लिये विचार किया जाय। वे विचार कार्यरूप में परिणत करने का पूर्ण प्रयत्न किया जाय। सभाओं से संयुक्त पुस्तकालय भी स्थान स्थान पर स्थापित हों। पुस्तकालयों में पहिले कुछ भी फ़ीस न लीजाय। स्थानीय सभा के उद्योग से एकत्रित धन द्वारा पुस्तकालय का व्यय चलाया जाय। जब लोगों को पढ़ने का शौक़ होगा तब वे आपही पुस्तकालय को यथाशक्ति आर्थिक सहायता देंगे। ग्राम ग्राम में, स्थान स्थान में कम से कम एक एक पाठशाला भी स्थापित की जाय। इन पाठशालाओं में असमर्थ बालकों को हिन्दी और नागरी की आरम्भिक शिक्षा मुफ़्त दी जाय और समर्थ अमीरों के लड़कों से फ़ीस ली जाया करे। इन पाठशालाओं के खोलने का उद्योग भी हिन्दी हितैषिणी सभाओं के ही द्वारा होना चाहिए। कुछ ऐसे विद्वान् जो स्वयं संपन्न, देशहितैषी और हिन्दी के हिती हैं उनको अपना कुछ समय भ्रमण के लिये देना चाहिए। वे लोग भ्रमण कर अपने आस पास ऐसी सभाओं के स्थापन करने का प्रयत्न करें और ऐसी सभाओं के अधिवेशनों में जाकर अपने व्याख्यानों से लोगों को नागरी और हिन्दी सीखने के लिये उत्साहित किया करें। अवस्थानुसार उक्त सभायें वैतनिक उपदेशक रखकर भी उनके द्वारा सर्व साधारण को हिन्दी और नागरी सीखने के लिये उत्साहित कर सकेंगी। इस समय ऐसी सभायें स्थापित करने के लिये हिन्दी पत्रों को प्रबल आन्दोलन करना चाहिये और संपन्न विद्वान् हिन्दी हितैषी सज्जनों को कुछ कष्ट उठा कर और धन व्यय कर अपने आस पास के स्थानों में भ्रमण करना चाहिए, हिन्दी-सभायें स्थापित कराने की पूर्ण चेष्टा करनी चाहिए। जो महोदय विदेशी भाषाओं में अच्छी योग्यता प्राप्त कर चुके हैं उनको अन्य भाषाओं के अनेकानेक उपयोगी विषयों से हिन्दी-साहित्य की श्रीवृद्धि करनी चाहिए—मातृभाषा की सेवा में अपने अमूल्य समय का कुछ अंश देना चाहिए। उनको इस कार्य में यश के अतिरिक्त धन का भी लाभ होगा। प्रति वर्ष भिन्न भिन्न स्थानों में हिन्दी-साहित्य सम्मेलन का अधिवेशन होना चाहिए और प्रत्येक हिन्दी-हितैषी को अपने विचार प्रकट कर हिन्दी की उन्नति का प्रयत्न करते हुए निश्चय रखना चाहिए कि नागरी-प्रचार देश-उन्नति का द्वार है।

माननीय मित्रगण! मुझे जो कुछ कहना था वह मैं आप श्रीमानों की सेवा में निवेदन कर चुका। आप लोगों ने धैर्य के साथ मेरे वक्तव्य को सुना इसके लिये मैं अपने को धन्य समझता हूँ और आप महानुभावों को हार्दिक धन्यवाद देता हूँ। मेरे भाषण में यदि कुछ अनुचित निकल गया हो अथवा कोई त्रुटि रहगई हो, क्योंकि मुझ ऐसे व्यक्ति के भाषण में त्रुटि का रह जाना सर्वथा सम्भव है, तो आप अपनी उदारता से उसे क्षमा करेंगे।

समस्त हिन्दी-हितैषी सज्जनों से मेरा यही अन्तिम निवेदन है कि—

घनाक्षरी।

सुनिये सुलेखक सुजन सब सेवक की समय न
चूकिये शरीर ये असार है। लिखिये ललित लेख
लेखनी पकरि कर, रचिये रुचिर छन्द रुचि अनुसार
है॥ जो कुछ जहाँ से जैसे मिलै उपयोगी वस्तु
जासों जिय जानो जाति देश उपकार है।
सोई करो हिन्दी और राखो यों विचार हिये—
"नागरी-प्रचार देश उन्नति का द्वार है"।

——:०:——

हिन्दी भाषा।

[बाबू विन्धेश्वरीप्रसादसिंह लिखित]

आज जो अवसर उपस्थित है उससे बढ़कर समय देखने की आशा करना हम मनुष्यों का स्वभाव है। हमें आशा है कि हिन्दी के भक्तों का जो दूसरा समागम होगा उसमें हिन्दी की जीवनी की एक सुष्ठुतर कथा कही जायगी। उस समय बड़ा आनन्द होगा। इस वक्त से अधिक आनन्द हो तो हो लेकिन ऐसा आनन्द न होगा। उसमें यह नूतनत्व न होगा क्योंकि वह एक मुरझाई लता में आप लोगों के केवल भक्तिसिञ्चन से समुत्पन्न पहिला नहीं दूसरा फल होगा। जो लोग ऐसे दूसरे समागम के दिन देखेंगे वे धन्य होंगे। लेकिन आप लोग उनके भी धन्यवाद के—बधाई के--हार्दिक कृतज्ञता के पात्र हैं क्योंकि आप लोगों ने मातृ-भाषा की अविरत सेवा करके उस दिन का आज आरम्भ कर दिया। इसके लिये आप लोगों का एक अकिञ्चन अनुसरणेप्सु अपना उच्चतम कर्तव्य समझ कर प्रशंसा के मानस से नहीं क्योंकि आप लोग हमारी प्रशंसा क्या भक्ति के अधिकारी हैं—एक बार नहीं तीन बार शुद्ध अन्तःकरण से बधाई देता है। यही मुझे कहना था सो मैं कह चुका क्योंकि हिन्दी-भाषा के विषय में मैं आप लोगों की कोई अनजानी बात कह सकूँगा यह मुझे विश्वास नहीं है। मैं जिस कर्तव्य पालन के लिये आपके सम्मुख उपस्थित हुआ हूँ उसके गूढ़त्व के स्मरण होने से सहृदय कवि की "उद्बाहुरिव वामनः" यह उक्ति याद आती है। लेकिन उद्बाहुत्व वामन का एक स्वभाव है यह सोचकर आप केवल रीझेंगे, रुष्ट न होंगे। इसकी मुझे पूरी आशा है।

स्काटलैण्ड के पण्डित एक डुगैल्ड स्टिवार्ट का नाम लोगों को याद होगा। जब विद्वद्वर सर विलियम जोंस ने रोपवालों पर यह प्रगट किया कि भारतवर्ष की पुरानी भाषा संस्कृत एक बहु-मर्म और सर्वाङ्गसुन्दर भाषा है, दार्शनिक स्टिवार्ट को विश्वास न हुआ। उन्होंने बड़े परिश्रम से अपने देशवासियों को समझाया कि दरअसल संस्कृत कोई ज़बान नहीं है जो कहीं कभी जारी रही हो बल्कि सर जोंस और भारतवर्षीय चतुर ब्राह्मणों की निरी कल्पना है जिसका पहिले कभी अस्तित्व न था। स्टिवार्ट ने द्वेष से ज़रूर ऐसा नहीं किया था। शायद उन्हें ऐसी धारणा ही हुई थी। जो हो, उनके मतावलम्बियों की आवाज़ अब सुनने में नहीं आती। भारतवर्ष में आजकल कोई ऐसे दार्शनिक नहीं हैं। यहाँ के लोग मानते हैं कि संस्कृत एक ज़माने में यहाँ प्रचलित भाषा थी अर्थात् एक समय इस देश के इतिहास में ऐसा था कि यहाँ के अधिक और प्रधानजाति के लोग रोज़मर्रा के कामों में संस्कृत बोलते थे। और भाषायें भी इस समय किसी कदर जारी थीं लेकिन व्यवहार और बोलनेवालों के मानसिक और नैतिक तथा अन्य दूसरी आवश्यक बातों का ख्याल कीजिये तो प्रधानता उस समय की संस्कृत ही की माननी पड़ेगी। यह समय भारतीय आर्य्यों के विक्रम का मध्याह्न होगा। धीरे धीरे स्वाभाविक कारणों से एक ओर संस्कृत बिगड़ी और दूसरी ओर इतर भाषाओं का व्यवहार बढ़ा, इससे प्राकृत बनी। प्राकृत से मेरा मतलब है संस्कृत नाटकों की स्त्रियों और नीच पात्रों की भाषा के पहिले युग का प्रतिरूप। बाद को बौद्ध मत से प्राकृत की पुष्टि हुई और वह मागधी के प्रादेशिक रूप में "मूलभाषा" कहलाई। बौद्धयुग में इसके व्याकरण संस्कृत के ढंग पर लिखे गए। संस्कृत की जगह पर इसे बैठने का उद्योग किया गया। संस्कृत का ज़ोर इस समय कम हो गया था लेकिन उसका अस्तित्व लोप नहीं हुआ था बल्कि वह कहीं कहीं बड़ी उन्नति कर रही थी। धीरे धीरे

जब बौद्धमत का ज़ोर घट चला, प्राकृत के व्याकरणों का बल भी कम होने लगा। चूँकि अपनी ज़िन्दगी में प्राकृत हमेशा लोगों की रोज़ रोज़ की भाषा रही, ज़माने के साथ उसका रूप बदलता गया, दिन दिन उसके शृङ्गार की सामग्री कम होती गई और सादगी आती गई। अनन्त परिवर्तनों के बाद उसका नाम हुआ है हिन्दी या उर्दू। वस्तुतः हिन्दी संस्कृत से निकली है। कुछ लोग संस्कृत नहीं प्राकृत से उसका उद्भव बतलाकर अपने कथन का अनुमेयार्थ जताते हैं कि संस्कृत और हिन्दी से वंश-परम्परा का कोई सम्बन्ध नहीं है। मेरी समझ में वे लोग ग़लती पर हैं। समय नष्ट होने के भय से मैंने इस विकास के प्रतिरूप यथासाध्य नहीं बिठाये हैं। जो कोई यह प्रतिरूप समय समय के पुराने काव्यों में देखेगा हमसे अन्यथा न सोचेगा।

जाना जाता है कि मुसलमानों के यहाँ आने के पहिले इस देश में अविद्या का अन्धकार छाया हुआ था। केवल अपनी भाषा और रावरस्म को हर प्रदेश के लोग उपादेय समझते थे। फल इसका यह हुआ था कि सधर्मी प्रदेशों के लोगों में जैसा मेल होना चाहिए वैसा न था। एक देश से दूसरे की भाषा साधारण से अधिक विभिन्न होगई थी। पढ़े लिखे लोग अकसर ब्राह्मण ही रह गये थे जिनका विश्वास था कि संस्कृत के सिवाय और भाषा में धर्म कर्म करने से अनुष्ठान भ्रष्ट हो जाँयगे। इससे प्राकृत भाषाओं पर उन्होंने ध्यान नहीं दिया था। जब मुसलमान इस देश में आये, उन लोगों ने यहाँ की प्रजा की भाषा सीखी और उस पर अपना अमेट निशान छोड़कर अपने देश को लौट गए, या सम्भवतः उनमें से कुछ यहाँ रह भी गए। हिन्दुओं में दिन दिन अपनी विद्याओं का प्रचार घटता गया। संस्कृत से रग़ज़त कम हो गया यहाँ तक कि जब मन में तरङ्ग उठी, बहुमर्म और स्पष्ट संस्कृत के बदले अपनी सादी घरेलू भाषा ज़बान पर आई। मुसलमानों के बार बार अनिष्ट आगमन से इस घरेलू भाषा में विदेशी शब्दों का ख़ासा मेल होगया था और होता जाता था। चन्द कवि के लेख इसी ज़माने के हैं। तब तक जो कुछ हो चुका था उसका अधिकांश चन्द के लेखों में अनुसन्धान करने से शायद मिल जायगा।

क़ुतुबुद्दीन ऐबक़ के दिल्ली के सिंहासन पर बैठने से लेकर अकबर के पहिले तक का समय भाषा के इतिहास का दूसरा खण्ड है यह एक निराला ज़माना था। पण्डित संस्कृत में मशग़ूल थे, प्रजा फ़ारसी से मिली प्राकृत और विजेता मुसलमान फ़ारसी बोलते थे। फ़ारसी ने अपने ही देश में अरबी से बहुत कुछ लिया था। वह सब अब इस देश में आया। इस ज़माने के पूर्वार्ध में मुसलमान धर्म-प्रचार में लगे थे और हिन्दू धर्म की रक्षा करने में। बड़ी खलबली का ज़माना था। लोगों का मन स्थिर नहीं था, सदा उद्विग्न था इसी से प्रजा की भाषा में कोई नया दृश्य देखने में नहीं आया। उत्तरार्ध में हिन्दू मुसलमान स्वाभाविक कारणों से आपस में मिलने लगे थे। धर्म-प्रचारक के अतिरिक्त मुसलमान अब शासक ही हो गए थे। उन्हें इस देशवालों की मदद ज़रूरी थी इसलिये उन्होंने यहाँ की भाषा उद्यम से सीखी होगी। उधर यहाँ वाले फ़ारसी के चन्द लफ़्ज़ अपने काम में लाकर ही सन्तुष्ट न हुए। फ़ारसी भाषा सीखी और शाही दफ्तरों में नौकर हुए। दोनों ओर से सहानुभूति बढ़ी। मुसलमानों को इस देश की भाषा में स्वाद मिला तो भिन्न भिन्न समय पर अमीर ख़ुसरू और मलिक मुहम्मद जायसी ने उत्तमोत्तम काव्य लिखे। हिन्दू धर्मरक्षा के लिये बोल चाल की भाषा में लिखने लगे। कबीरदास और गुरु नानक का उत्थान हुआ। इस समय तक हिन्दी का रूप स्पष्ट होगया था। उसे हिन्दू मुसलमान दोनों पसन्द करने लगे थे या कम से कम घृणा की जगह उदासीनता की आँख से देखने लगे थे।

अकबर के ज़माने तक मुसलमानों का मुख्य उद्देश्य धर्मप्रचार के बदले शासन होगया था, ऐसा कहना चाहिए। जब अकबर सम्राट हुआ

रही सही कसर मिट गई ; लोगों ने "दिल्लीश्वरो वा जगदीश्वरो वा" कहना पसन्द किया। अकबर विद्वानों का भक्त था उसने दिल्ली के दरबार में यहाँ वालों का आदर करने की प्रथा चलाई जो बहुत दिनों तक जारी रही। उसके समय में विद्या की उन्नति हुई। उस समय सर्वसाधारण की ज़बान रेख़ता या उर्दू नहीं कहलाई होगी। मुमकिन है कि लोग इसे भाषा ही कहते हों क्योंकि तुलसीदास हमेशा यही शब्द व्यवहार करते हैं। रेख़्ता इसका नाम बाद को उस वक़्त पड़ा होगा जब यह अधिक मुसलमानों से सुनी जाने लगी होगी और बोलनेवालों के मन में यह सवाल पैदा हुआ होगा कि जिस भाषा में वे बोल रहे हैं उसे क्या कहना चाहिए। उसे फ़ारसी, अरबी, संस्कृत, प्राकृत, व्रजभाषा अकेले कुछ भी नहीं कहा जा सकता था क्योंकि उसमें ये सब शामिल थीं। असल भाषा की सूरत पहचानना धीरे धीरे ग़ैरमुमकिन हो गया था। उससे इस नई ज़बान का नाम रेख़्ता रक्खा गया। स्वर्गीय मिर्ज़ा मुहम्मद हुसैन साहब कहते हैं:—"बयाने हाय मज़कूर से यह भी साबित होता है कि जो कुछ हुआ किसी की तहरीक या इरादे से नहीं हुआ। बल्कि ज़बान मज़कूर (अर्थात् व्रजभाषा) की तबीअत ऐसी मिलन-सार वाके हुई है कि हर ज़बान से मिल जाती है। संस्कृत आई उससे मिल गई। अरबी फ़ारसी से बिस्मिल्ला ख़ैर कुछ कम कहा—इत्यादि। इसी ज़बान को रेख़्ता भी कहते हैं क्योंकि मुख़्तलिफ़ ज़बानों ने इसे रेख़्ता किया है या रेख़्ता के मानी हैं गिरी पड़ी परीशान चीज़। चूँकि इसमें अल्फ़ाज़ परेशान जमा हैं इस लिये इसे रेख़्ता कहते हैं।" भाषा का यह नाम शायद हिन्दी लफ़्ज़ के साथ भी ज़िन्दा था। जो हो, इसे रेख़्ता कहनेवाले आलिम मुसलमान या हिन्दू इसको यहाँ की एक अलग ज़बान समझते थे और उनकी राय में रेख़्ता में फ़ारसी और अरबी की क्रियाओं का व्यवहार इसके मिजाज़ के ख़िलाफ़ था। शाह मुबारक अबरू एक कवि थे। उनका एक शेर कहीं पढ़ा था।

जो कि लावे रेख़्तों में फ़ारसी के फ़ेल व हर्फ़।
लग्व हैंगे फ़ेल उसकी शायरी पर हर्फ़ है।

रेख़्ता कहलाने के बाद यह भाषा उर्दू नहीं हिन्दी कहलाई। सन् १७७७ ई० की लिखी एक किताब की भूमिका में फ़ज़ली नाम के एक लेखक कहते हैं:—फिर दिल में गुज़रा कि ऐसे काम में अक़्ल चाहिए कामिल और मदद किसी तरफ़ की होय शामिल व यों कि बेताईद समदी यह मुश्किल सूरत पज़ीर न होवे... और अब तक तरजुमा फ़ारसी ब-ईबारत हिन्दी नसर नहीं हुआ मुस्तमअ...। आश्चर्य यह है कि लिखनेवाला अपनी भाषा को 'हिन्दी नसर' कहता है और उद्धर्ता मिर्ज़ा साहब उसे 'नसर उर्दू' की पहिली तसनीफ़ समझते हैं। इस समय के हिन्दू कवियों की गद्य की पोथियाँ नहीं मिलती हैं। ख़ैर जो कुछ कहा गया उससे ज़ाहिर होता है कि मुहम्मदशाही ज़माने के लोगों की हिन्दी से अब की हिन्दी में बहुत अन्तर है। देखिए—

वली:

बेवफ़ाई न कर ख़ुदा सों डर।
जग हँसाई न कर ख़ुदा सों डर॥
याद करना हर घड़ी तुझ यार का।
है वज़ीफ़ा मुझ दिले बीमार का॥
मत जा चमन मों लाल पे
बुलबुल यह मत सितम कर।
गर्मी से तुझ निगह की
गलगल गुलाब होगा।
निकला है वह सितमगर
तेग़े अदा को लेकर।
सीने पै आशिक़ों के
अब फ़तहयाब होगा॥

आबरू:

क़ामत का सब जगत् मने
बाला हुआ है नाम।
क़द इस क़दर बुलन्द
तुम्हारा रसा हुआ॥

उस समय से की जगह सें, सों, सें ही लिखते थे। जग में जग मने दोनों चलते थे। मुझ दिल, तुझ लब, आँसुओं की जगह अछुवाँ या अछुवाँन जो व्रजभाषा का अँसुवान है, भवें, पलके की जगह भवाँ, पलकाँ और हमको के बदले हमन को लिखते थे। विशेष्य के वचनानुसार विशेषण का वचन बनाते थे।

मुलायम हो गईं दिलबर
बिरह की सायतें कड़ियाँ।
पहर कटने लगे उन बिन
कटरीं जिन बिना घड़ियाँ॥

मुसलमान लेखक अपनी लफ़्ज़ों की कमी अरबी फ़ारसी से और हिन्दू संस्कृत प्राकृत से पूरी करते थे। साधारणतः दोनों एक ही भाषा लिखते थे। हरूफ़ कभी कभी एक ही और कभी कभी भिन्न होते थे। जब कविता का रवाज़ बढ़ चला। भाव की ज़रूरत हुई, कवि-समय की ज़रूरत हुई, आख्यानों की खोज पड़ी। हिन्दुओं ने पुराणों की मदद ली और पुराणों के अनभिज्ञ मुसलमानों ने अरब और फ़ारिस के कविसमय अवलम्बन किए, वहाँ के कवियों की शैली का अनुकरण किया। मुसलमानों की पारसीक शैली और कवि समय का फल बक़ौल पूर्वोक्त मिर्ज़ा साहब के यह हुआ कि इस मुल्क की ज़बान की 'इन्शापरदाज़ी' और 'क़ूवते बयान, को सदहा नुक़सान पहुँचा।

जब प्रतापशाली अंगरेज़ इस देश के राजा हुए, उन्हें यहाँ की भाषा सीखनी पड़ी। वारेन हेस्टिंग्स ही ने इसकी नींव डाली थी। उसके बहुत दिनों के बाद, जब इस देश की भाषा का व्याकरण बनाने के लिये सरकार ने जान गिडक्रिस्ट की निगरानी में पण्डितों और मौलवियों को नियत किया, उन्होंने एक ही भाषा के दो व्याकरण बना डाले। एक वह था जिसमें इबारत हिन्दी की और पारिभाषिक तथा दूसरे शब्द फ़ारसी के थे। दूसरी किताब ऐसी बनी जिसमें अर्बा फ़ारसी की जगह संस्कृत प्राकृत के लफ्ज़ थे। मदरसों में इसी तरह दो क़िस्म की किताबें जारी हुईं। उधर सन् १८३५ से सरकारी दफ़्तरों में फ़ारसी जारी थी। वही गोया उन्नति का द्वार था। उसी के प्रसाद से पढ़े लिखे लोग सरकारी नौकरियाँ पाते थे। इसका यह फल हुआ कि नागरी अक्षर सिवाय देहात और कुछ लोगों की चिट्ठियों के सब जगह से निकाल दिए गए। क्रिस्तान पादरी अपने काम की अधिक किताबें नागरी अक्षरों ही में छपवाते थे। ज़माने ने पलटा खाया। कुछ पढ़े लोगों को नागरी अक्षरों से अनुराग हुआ। इतिहास का यह अध्याय स्वर्णाक्षरों में लिखा जाना चाहिए। स्वर्गीय राजा लक्ष्मणसिंह और राजा शिवप्रसाद का इस ज़माने के पूर्वार्ध और भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का इसके उत्तरार्ध से विशेष सम्बन्ध है। भारतेन्दु को छोड़ कर नागरी अक्षरों का प्रचार बढ़ाने के लिये राजा शिवप्रसाद की तरह चेष्टा किसी एक व्यक्ति ने उस ज़माने में न की। राजा साहब को तरह भाषा के मर्मज्ञ हिन्दी जाननेवाले उस समय बिलकुल कम थे। उस वक़्त की लिखी किताबों से यही प्रतीत होता है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने यहाँ के पढ़े लिखे लोगों में हिन्दी लिखने का शौक़ बढ़ाया। भारतेन्दु ने हिन्दी लिखी ही नहीं बल्कि उसके लेखक भी बनाए। उन्हीं की दिखाई राह पर हम लोग आज कल चल रहे हैं।

हिन्दी भाषा आज कल जैसी मदर्सों में पढ़ाई जा रही है उसे देख कर सुख तो नहीं होता। मैंने एक दिन एक लड़के से पूछा "क्यों, लड़के, क्या पढ़ते हो?" जवाब मिला "इन्डियन प्रेस रीडर"। मैं ने घबरा कर पूछा "क्या अँगरेज़ी पढ़ते हो ?" लड़के ने कहा "नहीं साहब, हिन्दी पढ़ता हूँ कि अँगरेज़ी"। जहाँ किताबों का नाम रखने के लिये हिन्दी के शब्द नहीं मिलते वहाँ की भाषा का तो कुछ पूछना ही व्यर्थ है। अकसर हिन्दी किताबों के नाम अँगरेज़ी हैं; जैसे, जेनरेल हिन्दी रीडर, हिन्दी प्राइमर वग़ैरह। इस पर आप लोगों का विशेष ध्यान होना चाहिए क्योंकि यह आपदा श्रीगणेश ही में उपस्थित है। यह उद्गमस्थान का दूषण है इससे समस्त नदी का जल दूषित हो जायगा।

हिन्दी के आधुनिक जिज्ञासुओं की कठिनाइयाँ ज्यों ज्यों कम होती जाँयगी हिन्दी उन्नत होती जायगी। हिन्दी की पुरानी किताबों के अच्छे संस्करणों का बड़ा अभाव इस समय है। अँगरेज़ी चाल के संस्करण हैं ही नहीं। काव्य-ग्रंथों की आलोचना सहित टीका हुई ही नहीं। तुलसीदास की भाँति सर्वप्रिय और उत्तम कवियों के काव्यों के वेरिओरम शेक्सपियर की नक़ल पर कितने संस्करण हिन्दी में हुए हैं? काशी में तुलसीदास के स्थान का दर्शन करने हिन्दीपढ़नेवाले कितने आते हैं?— लोगों में जब साहित्य का इतना चाव बढ़ जायगा, हिन्दी उन्नत कहलायेगी, पुनरुद्धार में क्या काम करना होगा, आप लोग अब इससे समझ सकते हैं।

हिन्दी बोलने वाले एक दम विज्ञान और दर्शन नहीं जानते ऐसा कहना अनभिज्ञता है। हिन्दी में, लेकिन, विज्ञान और दर्शन की किताबें बिलकुल कम हैं। इस क़िस्म की सर्वप्रिय किताब तो हैं ही नहीं।

लिखने में हिन्दी वाले अपनी अपनी अलग गाते हैं। समझाइये, तो जली कटी सुनाते हैं-इस व्यर्थ भय से कि मान लेने पर प्रतिष्ठा नहीं रहेगी। मेरी प्रार्थना है कि हिन्दी के रथी अपनी यह प्रथा सुधारें। उपदेश मैं नहीं दे रहा हूँ, न देने के योग्य अपने को समझता हूँ। परन्तु विनय मैं फिर करता हू यह पुरानी प्रथा सुधारी जाय। और बात हमें यह कहनी है—केवल दशकुमारचरित के समासों से हिन्दी की शुद्धि न की जावे, न अर्बी और फ़ारसी की नक़ल से होगी। अब तक जो विदेशी शब्द चल गए हैं वे रहें परन्तु उधार स्वदेश से लिया जाय। पारभाषिक शब्द नये जो हों वे संस्कृत के और पुराने वही हों जो पहिले से रायज हैं। भाषा ज़रूरत के मुआफ़िक़ अलग अलग हो सकती है पर उसकी आत्मा एक ही होनी चाहिए।

——:०:——

हिन्दी की वर्तमान दशा और उसकी समुन्नति का उपाय।

[बाबू कोड़ीमल माल्रू लिखित।]

हिन्दी भाषा की उन्नति के लिये आज कई वर्षों से विविध उद्योग हो रहे हैं परन्तु वास्तव में हिन्दी की जो दशा तीस पैंतीस वर्ष पूर्व थी आज उससे भी निकृष्ट जान पड़ती है। जिन लोगों ने उन दिनों के "सार-सुधानिधि" आदिक पत्र पढ़े होंगे वे इस अंतर को जान सकते हैं। प्राचीन लेखकों का लक्ष्य हिन्दी को "साधुभाषा" बनाने पर था। आधुनिक लेखकों की दृष्टि में कि जो "मुंशियाना" हिन्दी के पक्षपाती हैं वह साधुभाषा ब्राह्मणी भाषा समझी जाकर हेलास्पदा हो रही है। जिन लोगों ने बंकिम चंद्र आदि बंगाली लेखकों के ग्रंथ पढ़े हैं वे समझ सकते हैं कि हिन्दी की आज कैसी दुर्बल दशा हो रही है।

हिन्दी की उन्नति के उपाय सोचने के पहिले इस बात का निश्चय कर लेना परमावश्यक है कि भविष्यत् में हिन्दी की लेखशैली बंगला साधुभाषा के सदृश होनी चाहिये या पारसियों की गुजराती कीसी। उक्त विचार करने के पूर्व यह समझ लेना भी आवश्यक है कि मराठी आदि भाषाओं की भाँति गुजराती भी एक प्रान्तिक भाषा है और जो भाषा प्रान्तिक है उसका चाहे अपने ही भंडार से थोड़ा बहुत निर्वाह हो भी सकता हो परन्तु हिन्दी किसी एक प्रान्त की भाषा नहीं है। हिन्दी के वृत्त में पश्चिमोत्तर, अवध, व्रजमंडल, मध्यप्रान्त, राजपूताना, मध्यदेश इत्यादि कई प्रान्त आजाते हैं। ऐसी दशा में हिन्दी अपना निज का भंडार कौनसी प्रान्तीय भाषा कोश को समझ सकती है?। जब हिन्दी का स्वीय कोई शब्द भंडार नहीं फिर उसकी बृहदाकार कोश रचना में समय और द्रव्य लगाना कहाँ तक लाभदायक हो सकता है। जहाँ तक मैं सोचता हूँ भारतीय किसी भी आर्य भाषा की समृद्धि के लिये या तो संस्कृत या फ़ारसी या दोनों की सहायता आवश्यक होती है। स्वर्गीय राजा शिवप्रसाद और उनके अनुयायियों की रुचि चाहे संस्कृत की अपेक्षा फ़ारसी पर अधिक रही हो परन्तु यदि हिन्दुओं में अपनी मातृभाषा के साथ अणुमात्र भी प्रेम अवशिष्ट हो तो हिन्दी को संस्कृत शब्दों से पूर्णतया अलंकृत कर उसे साधुभाषा बनाना ही हमारा प्रधान कर्तव्य है। परन्तु यह बात तभी हो सकती है जब समाचार-पत्रों के सम्पादक दूसरी भाषाओं के साथ संस्कृत के भी अच्छे विद्वान् हों और हिन्दी की पाठ्य पुस्तकें बँगला की भाँति उच्चश्रेणी की हों। बँगला की आरंभिक पुस्तकों में जो संस्कृत शब्द सिखलाये जाते हैं वे हिन्दी के बहुधा पत्र-सम्पादकों की समझ में भी नहीं आसकते। बँगला प्रान्तिक भाषा होने पर भी इसमें संस्कृत शब्दों का अधिकतर प्रयोग होता है और यही कारण बँगला-साहित्य की उच्चदशा का है।

आज कल कई लोग हिन्दी को "मातृभाषा" कहके पुकारते हैं।

समास भेद से मातृभाषा के अनेक अर्थ हो सकते हैं।

(१) जो है जननी दूसरी भाषाओं की।

(२) मातृभाषा संस्कृत से है निबिड सम्बंध जिसका।

(३) मातायें बोलती हैं जिस भाषा को। इत्यादि

परन्तु उक्त ३ अर्थ में से १ भी हिन्दी पर नहीं घट सकता। कारण—

(१ व २) हिन्दी दूसरी भाषाओं की जन्मदात्री नहीं हो सकती, न हिन्दी का संस्कृत के साथ उतना आन्तरिक सम्बन्ध है जितना मारवाड़ी तथा गुजराती के साथ पाया जाता है। इसके कई उदाहरण हैं परन्तु यहाँ मुझे केवल एकही बतला देना है।

	संस्कृत	गुजराती
एकवचन	दुर्बलो (जनः)	दूबलो (माणस)
बहुवचन	दुर्बला (जनाः)	दूबला (माणस)
	मारवाड़ी	हिन्दी
	दूबलो (मिनख)	दुबला (मनुष्य)
	दूबला (मिनख)	दुबले (मनुष्य)

इस उदाहरण से स्पष्ट है कि गुजराती तथा मारवाड़ी के एकवचन और बहुवचन के रूप संस्कृत के समान हैं परन्तु हिन्दी के रूप जो सदैव उर्दू के सदृश होते हैं सर्वथा भिन्न हैं। हिन्दी की संस्कृत के साथ आभ्यंतरिक भिन्नता होने का कारण यही है कि वास्तव में हिन्दी का अस्थि-पंजर "उर्दू minus Persian Arabic (words) plus Sanskrit (words) = हिन्दी" इस योजना से बनता है। फ़ारसी अरबी के कई शब्द हिन्दी के साथ ऐसे परिचित हो गये हैं कि ब्राह्मणी हिन्दी में भी उनका व्यवहार कर्णकटु जान नहीं पड़ता। यथा "मुनीम" (व) "बिदा" "मसाला" "तकिया" "लोग" इत्यादि।

(३) हिन्दी वास्तव में जितने मुसल्मानों की ज़नानी भाषा है उतने हिन्दुओं की नहीं—कारण इसका यही है कि हिन्दी के अधिकांश व्याकरण विषयक नियम उर्दू से मिलते हुए हैं कि जो कई प्रान्तों के मुसलमानों की ज़नानी (जननी) भाषा है और हिन्दू समाज में जब तक स्त्रीशिक्षा का पूर्ण प्रचार होकर शताब्दियें न बीत जाँयगी तब तक हिन्दी को ज़नानी भाषा समझना भ्रममात्र है। जो हो। हिन्दी को मातृभाषा बनाने के लिये अभी हिन्दुओं को शताब्दियों तक शाश्वत यत्न करना होगा और जब तक संस्कृत के समृद्ध शब्द भंडार और उसकी विचक्षण समास प्रक्रिया का सादर उपयोग न होगा हिन्दी-साहित्य की उन्नति होना असंभव है। सारांश मेरे कथन का यह है कि हिन्दी को मुंशियाना हिन्दी बनाने की अपेक्षा ब्राह्मणी हिन्दी बनाने ही में हिन्दुओं का गौरव है।

"मख़ज़न" उर्दू भाषा का एक विशाल मासिक पत्र है जो लाहौर से प्रकाशित होता है। इसके मई सन् १९१० के अंक में "तालीम संस्कृत की ज़रूरत" शीर्षक लेख जो एक मुसलमान सज्जन की सुयोग्य लेखिनी और उदार हृदयता का परिचय देता है पढ़ने योग्य है। उस बड़े लेख में मौलवी महमूद अली साहब प्रोफ़ेसर रणधीरकालेज लिखते हैं—

"संस्कृत भी ऐसी ही वसीअ ज़बान है इसलिये अगर इसको जानने वाले बहुत हो जाँय तो रोज़-मर्राह के करोबार में इन लोगों की ज़बान से ज़रूर संस्कृत अल्फ़ाज़ निकला करेंगे और होते होते मुरव्वज ज़बान का जुज़्व बन जाँयगे और इसलिये संस्कृत की इशाअत का एक बड़ा फ़ायदा यह होगा कि हमारी मुल्की ज़बान वसीअ होजायगी और इख़्तसार के साथ बहुत से उम्दा मतालिब अदा होसकेँगे"।

एक मुसलमान बन्धु की क़लम से ऐसी सुमति देखकर उन हिन्दुओं को लज्जित होना चाहिए कि जो हिन्दी में संस्कृत का शब्दबाहुल्य देखकर खिन्न होते हैं। जिस संस्कृत का विदेशीय अथवा विधर्म्मीय विद्वान् कि जिनका संस्कृत के साथ कोई धार्म्मिक सम्बन्ध नहीं, इतना आदर करे उस देववाणी पर जो हमारी धार्म्मिक विद्या है हम लोगों का अश्रद्धा रहना हमारा मौर्ख्य एवं दुर्भाग्य नहीं तो क्या है। चाहे जितनी सामाजिक, धार्म्मिक अथवा साहित्य-सम्बन्धिनी सभायें रची जाँय किन्तु हिन्दू-समाज की वास्तविक उन्नति बिना संस्कृत प्रचार के नितान्त दुःसाध्य है।

संस्कृत शब्द व्यवहार बिना न तो हिन्दीलेखों में लावण्य हो सकता है न संक्षेप। दुःख का स्थान है कि आधुनिक कई पत्र-सम्पादकों का संस्कृत शब्द ज्ञान इतना दुर्बल है कि यदि कोई समासान्त शब्द आजाता है तो उसे कुछ का कुछ समझ कर छाप देते हैं। यदि कोई शिकिस्ता हिन्दी लिखता है तो वह पढ़ी तक नहीं जाती और शुद्ध हिन्दी लिखने के लिये लेखक को उपदेश करते हैं। ख़ुशख़त होने से ही हिन्दी शुद्ध नहीं होसकती। अँगरेज़ी में बुरा

से बुरा लेख होगा वह भी याथातथ्य पढ़ लिया जाता है और आज तक किसी सम्पादक ने यह किसी लेखक को नहीं कहा कि तुम्हारी अँगरेज़ी लिपि शुद्ध नहीं है। क्या ही उत्तम हो यदि नागरी—हिन्दी-प्रचार के साथ ही संस्कृत प्रचार के लिये भी शाश्वत उद्योग होते रहें और इसी सम्मेलन के शुभ अवसर पर संस्कृत-प्रचार-सम्बन्धिनी संस्था की स्थापना होकर काशी और सम्मेलन में उपस्थित होनेवाले सुजनों को सुयश प्राप्त हो।

—:०:—

पंजाब में हिन्दी ।

[पंडित सन्तरामशर्म्मा लिखित ।]

(प्रार्थना)

राष्ट्रभाषा भवेद्देव "हिन्दी" सर्वाङ्गसुन्दरी ।

आत्मीयभाव ।

पूजनीय महानुभाव मातृभाषा-हितैषियो तथा राष्ट्र-भाषा संस्थापक बन्धुओ, जो विचार 'पंजाब में हिन्दी के संबन्ध में मैं आपकी सेवा में भेंट करना चाहता हूँ' वे बड़ेही विचित्र तथा सोचनीय हैं इन्हें यदि कोई विद्वान् अनुभवी साहित्य-सेवी वर्णन करता तो आपको उसके वास्तविक रूप का दर्शन करा सकता जिससे आप आगे को इसका उपाय बिना संकोच के कर सकते, क्योंकि मैं न तो विद्वान् हूँ और न दुर्भाग्यतः मुझे विशेष-साहित्य-सेवी विद्वानों की संगति प्राप्त हुई है जिससे कि मैं अपने शब्दों को रुचिकर तथा रसपूर्ण बना सकूँ । तथापि इस साहित्य-सेवा रूपी मातृ-पूजा को परम श्रेयस्कर मान कर इस मातृपूजनोत्सव में जिस में कि प्रायः भारतमाता के सबही सपूत अपने हाथों सैंकड़ों वर्षों से सुलाई हुई माता को सरस्वतीशयन के दिनों में भी दिन में सोने को सोना समझ तथा विशेष कर माता का सोना पुत्रों के लिये अहित कर जान अपनी उत्तमोत्तम सामग्री (वचन कुसुमादि) से जगाना तथा पूजना चाहते हैं, मैं पूजन-विधि से अज्ञ तथा पूजोपकार से शून्य होने पर भी कृतघ्नता के दोष से बचने के लिये यथा कथंचित् उपस्थित होता हूँ । वा यों कहिए कि मातृ-भाषा से जीवनोपयोगी शक्ति प्राप्त कर माता के बल को क्षीण होते देख आपसे सद्वैद्यों के समक्ष माता की रोगदशा वर्णन करता हूँ जिससे उत्तम ओषधि प्राप्त कर माता की साहित्य-सम्बन्धिनी दशा को पूर्ववत् प्रतिष्ठा में ला सकूँ ।

आशा है आप अपने निदान-शास्त्रों से रोग के आदिकारण, साध्य, सुसाध्य, कष्टसाध्य आदि अवस्थाओं को विचारकर ऐसी ओषधि देंगे जिससे कि सर्व प्रकार की आधि-व्याधि तथा निर्बलता दूर हो जाय, और मैं मातृ भाषा के रक्षाहस्तों से हीन अनाथों की तरह न रहूँ किन्तु मातृवान् कहलाऊँ । वैद्यवर कृपया आप रोग के निदानादि विचार के मेरे अस्पष्ट तथा असंस्कृत शब्दों की अपेक्षा न कर मेरे आशय को समझ वा 'अनुक्तमप्यूहति पंडितो जनः' के अनुसार अपनी सद्विद्या से उचित चिकित्सा को और मेरे भाव को पूर्ण करें ।

२—पूर्वदशा ।

आर्यगण पंजाब की पवित्र भूमि में प्राचीन काल में जो मान मातृभाषा (संस्कृत-हिन्दी) का था उसे स्मरण कर हमें दुःख होता है । विद्या तथा पवित्रता के सुपुष्पित क्षेत्र जिस काशी धाम में बैठे आज हम अपने पूर्वजों के विद्यानुराग को गारहे हैं और जिसके प्रताप से सारा संयुक्त प्रान्त शोभा प्राप्त कर रहा है वह किसी समय आर्यों की वीर भूमि व देवनिर्मित भारत का उत्तरीय पवित्र खंड (पंजाब) भी काश्मीर आदि पुण्य-क्षेत्रों के प्रभाव से इसी प्रकार महान् तथा शोभनीय था । परम शोक है कि विकराल काल के तीक्ष्ण कुदाल से आज वह खंड, खंडित और अनार्यों के अनाचारों की धूलि से धूसरित हो रहा है । अस्तु,

हिन्दी हितैषी सज्जनो, आपकी सर्व बलयुता 'हिन्दी' को जितने रूप पंजाब में धारण करने पड़े हैं उतने कदापि दूसरे प्रान्तों में न धारने पड़े होंगे । अर्थात् जिस पंजाब में किसी समय स्वच्छ तथा शुद्धरूप हिन्दी को प्राप्त था यवनों के भारत में आने के लिये द्वार होने के कारण यवन राजाओं के आक्रमणों के सबसे पहिले पंजाब में हिन्दी का नाम वा रूप मलिन हुआ और इस मलिनता दूर करने का प्रयत्न सबसे पीछे पंजाब में हुआ और वह भी पर्याप्त नहीं । और वास्तव में तो यवन-राज्य में हिन्दू-राजाओं के साथ

ही हिन्दी (भाषा को) भी सिंहासन च्युत कर दिया गया। अर्थात् यवन-शासक यद्यपि पंजाब में हिन्दी का जीवन-नाश नहीं कर सके पर उन्होंने इसकी जीवन-ज्योति अवश्य हर ली जिससे हिन्दी ने पराजित राजाओं की तरह गिरि-गह्वरों का आश्रय लिया। दूसरों शब्दों में पंजाब में एक ऐसा समय आया जिसमें कि न केवल हिन्दीभाषी दंडार्ह समझे गए किन्तु हिन्दी-भाषा (नागरी) भी विद्रोहिणी शक्ति समझी गई, यही कारण था कि हिन्दी के सच्चे सेवक गुरु अंगदजी ने हिन्दी के आकार की हिन्दी की रक्षा के लिये गुरुमुखी वर्णमाला बनाई और अपने धार्मिक भावों को म्लेच्छ भाषा (उर्दू-फ़ारसी) में प्रगट करना लज्जास्पद समझ अपने जातीय भावों की रक्षा के लिये हिन्दी की ही प्रतिनिधि पंजाबी भाषा प्रचलित की जिसका प्रमाण पाँचवें सिक्खगुरु श्री अर्जुनदेवजी की संग्रहीत पुस्तक (ग्रंथ साहिब) की रचना से मिलता है।

३—पुनरुत्थान।

इसके पीछे यवन-राज्य में भी विद्या-प्रेमी यवन-शासकों के गुणग्राही भावों से हिन्दी का फिर उत्थान (प्रकाश) हुआ और यह वह समय था जब कि संस्कृत तथा हिन्दी के दिव्य ग्रंथों की छाया साहित्य-रस प्राप्त करने के लिये उर्दू तथा फ़ारसी में ली गई।

४—सिक्खों के राज्य में हिन्दी।

जैसा कि ऊपर दिखाया जा चुका है सिक्ख गुरुओं ने आपत्काल में हिन्दी की रक्षा के लिये ही गुरुमुखी रची थी और जब वह विपत् टलगई तथा हिन्दी-सेवक गुरुभक्त सिक्खों को सुअवसर तथा साम्राज्य मिला, उन्होंने झट स्थान स्थान पर संस्कृत तथा हिन्दी की पाठशालायें स्थापित कर दीं तथा देश भर के गुरुद्वारों में हिन्दी-ग्रंथों (विचारसागर, योगवाशिष्ठ, हनुमान्नाटक आदि) का मान बढ़ा दिया और जगह जगह उपनिषद्, गीता आदि की कथायें खुलवा दीं। और थोड़ी देर में ही हिन्दी का यहाँ तक गौरव बढ़ा कि राज-कर्मचारी तथा राजकृत्य (स्टाम्प, मोहर, सिक्कों आदि) भी हिन्दी में हो गए। और यह सिलसिला सिक्ख-रियासतों में ही नहीं वरन अङ्गरेज़ी इलाक़े में भी १९ वीं सदी के अन्त तक नहीं तो उपान्त्य तक तो रहा ही, और इस दशा को अङ्गरेज़ी चाल ढाल से बड़ा धक्का लगा जिसमें कि पुराने रंग-ढंग की शालाओं के स्थान पर स्कूल खुल गए जिसकी साक्षी सरकारी काग़ज़ों से भी मिलती है जिनमें लिखा है कि "अङ्गरेज़ी राज्य से पूर्व देश में अनेकों अनियमित शालायें थीं जिनमें हिन्दी में पढ़ाई कराई जाती थी और ज्यों ज्यों सरकारी रीति भाँति के स्कूल खुलते गए त्यों त्यों ही घटती गईं। यहाँ तक कि आज उनकी संख्या अँगुलियों पर गिनी जा सकती है। हमारे ख़याल में इस ढंग से भी 'पञ्जाब' की हिन्दी, की गति में रोक पड़ रही है।

५—यूनीवर्सिटी की शिक्षा का परिणाम।

अन्य प्रान्तों में यूनीवर्सिटी की शिक्षा से देशी भाषाओं की चाहे उन्नति हुई हो पर पञ्जाब में तो इसके जारी होने से सर्वसाधारण में रोटी का प्रश्न उठ पड़ने तथा देशी-भाषा का स्थान उर्दू से रोके जाने के कारण (हिन्दु लीडरों के अविचार से) देश-भाषा हिन्दी को बहुत ही नुक़सान हुआ है, क्योंकि धर्म्म-शिक्षा से लोगों की रुचि सर्वथा हट गई थी।

६—स्वामी दयानन्दजी का काम।

हमारा ख्याल है कि इस समय में अगर स्वामीजी इस ओर दृष्टि न उठाते तो हिन्दी-सेवकों को पञ्जाब में हिन्दी के आसन के लिये नए सिरे से जगह बनानी पड़ती। सन् १८७० के पीछे स्वामीजी ने जहाँ लोगों को वैदिक धर्म में आने के लिये हिन्दी-भाषा द्वारा प्रेरा वहाँ वैदिक धर्म (आर्य्य समाज) में प्रविष्ट होनेवाले पुरुषों के लिये आर्य समाज के ३५ वें उपनियम तथा प्रवेशपत्र के नियम से हिन्दी

जानने का नियम बनाया जिससे सहस्त्रों परिवारों में हिन्दी का आदर हो गया।

७—पञ्जाब के साहित्य-सेवी।

स्वामीजी के अतिरिक्त अनेक और सज्जनों ने भी लेख तथा व्याख्यानादि द्वारा हिन्दी-साहित्य की उचित सेवा की है, जिनमें से कुछ नाम ये हैं—एक पण्डित भानुदत्तजी विशारद, २ पण्डित श्रद्धाराम फुल्लौरी, ३ पण्डित सत्यानन्द अग्निहोत्री ४ बाबू नवीनचन्द्रराय (ब्राह्मण) ५ लाला मुंशीलाल एम ए० ६ मालिक अखबार ए आम, ७ श्रीमती हरदेवी, धर्मपत्नी बैरिस्टर रोशनलालजी संस्थापिका 'भारत भगिनी, लाहोर, ८ श्रीहेमन्तकुमारो सुपुत्री बाबू नवीनचन्द्रराय, ९ पण्डित ज्वालादत्तजी। इन लोगों के पुरुषार्थ से एक मित्रविलास, दूसरा इन्दु, तीसरा स्वदेश-वस्तुप्रचारक, चौथा स्वदेशबन्धु, पाँचवाँ ब्रह्मविद्या-प्रचारक, छठाँ जीवन-पथ, सातवाँ क्षत्रियपत्रिका, आदि पत्र भी निकले थे पर शोक कि वे अब बन्द हैं।

८—सामाजिक पुरुषार्थ।

इन महात्माओं के पुरुषार्थ के पीछे पञ्जाब के हिन्दी-हितैषियों ने बड़े बड़े नगरों में हिन्दी सभायें भी स्थापित कीं जिनके द्वारा भी कुछ प्रचार हुआ पर यथेष्ट सफलता प्राप्त नहीं हुई जैसी कि अन्य प्रान्तों में होती रही है।

९—आर्यसमाज का प्रयत्न।

आर्य्यसमाज का पञ्जाब में सामाजिक बल बहुत बढ़ा हुआ है और उसके नियमोपनियमों में भी हिन्दीप्रचार पर ज़ोर दिया है। इसलिये उसने सबसे बढ़ कर इस ओर प्रयत्न किया और उसको इसमें यहाँ तक सफलता भी प्राप्त हुई कि हिन्दी जाननेवालों की संख्या लाखों तक पहुँच गई और प्रतिदिन बढ़ रही है। समाज के उपदेशक, वर्तमान पत्र, धर्मपुस्तक, दयानन्द ऐंग्लो वैदिक कालिज वा स्कूल, ऐंगलोसंस्कृत स्कूल गुरुकुल, संस्कृतपाठशालायें, कन्यामहाविद्यालय तथा कन्याशालाएँ देश में हिन्दी का मान बढ़ाने के लिये हर वक्त लगे रहते हैं। इनमें से केवल लाहौर का दयानन्द ऐंग्लो वैदिक कालिज इस समय २२ सौ से अधिक छात्र संख्या को न केवल हिन्दीज्ञाता वरन हिन्दीप्रचारक बना रहा है। इसमें हर एक विद्यार्थी को हिन्दी आवश्यक और मुफ़ पढ़ाई जाती है। इसके अतिरिक्त लाहौर, जालन्धर, अमृतसर, लुधियाना, अम्बाला, होशियारपुर, श्याम चौरसी, नूरमहल, फीरोज़पुर, मुक्तसर मुलतान, रावलपिण्डी, पेशावर, गुजराँवाला, इमनाबाद, क्वेटा, डेराइस्माइलखाँ, आदि आदि स्थानों के ऐंग्लो संस्कृत हाई स्कूलों तथा कन्या हाईस्कूलों में हिन्दी अनिवार्य्य रूप से पढ़ाई जाती है। इनमें पढ़नेवाले विद्यार्थियों की संख्या १५००० के ऊपर है। इसी प्रकार आर्य्यसमाज के विद्वानों ने आर्षग्रंथों के हिन्दी-अनुवाद द्वारा भी हिन्दी का प्रचार बढ़ाया है। जैसा कि द० ऐं० वै० कालिज के संस्कृत प्रोफैसर पं० आर्य्यमुनिजी ने छः शास्त्रों और ईशादि बृहदारण्यक पर्य्यन्त दशोपनिषदों तथा भगवद्गीता का हिन्दी में उत्तम भाष्य किया है। और पं० राजारामजी प्रोफ़ैसर द० ऐं० वै० कालिज ने भी आर्य्यग्रंथावली में अनेकों सद्ग्रन्थ भाषा में अनुवाद किए हैं और इसी प्रकार पञ्जाब आर्य्यप्रतिनिधिसभा के उपदेशक पण्डित शिवशङ्कर काव्यतीर्थजी ने "वेदतत्व-प्रकाश" के सिलसिले में पाँच छः उत्तम ग्रन्थ रचे हैं और लाला देवराजजी मैनेजर कन्या महाविद्यालय जालन्धर ने अनेकों ग्रन्थों का संकलन तथा अनुवाद किया है जिससे पञ्जाब की कन्याशालाओं की पाठ्यविधि को भारी लाभ हुआ है। इन्हीं सज्जनों की भाँति सम्पादक "आर्य्यप्रभा" भी पाँच सात वर्ष से ग्रन्थ लिखने और अनुवाद करने में संलग्न है, जिनमें एक शुद्ध रामनारायण दूसरी दम्पतिजीवन और हिन्दू-नर नारी विशेष प्रसिद्ध हैं।

१०—दफ्तरों में हिन्दी।

यद्यपि पञ्जाबी महाशय अभी तक संयुक्त प्रान्त की भाँति सरकारी दफ्तरों में हिन्दी नहीं करा

सके पर इन्होंने अपने बहुत से दफ़्तरों में हिन्दी करदी है जिनमें श्रीमती आर्य्यप्रादेशिक प्रतिनिधि-सभा पञ्जाब, सिन्ध, बलोचिस्तान, नागरी-प्रचारिणी कम्पनी लिमिटेड तथा आर्यप्रतिनिधि सभा पञ्जाब के दफ़्तर विशेष वर्णनीय हैं।

११—पञ्जाब के हिन्दीपत्र।

पञ्जाब में इस समय १ आर्यग्रन्थावली, २ भारतभगिनी, ३ पाञ्चालपण्डिता, ४ चान्द, ५ लक्ष्मीभंडार, ६ तत्त्वदर्शी, ७ जीवनपथ, ८ आर्यप्रभा, निकलते हैं इनमें पहिले ७ मासिक और अन्तिम साप्ताहिक पत्र हैं। इनके निकालने-चलाने में अधिकांश पुरुषार्थ आर्यसामाजिक पुरुषों का ही है।

१२—अन्य समाजों पर प्रभाव।

हिन्दी-हितैषी आर्यों का पुरुषार्थ सिर्फ़ आर्यसमाज में ही नहीं किन्तु अन्य समाजों पर भी पड़ा चुनांचि अमृतसर के बैजनाथ हाईस्कूल, फ़ीरोज़पुर के सिख कन्या-महाविद्यालय और देव-समाज का हाईस्कूलों में हिन्दी का पढ़ाया जाना इस प्रभाव का एक नमूना है।

१३—नागरीप्रचारिणी कम्पनी लि० का काम।

पंजाब के कतिपय हिन्दी-सेवकों ने यह समझ कर कि पंजाब में हिन्दी न फैलने का एक कारण यह भी है कि यहाँ कोई ऐसी कम्पनी नहीं जो सर्व-साधारण को उनकी रुचि के अनुसार हिन्दी में हर एक विषय की पुस्तक दे सके और पंजाब में अभी हर एक प्रकार का हिन्दी-साहित्य मिलता नहीं इसलिये उचित है कि बाहर से भी उत्तम पुस्तकें मँगाकर देने का प्रबन्ध किया जाय, इस ख़्याल से उपर्युक्त नाम से रजिस्टर्ड कम्पनी दो वर्ष से कायम की गई है और अब इसके सुयोग्य प्रबन्धकों ने न केवल बम्बई, कलकत्ता, काशी, प्रयाग से ही हिन्दी के उत्तमोत्तम ग्रंथ मँगाकर दिए हैं किन्तु कम्पनी ने अपनी पुस्तकें प्रकाशित करनी भी आरम्भ कर दी हैं। उनमें से सम्पादक 'आर्यप्रभा' द्वारा सम्पादित "शुद्ध रामायण" एक है।

१४—हिन्दी का अपमान।

इतना होने पर भी पञ्जाबियों में हिन्दी का ऐसा ही मान है जैसा कि बंगाली, मरहठा, हिन्दू, पञ्जाबी आदि स्वदेशी नाम विदेशी काम (रूप) रखनेवाले पत्रों में स्वदेशी भाषा व भावों का मान है। अर्थात् पञ्जाब में अहर्निशि हिंदी के स्तोत्र पढ़नेवाले आर्यगज़ट, प्रकाश, सनातनधर्मगज़ट, सत्यउपदेश, अर्जुन सेवक, ब्राह्मणगज़ट, ब्राह्मण, साधु पत्र ही म्लेच्छ वेश में नहीं हैं किन्तु हिन्दियों की आत्मा सन्ध्या, गायत्री आदि भी म्लेच्छ रूप में हैं और बहुत से स्थानों में तो हिन्दुओं के देवालयों पर उनके देव (इष्ट) का नाम तक भी यवन-भाषा में होता है। हालाँ कि वहाँ कभी किसी यवन का प्रवेश तक नहीं होता।

१५—जनसंख्या की रिपोर्ट से इसकी पुष्टि।

इतने प्रयत्न पर भी पञ्जाब में हिन्दी का अपमान ही है इसकी पुष्टि जनसंख्या से भी होती है जिससे जाना जाता है कि पञ्जाब में प्रति दिन हिन्दी-भाषियों वा लेखकों की संख्या घट रही है। देखो नीचे की अङ्कमाला।

१६—पञ्जाब में हिन्दी-भाषा।

१८८१ में हिन्दी-भाषी ४२११४९९ थे और १८९१ में ४१५७९६८ होगई और १९०१ में इससे भी कम होगई।

१७—हिन्दी-पुस्तक।

इसी प्रकार हिन्दी-पुस्तकों की घटती हो रही है। सन् १८७५ से १८८० तक जहाँ उर्दू में २५२९ पुस्तक और गुरुमुखी में ७८४ पुस्तकें लिखी गईं वहाँ हिन्दी में सिर्फ़ ७४५ पुस्तकें लिखी गईं। इसी प्रकार सन् १८८० से १८९० तक आपेक्षिक उर्दू-पुस्तकों में जहाँ ४५ फ़ी सदी से ४८ फ़ी सदी तक

और गुरुमुखी में १४ फ़ी सदी से २० फ़ी सदी बढ़ती हुई वहाँ हिन्दी में १३ फ़ी सदी से ९ फ़ी सदी तक पहुँच कर क्षति हुई।

१८—इस कमी का कारण।

स्पष्ट है कि महाराष्ट्र, बंगाल, मद्रास, संयुक्त प्रान्त, आदि की तरह यहाँ एक (प्राकृत) भाषा से ही युद्ध नहीं करना पड़ता किन्तु यहाँ राज-भाषा को छोड़ कर भी दो भाषा उर्दू और गुरुमुखी से युद्ध करना पड़ता है। और युद्ध में भी पञ्जाबी-हिन्दी-हितैषी उर्दू-सिपाहियों से किसी प्रकार का अधिक बल नहीं रखते। और हिन्दी-विरोधी-सिपाहियों की संख्या भी अधिक है। जिनको इसका परिचय न हो उन्हें नीचे के अङ्कों से स्पष्ट हो जायगा।

१९—पञ्जाब की जन-संख्या और हिन्दी।

सन् १९०१ की जन-संख्या में पञ्जाब की संख्या २६८८०२१७ है जिनमें १४५११८२० पुरुष और १२३६८३९७ स्त्रियाँ हैं। इनमें पठित केवल ९७६६६३ हैं, जिनमें ९३४२३१ नर और ४२४३२ नारी हैं। इनमें उर्दू जाननेवाले ३६७८७१, गुरुमुखी जाननेवाले १६८११८ और हिन्दी जाननेवाले १४७९५४ हैं। इस संख्या में स्त्रियों की गणना इस प्रकार है।

२०—स्त्रियों में हिन्दी।

उर्दू जाननेवाली स्त्रियाँ जहाँ ८८८४ और गुरुमुखी जाननेवाली १४६३० हैं वहाँ हिन्दी जाननेवाली सिर्फ़ ५७०१ हैं। स्मरण रहे उर्दू के पक्षपाती मुसलमान और गुरुमुखी के स्वामी सिक्ख अभी स्त्रीशिक्षा के हक़ में नहीं हैं और जब देश, काल की हवा ने इन्हें स्त्री-शिक्षा के अनुकूल बना दिया तब न जाने हिन्दी का क्षेत्र कितना संकुचित हो जायगा, यदि कोई विशेष उपाय न किया गया।

२१—गुरुमुखीप्रचार का कारण।

स्त्रियों में हिन्दी से त्रिगुण गुरुमुखी फैलने का कारण जहाँ एक सरकार की रुचि तथा गुरुमुखी भक्तों का अनवरत प्रयत्न है वहाँ हिन्दुओं का हिन्दी को न अपनाना भी है क्योंकि पञ्जाब में अब तक भी करोड़ों पुरुष हिन्दी को "ब्राह्मणी" भाषा समझते हैं न कि हिन्दुओं की सांझी राष्ट्रभाषा।

२२—दूसरा कारण।

यह भी है कि और प्रान्तों में हिन्दी सबसे सुगम तथा सुलभ भाषा मानी जाती है पर यहाँ वह स्थान गुरुमुखी ने लिया हुआ है इसलिये जन-साधारण की रुचि सब से प्रथम गुरुमुखी की ओर जाती है, कई ज़िलों में तो सरकार ने भी बिना प्रजा की रुचि के कन्याओं तथा बालकों के लिये गुरुमुखी स्कूल क़ायम कर दिये हैं और उन स्थानों में हिन्दी-भक्तों की वाणी बन्द है।

२३—इसका उपाय।

अब इसके बिना और कुछ नहीं कि (१) हिन्दू हिन्दी को अपनायें, (२) हिन्दी-सेवक हिन्दी की सुन्दर वर्णमालाएँ छपवा कर उसे सुगम वा सुलभ तथा सर्वलभ्य करें, (३) सरकार से हिन्दु इलाकों में हिन्दी की अनिवार्य शिक्षा के लिये प्रार्थना की जाय, (४) पंजाब की हिन्दी-सभाएँ नियमबद्ध हों तथा वे अपना एक सर्वोपयोगी पत्र (साप्ताहिक वा मासिक) निकालें और उसको सरकार से प्रार्थना कर हर एक कन्याशाला वा बालक-शाला में प्रचलित करावें, (५) हिन्दी सभाओं की एक प्रान्तिक सभा हो वह अपने उपदेशक नियत करे और वे उपदेशक स्थान स्थान पर हिन्दी के महत्त्व तथा सर्वहितकारी विषयों पर हिन्दी में उपदेश दें और इस क्रम का काम लगातार जारी रक्खें।

२४—सम्मेलन से प्रार्थना।

पञ्जाब में हिन्दी फैलाने के लिये मैं अन्त में सम्मेलन से भी प्रार्थना करना चाहता हूँ और

यह यह कि सम्मेलन आगामी अधिवेशन जहाँ पर पञ्जाब में हिन्दुसभा का अधिवेशन न हो उन्हीं दिनों वहाँ अपना अधिवेशन करें, और उसके प्रबन्ध के लिये आर्यप्रतिनिधिसभा, नागरी-प्रचारिणी कम्पनी, ब्राह्मण सभा, आर्यन ऐजुकेशनल कान्फ्रैंस हिन्दी सभाओं को प्रेरणा करे।

२५—ईश्वर की दया और कार्यसिद्धि।

अन्त में आशा रखता हूँ कि इस प्रकार के उपाय तथा पुरुषार्थ करने से ईश्वर परमात्मा की दया से "मनुष्य प्रयत्न ईश सहाय" के नियमानुसार हिन्दी-हितैषियों का काय सब प्रकार सिद्ध हो जायगा।

२६—क्षमा-अभ्यर्थना।

समाप्ति में मैं इस साहस के लिये जो इतने बड़े विद्वन्मंडल के सामने जो मैं ने बोलने का किया है और पञ्जाबी साहित्यसेवियों में से यदि किसी के कार्य का अज्ञानवश मुझसे उल्लेख न हुआ हो, तो उन से भी सच्चे हृदय से क्षमा की अभ्यर्थना करता हूँ। आशा है आप तथा वे सज्जन मुझे क्षन्तव्य समझ क्षमा करेंगे।

—:o:—

बुँदेलखंड में हिन्दी।

[बाबू गोविन्ददास लिखित।]

लेख लिखने का हेतु।

लगभग दो वर्ष के हुए बंगभाषा के प्रसिद्ध मासिक पत्र 'प्रवासी' में मैंने बंगीय साहित्य-सम्मिलन का विवरण पढ़ा था वह पहिला ही अवसर था कि जब 'साहित्य-सम्मिलन' यह प्यारा शब्द मेरे कर्णगोचर हुआ था। ज्योंही कि साहित्य-सम्मिलन शीर्षक लेख पर मेरी दृष्टि पड़ी थी मेरे हृदय में विद्युत् वेग से यह उत्कट इच्छा हुई कि बहुत ही अच्छा हो यदि हिन्दी भाषा की उन्नति हेतु भी साहित्य-सम्मिलन प्रति वर्ष हुआ करे। पर मेरे हृदय की चिर-सङ्गिनी निराशा ने भीतर से यह उत्तर दिया कि नहीं हिन्दी का ऐसा साहित्य-सम्मिलन हो ही नहीं सकता। हिन्दी के पूतों में ऐसी उदारता कहां, ऐसी मातृभक्ति कहाँ कि वे निज माता के दुःख-निवारणार्थ अपने व्यक्ति-संबन्धीय झगड़ों को भूल जाँय, उसके लिये कुछ शारीरिक श्रम उठायं, मातृ-पूजा के लिये भोग-विलासों को क्षण काल के लिये तिलांजलि दें। हिन्दी-भाषा की सहोदरा भगिनी बंगभाषा उन्नति करते करते भले ही सर्वाङ्ग-पूर्ण-भाषा बन जाय, मराठी भले ही उन्नति-गिरि की शिखर पर पहुँचे, उर्दू के पृष्ठ-पोषक भले ही उसकी उन्नति हेतु आकाश पाताल को एक कर दें पर क्या मजाल कि हिन्दीवाले इस विषय में चूं भी करें, वे ज़रा भी करवट बदलें। प्रिय पाठको! स्थिति थी तो ऐसी ही है—और इसके पूर्व जब जब मैंने हिन्दी की उन्नति हेतु संकल्प किए हैं तब तब निराशा के दिए हुए उत्तर ठीक निकले हैं पर अबकी बार निराशा का दिया हुआ उत्तर ठीक नहीं निकला। मेरी यह हृत्कामना कतिपय हिन्दी-प्रेमियों के हृदय से जा टकराई और परिणाम यह हुआ कि माता हिन्दी के सच्चे सपूत नागरी-प्रचारिणी-सभा के प्राण बाबू श्यामसुन्दरदास ने साहित्य-सम्मेलन के हेतु समाचार-पत्रों में विज्ञापन निकाला, बस फिर क्या था, प्रत्येक समाचार-पत्र में सम्मेलन के विषय में लेख पर लेख निकलने लगे। यद्यपि पूर्व दिशा से केवल समय नियुक्ति के विषय में इसका कुछ विरोध किया गया पर लोगों के हृदय में जो जोश भरा हुआ था वह प्रशान्त महासागर की नाईं उमड़ पड़ा और प्रातःस्मरणीय देश-गौरव, माननीय श्रीयुक्त पंडित मदनमोहन मालवीय के सभापतित्व में पुण्य-पुरी, साहित्य-केन्द्र काशी में हिन्दी का प्रथम साहित्य-सम्मेलन हो रहा है। उसमें उपस्थित करने के लिये मैंने यह लेख लिखा है। इसका नाम है 'बुंदेलखंड में हिन्दी' है। बुंदेलखंडी होकर मेरा यह कर्तव्य ही था कि इधर उधर की चर्चा न छेड़कर अपने घर ही की चर्चा सब लोगों को सुनाऊँ। अस्तु।

सब से पहिले मैं यही दिखाना चाहता हूँ कि बुँदेलखंड के जल-वायु में क्या ऐसा कोई गुण है कि जिससे लोगों की रुचि साहित्य की ओर आकृष्ट हो, उनको कविता देवी के मंदिर में जाने की इच्छा हो, यहाँ के जल वायु के प्रभाव से मनोविनोद व चित्त-शांति की कुछ सामग्री साहित्य-विटप वा कविता-कुंज की सघन छाया में ढूँढ़ें।

उत्तर में कहना पड़ता है कि हाँ है, अब चाहे आप इसे जन्मभूमि का पक्षपात ही समझिए, चाहे यथार्थ कथा ही समझिए, मुझे तो बरबस यही कह आता है कि बुँदेलखंड एक अति ही विचित्र पथिक-चित्ताकर्षक, सरलतापुंज व मनोरम दृश्यों से परिपूर्ण प्रान्त है। प्रकृति देवी ख़ूब ही आज़ादी के साथ बिना किसी झेंप के अपने पूरे पूरे खेल इस प्रान्त के जंगल व पहाड़ों में खेलती है। कलकल-नादिनी केन की किलकोटें गिरि-गोद में देखो, तीव्र वेग से सहस्रों हाथ नीचे गिरते हुए व उस पर चादर सा

तानते हुए जलप्रपातों को देखो, नाना पशु-पक्षी परिपूर्ण विन्ध्याचल की शृङ्खला की शृङ्खला देखो, धसान व वेतृवंती के भयङ्कर पर तिस पर भी मनोहर किनारों को देखो, आम जामुन के सुखद शीतल कुंज देखो, वट विटप की सघन छाया देखो। चित्त कैसा ही चिन्तित हो, हृदय कैसा हो व्याकुल हो उपर्युक्त स्थानों में कहीं भी जाकर सन्नाटे में बैठ जाइए, थोड़े ही काल में चित्त को अजब ठंढक मिलेगी, दिल को अजब राहत होगी, सारी चिन्तायें नष्ट हो जायँगी। प्रकृति का सौन्दर्य्य देखकर परमात्मा प्रेम का एक स्रोत झलझल हृदय-भूमि में बहने लगेगा, विमल विचारों की तरंगमाला से सारा हृत्क्षेत्र हिल्लोलित हो उठेगा। अधिक क्या कहूं यह भूमि एक तपोभूमि है। गुरु गोरखनाथ, शृङ्गी ऋषि, तथा अगस्त्य ऋषि आदि ने तप करने के लिये इसी भूमि को उचित समझा। जन्म-भूमि अवधपुरी से निर्वासित, राज्य-पाट से वंचित" जगत्पिता श्रीरामचंद्र को स्वयं यदि चित्तविनोद व चिन्तानाशन की कुछ सामग्री मिली तो बुँदेलखंडान्तर्गत चित्रकूट* ही में मिली।

कवित्व-शक्त्योत्पादिनी दृष्टि से देखिए तो प्रायः जितने सुप्रसिद्ध वा प्रतिभाशाली कवि हिन्दी जगत् में हुए हैं वे सब बुँदेलखंड ही में हुए हैं। क्या आप नहीं जानते कि हिन्दी के काव्याचार्य केशवदास ओड़छे के थे? क्या आपको अविदित है कि भिखारीदास व पद्माकर का शरीर बुँदेलखंडी मिट्टी ही का बना था? क्या इसके कहने की आवश्यकता है कि पन्ना ने पजनेश व बिजावर ने ठाकुर को पैदा किया था? आज तक भी हिन्दी-कविता का गगनमंडल बुँदेलखंड के जाज्वल्यमान तारों से झिलर मिलर हो रहा है। फिर कहना पड़ता है कि यहाँ के मनोरम प्राकृतिक दृश्यों में, यहाँ के अन्नजल में, यहाँ के रूप-रंग में, यहाँ के पहनाव उढ़ाव में, यहाँ के रहन-सहन में इतना पवित्र, सरल वा कवितोत्पादक गुण है कि पुरुषों की तो बात ही क्या स्त्रियों तक ने कविता की है और इस गए गुज़रे जमाने में भी करती हैं। रसिक-प्रिया की प्रवीनराय पातुर साहित्य-जगत् में सुप्रख्यात ही है। चरखारी व टीकमगढ़ की कई रानियों के नाम से (खेद कि मुझे इस समय इन श्रीमतियों के नाम याद नहीं आते) ग्रंथ प्रकाशित हुए हैं। बुँदेला बाला* की मधुर कविता का स्वाद विविध मासिक पत्रिकाओं में मिला ही करता है।

यहाँ के राजे, महाराजे स्वयं कवि वा कवियों के कदरदां व आश्रयदाता रहते आये हैं—ओड़छा के महाराजा इन्द्रजीत, पन्ना के छत्रसाल, चरखारी के महाराज विजयबहादुरसिंह ये सब सुप्रसिद्ध कवि हैं। यहाँ के अन्न जल में एक अद्भुत गुण यह है कि ये विजातियों में भी हिन्दूपन के आचार-विचार आरोपित करके उनको हिन्दू सा बना लेते हैं यहाँ तक कि बुँदेलखंड की यवन-समाज एक भाँति हिन्दू ही है वे बहुत से हिन्दुओं के त्यौहारों को मानते हैं हिन्दुओं की तरह पाक साफ़ रहते हैं, शीतला निकलते समय वे देवी की पूजा करवाते हैं। विवाह में यत्र तत्र हिन्दुओं कीसी गालियाँ गाते

* महात्मा तुलसीदासजी चित्रकूट-महिमा वर्णन करते हुए कहते हैं

"सब शोच विमोचन चित्रकूट।
कलि हरण सकल कल्याण कूट॥
शुचि अवनि सुहावनि आलबाल।
कानन विचित्र बारी विशाल॥
शाखा सुशृङ्ग भूरुह सुपात।
निरझर मधुवर मृदु मलय वात॥
शुक पिक मधुकर मुनिवर विहार।
साधन प्रसून फल चारु चारु॥

* खेद है कि यह होनहार लेखिका हाल ही हाल में अपनी ऐहिक लीला-संवरण करके हिन्दी-साहित्य-जगत् में अँधेरा कर गई है और एक ऐसा स्थान खाली कर गई है जिसके पूर्ण होने की चिरकाल तक सम्भावना नहीं।

हैं। नाम भी कुछ कुछ हिन्दुओं के से होते हैं। बोली बानी का लहजा वही, कपड़ों की काट छाँट वही, गाने के गीत वही, रहने की रीति वही, सारांश यह कि यहाँ की प्रकृति में, यहाँ के अन्न जल में ऐसे बहुत से गुण प्रस्तुत हैं कि जो हिन्दी की उन्नति वा हिन्दी-प्रचार में अधिक सहायक हो सकते हैं।

बुंदेलखंड की आदि-भाषा हिन्दी ही है।

जहाँ तक पता लग सकता है उसके आधार पर कहा जा सकता है बुंदेलखंड की आदि भाषा हिन्दी ही है, हाँ इतना है कि बुंदेलखंड को हिन्दी को हम ग्रामीण हिन्दो वा घरू हिंदी कहें तो अच्छा है—क्योंकि स्त्रियों में व बालबच्चों में बोलने के कारण इसका असली रूप न रह कर रूपान्तर सा हो गया है। किसी ग्राम, पहाड़, तालाब, मनुष्य, वगैरः का नाम ले लीजिए उसके टुकड़े करने से या उसका व्याख्यान करने से यह अवश्य विदित होगा कि इसको यह नाम हिन्दी-भाषा-भाषी ने दिया है, टीकमगढ़, अजयगढ़, राजगढ़, राजनगर, हृदयनगर, रायनगर, छतरपुर, रामपुर वगैरः नामों में 'गढ़' 'नगर' 'पुर' शब्द स्पष्ट रूप से कह रहे हैं कि ये उस प्रांत के ग्राम हैं जिनमें हिन्दी बोली जाती है। इसी तरह से 'मनियागिरि' विंध्याचल' ये 'गिरि' वा 'अचल' चिल्ला कर कह रहे हैं कि हम हिन्दी के नाम हैं। तालाबों के नाम में 'सागर' ग्राम तौर से रहा ही करता है। पुरुष वा स्त्रियों के नाम में तो हिन्दीपन रहता है ही। 'बुंदेलखंड' शब्द में स्वयं 'खंड' शुद्ध हिंदी शब्द है। यदि बहुत से बुंदेलखंडी शब्दों की व्युत्पत्ति का पता लगाते लगाते हम चलते हैं तो अंत में उनके शुद्ध स्वरूप तक पहुँच जाते हैं। जैसे 'निनौ' यह एक ठेठ बुंदेलखंडी शब्द है। इसके विषय में जब हम ढूंढ़ खोज करते हैं तो मालूम करते हैं कि यह 'निर्णय' शब्द का अपभ्रंश है और अपढ़ वा अबलासमाज में पड़ कर इस शब्द की यह दुर्गति हुई है। इसी तरह से 'डांड़' 'दंड' शब्द का, 'सविधि रसोई' को कहेंगे 'सवीदी रसोई' इत्यादि इत्यादि, पांड़े के यहाँ भी जो आदि में शिक्षा दी जाती है उससे भी पता लगता है कि हिन्दी ही पढ़ाई जाती थी, 'खरी' 'पाटी' चणायके जो कि सम्भवतः 'अक्षरी' 'पाठ' वा 'चाणक्य' के अपभ्रंश हैं सब हिन्दीपन का पता देते हैं।

हाँ एक बात इसके विरुद्ध कही जा सकती है। वह यह है कि बुंदेलखंड में कलदार (अँगरेज़ी सिक्के) रुपए के प्रचलित होने के पूर्व के ऐसे बहुत से सिक्के हैं कि जो चलते तो देशी राज्य में थे पर अक्षर उनमें उर्दू के अङ्कित हैं, यह बात तो ठीक है पर इसका कारण ढूंढ़ने में हमको कुछ बहुत देर नहीं लगती। इस प्रकार के जितने सिक्के हैं जैसे राजाशाही, गजाशाही, श्रीनगरी, दतियाशाही, बालाशाही इत्यादिक, वे सब उस समय के हैं जब कि भारत में यवन साम्राज्य था। चूंकि बुंदेलखंड भी किसी न किसी रूप में इन्हीं के अधीन था अतः चाहे चाटुतावश समझिए, चाहे दबाववश, इन सिक्कों पर उर्दू के अक्षर अङ्कित होते थे—और उसी समय से उर्दू ने दफ़्तर वा कचहरियों में स्थान पाया था—पर हर्ष का विषय है कि गवर्नमेंट का ध्यान इस ओर आकर्षित किया गया है और वह दिन दूर न होगा जब कि हम नवीन सिक्कों पर हिन्दी के अक्षर अङ्कित देखेंगे। कचहरियों व दफ़्तरों में भी हिन्दी धीरे धीरे स्थान पा रही है।

प्राचीन काल में बुंदेलखंड में गद्य हिंदी।

पुराने समय की जितनी किताबें मिली हैं वे सब पद्य ही में मिली हैं यहाँ तक कि जोतिष, वैद्यक, हिसाब-किताब तक की किताबें पद्य ही में मिली हैं, प्राचीन काल के लोगों की यह रीति ही थी कि जितनी किताबें लिखते थे वे सब पद्य ही में लिखते थे। इसका कारण यह था कि पद्य की लिखी हुई किताबें आसानी से कंठस्थ हो जाती थीं और दूसरे यह कि ग्रंथकर्त्ता को पद्य में लिखने के कारण अपने पांडित्य के परिचय देने का विशेष अवसर मिलता था। यद्यपि संवत् ७

इत्यादिक की गद्य हिन्दी का मिलना दुष्कर है तब भी हम अपने पाठकों को पद्माकरी गद्य हिन्दी का कुछ नमूना दिखाते हैं। हितोपदेश का गद्यानुवाद कवि पद्माकरजी ने किया है। आप कहते हैं–

"तातें हमारी तुम्हारी प्रीति की रीति अनुचित है तब काग कही कै भो मित्र हिरन्यक में तेरो कह्यौ उपदेस सब सुन्यौ तो भी मेरे मन ये ही विचार है कै तो सों प्रीति करौं नाहीं तो तेरे बिल के द्वारे उपास करि करि प्रान छोड़ूँगौ यह में निहचै करि चुक्यौ काहे तै कै तोसो चतुर तो सो मतिमान और दूजो कौन कों कहां पायहों जासों प्रीति करों तातें मित्र रहित जो मैं हों ताकौ मरि जायवो ही सलाह है तब हिरन्यक बिलतें बाहर निकसि आवत भयो........."।

यह अबसे लगभग सौ वर्ष पहिले की बुंदेलखंड की गद्य हिन्दी है अर्थात् सन् १८२० के लगभग की। दतिया के कुमार मणिक कवि की भी कुछ गद्य उन्हीं के ग्रंथ "रसिक रसाल" में देखी जाती है पर उसकी शैली ऊपर लिखी हुई ठीक पद्माकरजी की शैली से मिलती है, इनकी गद्य सन् १७६० के लगभग की गद्य हिन्दी कही जा सकती है।

आज कल भी पत्र व्यवहार में बुंदेलखंड में दो तरह की हिन्दी प्रचलित है जो हिन्दी की प्राचीन प्रथा पर लिखी जाती है। वह और तरह की है और जो मदरसे के नवशिक्षित अंग्रेज़ी पढ़े-लिखे लोग लिखते हैं वह और तरह की है। अन्त्योक्त प्रकार की हिन्दी तो वही है जिस को कि आधुनिक हिन्दी कहते हैं और जो बहुधा आज कल के अख़बारों वा उपन्यास वगैरः में प्रयुक्त होती है अतः इसके नमूने के लिखने की कोई आवश्यकता नहीं, प्रथमोक्त का जब तक कुछ नमूना पेश न किया जायगा तब तक आप लोगों को यहाँ के प्राचीन प्रथा के पत्र-व्यवहार की हिन्दी का पूर्ण अनुमान न होगा। देखिए नीचे एक पत्र लिखा जाता है जो कि प्राचीन प्रथानुसार है—

"सिद्धि श्री शुभस्थाने जोग राम राम लिखी जैतपुर से आपर श्री भैया रामप्रशाद को जगन्नाथ की राम राम पहुँचै, आपर वहाँ के समाचार सदा भले चाहिये ता पीछे आप की कृपा से यहाँ के समाचार भले हैं आपर बहुत दिनन से आप की खुशी, आनंदी की खबर नहीं पाई सो बड़ो दुसनई है सो देखत चिट्ठी के जरूर लिखवी जादां का लिखें मिती कातिक बदी ७ सं १९६७ मुः जैतपुर"

दरबार से जो परचा ख़ज़ाने के नाम लिखा जायगा इस तरह लिखा जायगा

ख़ज़ाना सदर

आपर दैवी हरदास मुत्सद्दी को जून की तनख़ाह के मद्दें

२०)

अंकन बीस रुपया कलदार = ताः २९ अक्तूबर १९१०

दः अफ़सर

बुंदेलखंड में पद्य हिन्दी।

इसकी बुंदेलखंड में भरमार है। इसी के कारण बुंदेलखंड हिन्दी काव्य-जगत् में सर्वोत्कृष्ट स्थान पा सका है। बुंदेलखंड का सारा महत्त्व वा गौरव इसी के कारण है। इसी के सबब से अन्य प्रान्त-वासियों को बुंदेलखंड को 'वन्य" व "वर्बर' कहने का साहस नहीं होता। यही हम बुंदेलखंडियों की अक्षय पूंजी है, यही हमारा अमूल्य धन है, यही हमारी प्राचीन सभ्यता, प्राचीन गौरव, वा प्राचीन पांडित्य का हम को स्मरण कराती है। इसी शीतल समीर के झोंके कभी कभी हमारे मनोदेश को विमल आनंद से परिपूर्ण कर देते हैं। यही हमारे देश का सच्चा व पवित्र इतिहास है, यही हमारी सभ्यता का कच्चा चिट्ठा है, इन्हीं डिब्बों में हमारे पूर्वपुरुषों के अमूल्य व उच्च विचार बंद हैं, इन्हीं में गुप्तरीति से बैठे बैठे वे अब भी हमको सिखावन दे रहे हैं।

यों तो विक्रमीय संवत् से लगा कर आज तक बुंदेलखंड में असंख्य कवि हुए होंगे। हर संवत्

में पचास पचास, साठ साठ कवि हुए होंगे पर चूंकि बहुत प्राचीन समय की बात है इसलिये उनकी कविता का मिलना एक भाँति दुर्लभ ही है। काशी की नागरीप्रचारिणी सभा ने अपनी खोज में ऐसी ऐसी किताबों का परिचय दिया है जो संवत् ६, ७, वा ८ तक में लिखी गईं थीं पर चूंकि वे किताबें मुझको नहीं मिलीं अतः मैं उनकी कविताशैली का आप लोगों को परिचय कराने में लाचार हूँ। जो जो संवत् कि नाम लेने योग्य हैं वा जिन में बुंदेलखंड के प्रतिभाशाली कवियों ने एक युगान्तर सा पैदा कर दिया है वे वेही संवत् हैं कि जिन में पदमाकर, तुलसीदास, केशव वा ठाकुर इत्यादिक हुए अर्थात् संवत् १६, १७, वा १८। यदि विक्रमीय संवत् में से ये तीनों संवत् निकाल लिये जायँ तो बुंदेलखंडीय काव्य-साहित्य महत्त्व के विचार से अवशिष्ट संवत् बिलकुल साहित्य-शून्य वा असारगर्भित रह जांय और बुंदेलखंडीय साहित्य बाग़ बिना गुलाब, चम्पा, चमेली के रह जाय, या यों कहो कि यहाँ के काव्य-साहित्य-गगन में सूर्य्य, चांद, व दीप्तमान् तारे एक न रहें। केवल क्षण काल के लिये जुगजुगानेवाले अनन्त तारागण रह जांय या यह कि यहाँ की साहित्य देवी का मुकुट-मणि अनन्त दीप्तिमय रत्नों से रहित हो जाय। इन लोगों की कविता आदर्श कविता है। इन लोगों के ग्रंथ अलमारियों में सबसे ऊँचा स्थान पाने के योग्य हैं।

पर अब कुछ दिनों से और प्रान्तों की देखा-देखी बुंदेलखंड में भी कविता-सरित का प्रवाह बदला है और ब्रजभाषा के स्थान में अब खड़ी बोली की कविता होने लगा है। यह परिवर्तन अच्छा ही हुआ है, इसकी आवश्यकता भी थी। नायिकाभेद का मैदान बिलकुल तङ्ग हो गया था और समय भी अब इस प्रकार की कविता नहीं माँगता। और पदमाकर, बिहारी, देव, ठाकुर वगैरः के आगे हमारे नायिका भेद को पूछता भी कौन है। इसलिये इस चर्वित चर्वन से कोई लाभ न था, अतः खड़ी बोली की कविता का यहाँ भी अनुकरण किया गया है और इस बोली में बहुत सी कवितायें कर डाली गईं हैं—'वीर क्षत्राणी, वीरबालक, वीरप्रताप, कृष्ण-जन्मोत्सव, बुंदेलखण्ड फोटो, चाकरी वा खेती, आर्तपुकार वगैरः कवितायें इस प्रकार के उदाहरण हैं। पर ज्ञात रहे कि खड़ी बोली की कविता बुन्देलखण्ड के उन्हीं कवियों में सीमाबद्ध है जिनको समाचारपत्रों से रुचि है वा जिनको समय के चिह्न वा साहित्य वा कविता की गति की अच्छी पहिचान है। प्राचीन प्रथानुगामी जो कवि हैं वे अब भी नायिका, अलङ्कार के चक्र में उछल-कूद करते जाते हैं और नवीन छन्दों में वा नई चाल की कविता करना मानों अपनी मानहानि समझते हैं। कवियों का एक और समूह है जो यद्यपि पढ़े लिखे तो कम हैं पर हाँ बुंदेलखंडी महावरा व भाषा पर अच्छा आधिपत्य (Command) रखते हैं। यह अधिकतर 'फाग, दादरा, सैर वगैरः गाने की चीज़ें बनाते हैं। अधिकांश नवयुवकों के मस्तिष्क के ढालने का ठेका इन्हीं के हाथ में रहता है। नये ख्यालात की कविता का प्रचार तो केवल शिक्षित समाज ही तक सीमाबद्ध रहता है। पर इनकी कविता अपढ़ों में (जिनकी संख्या कि हमारे अभाग्य ही हमारे यहाँ कम नहीं है) गुण्डों में, नवयुवकों में, स्त्रियों में, भोली भाली निर्दोष बालक-बालिकाओं में दावानल की नाईं पैठी जाती है और भलाई की अपेक्षा बुराई अधिक करनेवाली होती है। इन लोगों की कविता फ़साहत वा महावरे के विचार से बहुत ही उच्चश्रेणी की होती है पर खेद है कि इनका आशय नवयुवकों पर बुरा प्रभाव डालनेवाला होता है और यह विषमाग्नि को अधिक प्रज्वलित करनेवाली होती है। मानो इन की कविता सुन्दर वस्त्र वा मनोहर आभूषणों से आभूषित एक गणिका नायिका है। यदि इनकी कविता का केवल आशय भर अच्छा होने लगे तो सौ शिक्षित कवियों की नवीन ढङ्ग की कविता से इतना उपकार नहीं हो सकता जितना कि इनकी एक सदाशयात्मक फाग, दादरा वा सैर से।

केवल यह दिखाने के लिये कि इनको बुंदेलखंडी भाषा वा महावरों पर कितना अधिकार है इन कवियों की कुछ कविता आप लोगों को सुनाता हूँ। आशा है कि इनकी अश्लीलता को प्रसंग की प्रयोजनीयता समझ कर आप क्षन्तव्य समझेंगे।

सैर—सुन्दर सरूप गौर बदन मदन सजारी।
मुखचन्द्र नासिका पै दुर परो हज़ारी॥
कह भैरौं लाल आ मिल ले लूट मजा री।
जे पैजना पगन के पापिन न बजारी॥

फाग—जौ घर सौत सौत के मारैं
सौंज बनै ना न्यारैं।
भीतर होवे गारी गुपता
लगो तमासो द्वारैं॥
अपनी अपनी कोदीं झौंकैं
खसम खाँ फारे डारैं।
ईसुर एक म्यान में बनती
कैसे दो तरवारैं॥
हम खां प्रीति पछारूं खटकी।
गैल न मानी हटकी॥
बैठे रहत हते निशि वासर
गैल तकै पनघट की
दोष कछू काहू को नैयाँ
करम लिखी सो टटकी
गङ्गाधर कहैं अपने हाथन
पाँव कुल्हारी पटकी॥

पर यहाँ इतना बिना कहे हुए नहीं रहा जाता कि हम लोग जो नई ढङ्ग की कविता करनेवाले हैं और अपनी कविता का कुछ गर्व (चाहे वह गर्व अच्छा हो या बुरा) भी रखते हैं ऐसी कविता नहीं कर सकते जो शृङ्गार राह में पदमाकर बिहारी वगैरः की कविता की छाया तक को छू सकै और न खड़ी बोली की भी ऐसी कविता कर सकते हैं जो प्राचीन कालीन खड़ी बोली की कविता को छू सकै। हम वर्षों क्या युगों कविता करें पर सम्भव नहीं कि ऐसी ललित, मधुर भावपूर्ण वा चित्र सा खींच देनेवाली कविता कर सकैं, जैसी कि नमूने के बतौर कुछ थोड़ी सी नीचे दी जाती है।

पदमाकर-हास-(बाँदा)

चन्द्रकला चुनि चूनरी चारु
दई पहराय लगाय सु रोरी
बैनी विशाखा रची पदमाकर
अंजन साजि समाज कै गोरी
लगी जबै ललिता पहिरावन
कान्ह को कञ्चुकी केसर बोरी
हेरि हरै मुसक्याय रही
अँचरा मुख दै वृषभान किशोरी॥

विभ्रमहाव-पदमाकर।

बछरै खरी प्यावै गऊ तिहि को
पदमाकर को मन ल्यावत है।
तिय जानि गिरे यों गही बनमाल
सुऐंचे लला इत्यो आवत है।
उलटी करि दोहनी मोहिनी की
अंगुरी थन जानि कै दाबत है।
दुहिवो औ दुहायवो दोउन को
सखि! देखत ही बनि आवत है॥

देव—उद्वेग दशा—(ये बुंदेलखण्ड के नहीं हैं)
ताप चढ़े ज्यों चढ़ावत चन्दन
राखत चांदनी चैन रितै कै
फूल निहारत सूल उठै री
फुलेल भगैं खुल खेल वितै कैं।
देव! दुरे कब लौं रहिये जु
अनोखे नये यह नेह नितै कै
आँखन ओट ही राखि भटू!
चित चोट सी लागत चंद चितै कै॥
भेष भये विष भावै न भूषण
भूख न भोजन की कछु ईछी।
मीच की साध न सोंधे का साध न
दूध सुधा दधि माखन छीछी॥

चन्दन तें चितयो नहिं जात
चुभी चित माँहि चितौन तिरीछी।
फूल ज्यों सूल सिला सम सेज
बिछौनन बीच बिछी जनु बीछी।

ठाकुर, (बिजावर)

बरुनीन हो नैन झुकै उझकैं,
मनो खंजन मीन पैजाले परे।
दिन औध के कैसे गिनौं सजनी,
अँगुरीन के पोरन छाले परे॥
कवि ठाकुर काहु सों का कहिये,
हमें प्रीति किये के कसाले परे।
जिन्हें आँखन ओट न कीजत ते,
तिन्हें देखवे के अब लाले परे॥

पजनेश (पन्ना)

अलबेली अली पै धरैं भुज को,
अंगरानी जँभाई चितै त्रिवली।
सरक्यो शिर चीर गिरयो कटि छ्वै,
पजनेश प्रभा की जगी अवली॥
परबैं जड़ी बाल की बैनी बँधी,
झलकैं मुकताली कपोल थली।
विधु के रथ चकित चक्र मनौं,
कल कैंचुली नागिन छांड़ चली॥

केशव (ओड़छा)

सीखे रसरीति सीखे प्रीति के प्रकार सबे,
सीखे केशवराय मन मन को मिलायबो।
सीखे सोहैं खान, नट तान, मुसक्यान, सीखे,
सीखे सैन बैनन में हँसवो हँसायबो॥
सीखे चाह, चाह सों जो चाह उपजायबे की,
जैसे कोऊ चाहै चाह तैसी वाहि चाहिबो।
जहाँ तहाँ सीखे ऐसी बातें घातें तातें तब,
तहाँ क्यों न सीखे नेक नेह को निबाहबो॥

बोधा (पन्ना)

चाँदनी सेज जरी की जरी,
तकिया अरु गैंडुआ देख रिसातीं।
राती हरी पियरी लगी झालरैं,
केसर डारी बिरीं नहिं खातीं॥
बोधा इते सुख पै न रमैं उत,
कारो औ सावरे रूप सिहातीं॥
यार के साथ पयार बिछाय कैं,
डीलन में नित खेलन जातीं॥

तुलसी (बाँदा)

बिरह आग उर ऊपर जब अधिकाय।
ये अँखिया दोउ वैरिन देय बुझाय॥
डहकुन है उजयरिया निशि नहिं घाम।
जगत जरत अस लागत मोहि बिनु राम॥
अब जीवन की है कपि आश न कोय।
कनगुरिया की मुंदरी कंकन होय॥

प्रभाकर (दतिया)

मोहन ! तिहारे बर विरह विथानल के,
हाल कहबे में कथा नल की सिरातीं सीं।
कहत कवीन्द्र प्रभाकर बिचारीं ब्रज बाल,
ही पै ज्वालन के जहर जगातीं सी॥
वे ई कुंच कौल कल कदम कलिंदी कूल,
बानी कल हंसन की कहर कितातीं सीं।
जाती फेर जातीं पौन घातीं प्राणघातीं,
तातीं किरनैं कलानिधि की लागैं कामकातीं सीं॥

बुंदेलखंड में हर विषय की वा हर प्रकार की कविता मौजूद है।

साधारणतः विचार करने से पहिली दृष्टि से यही मालूम होता है कि प्रसिद्ध कवियों की तरह यहाँ के कवि केवल श्रृङ्गार रस ही में अपना पांडित्य सर्वस्व दिखाते रहे हैं, केवल अलङ्कार वा नायिका

भेद ही उनकी कविता का उद्देश्य रह आया है, उन्होंने ईश्वर की सुन्दरता का नशा सिवाय मुग्धा मध्या के और किसी प्राकृत पदार्थ में नहीं देखा, पर नहीं जब हम ध्यान की आँख से देखते हैं तब हमको यह बात नहीं मालूम होती। हम मालूम करते हैं कि यहाँ के कवियों ने न केवल अलङ्कार, नायिका ही पर कविता की है वरन् प्राकृतिक पदार्थ जैसे गिरि, नदी, नगर, चन्द्र, वन, उपवन सभी का सौन्दर्य्य देखने को इनकी आँख खुली रही है, 'गंगाजी' के सौन्दर्य्य को देखना चाहो तो पदमाकर कृत 'गङ्गालहरी' पढ़ो, केशव ने 'बेतवा' व 'ओछड़े' नगर का वर्णन किस ख़ूबी के साथ किया है। उर्दू के शायर 'रोज़मर्रा' पर मर रहे हैं। हमारे 'ठाकुर' की कविता पढ़ो जो 'रोज़मर्रा' की एक जीता जागता चित्र है। वीररस का स्वाद चखना चाहो तो चरखारी के खुमान कवि की हनुमान-पच्चासी वा लक्ष्मण शतक पढ़ो, भक्ति मार्ग को वा विनय को लो तो महात्मा तुलसी दास के ग्रन्थ पढ़ो। दफ़्तर कचहरियों के काम से वाक़िफ़यत करना चाहो तो तेजसिंह का दफ़्तरनामा व फ़तहसिंह की दस्तूर मालिका पढ़ो, वैद्यक और ज्योतिष वग़ैरः के ग्रन्थ कवितावद्ध मौजूद हैं। बोधा, पजनेश व हंसराज की कविता प्रेम के रंग में शराबोर डूबी हुई हैं। सारांश यह कि हर प्रकार की कविता यहाँ मौजूद है। यदि हरएक का उदाहरण दिया जायगा तो लेख बहुत बढ़ जातगा इसलिये यहाँ दो ही एक उदाहरण देना अलम् समझता हूँ।

शरद्चन्द्रवर्णन (पदमाकर)

तालन पै ताल पै तमालन पै मालन पै,
वृंदावन बीथिन बहार बंशीबट पै।
कहै पदमाकर अखण्ड रासमंडल पै,
मंडित उमंड यही कालिंदी के तट पै॥
छिति पर छान पर छाजत छतान पर,
ललित लतान पर लाड़िली की लट पै।
छाई भले आई यह शरद जुन्हाई,
जेहि पाई छबि आजही कन्हाई के मुकुट पै॥

रोज़मर्रा (ठाकुर)

हम एक कुराह चलीं तो चलीं,
हटकौ इन्हें ये न कुराह चलैं।
यह तो वलि आपनौ सूझन है,
प्रण पालिये सोई जो पालै पलैं॥
कह ठाकुर प्रीति करी है गुपाल सों,
टेरैं कहैं सुनो ऊँचै गलैं।
हमैं नीकी लगी सो करी हमने,
तुम्हैं नीकी लगै ना लगै तो भलैं॥

वीररस (खुमान)

हनुमंत की लपेट दै लंगूर की झपेट दल,
दुष्ट को दपेट चपेट चाखलान।
बजै नख चटाचट्ट दन्त होत खटाखट्ट,
गिरैं सैन घटाघट्ट फूटि फूटि पारजान॥
कपि कूह किलकार खलजूह झिलकार,
परी पट पिलकार कटैं राक्षस निदान।
तहँ तेज को कुमार करि कोप बेशुमार,
वीर लच्छन कुमार झुकि झारी किरवान॥

प्रेम-पांडित्य (बख्शी हंसराज पन्ना)

"मेरे और बहुत सी गैयां तिनकी ओर न हेरौं
"मो कहँ आन नंद बाबा की गाय तिहारी घेरौं
"बैठारू कदमन की छैयां पुचकारौं अरु पोंछौं
"अपने हाथ पूँछ कौ धौरा ककई लेकर औंछौं
"अति चंचल अति लंगर गैया अति ऊजर अति बाठी
"फूलमाल से ताहि बहोरौं कबहु न घालौं लाठी
"न्यारी होन देउँ नहिं कबहूँ कबहूँ या न बिसारौं
"जब गोरज ऊपर छावै तब लै जुल्फन सों झारौं
"पाँय पैजना गरै घंटिया सोने सींग मढ़ाऊँ
"कर हौं भाँति भाँति की सेवा चंदन फूल चढ़ाऊँ
"जब देखौं अँखियन भर वाकौं बगरन बीच सुरैया
"अच्छत हाथ दूध सों पूजौं जब मैं देउँ गुरैया॥

इन सब के अतिरिक्त दो एक कवि यहाँ बड़े विलक्षण हुए हैं। वे अपने पंथ के निराले ही हैं। एक

'रसिकलाल' दूसरे 'कल्यानदास'। रसिकलाल पहले दरजे के प्रेमी अौवल दरजे के आशिक़ यहाँ तक कि मरने के बाद भी आप के यह हसरत थी।

हमरे यही निरूप, रसिकलाल सुत सों कह्यो।
जहाँ चिता तहँ कूप, मृगनैनी झूलत रहैं॥

चाहै प्रेमविवश हो, चाहै लोगों के हँसावे को हो, आप अपने विषय में कहते हैं।

रसिकलाल पत्थर भये दये कोट चुनवाय।
गोला लागे प्रेम के चूरचूर हो जायँ॥
रसिकलाल गदहा भये घूरे कौ खर खायँ।
लादी लादैं प्रम की मधुर मधुर मुसकायँ॥

रसिकलाल प्यारे पिया मर जैवो विष खाय।
वह मिलवो औ बिछुरवौ हम पै सहो न जाय॥
रसिकलाल की लखि दसा मिलि प्यारी, भरि अंक।
बिसवासिन कस लेत है बारी बैस कलंक॥

कल्यानदास।

ये तो बड़े ही अद्भुत कवि हुए हैं इनकी कविता बेमतलब। तुक इनकी कभी मिली ही नहीं। ऐसा कहा जाता है कि यदि इनकी तुक मिल जाती तो इनकी मोक्ष हो जाती। पर हां कढ़ोर, घसीट कर इनकी कविता को हम हास्यरस के अंदर ला सकते हैं। कविता का नमूना यह है—

(१) "कहत कल्यानदास—प्यासो होय तौ आन ताप

(२) डीम डिमारे खेत में बगुला पैरत जाय

(३) अटा पै ठाड़ा पद्मिनी खालैं उरमैं दाँत अपनी खसम की लाड़ली हुहै तौ काहू के घोड़ा की चारौ चर लैय।

(४) भैंस बमूरै चढ़ गई लप लप लपसी खाय। पूंछ उठा कै देखो तौ सुपारी टका कढ़ आये

(५) हेंच मार महुआ कोपेड़ो बरसन लगे कुनैते।

वर्त्तमान समय में बुंदेलखंड में आधुनिक हिंदी (Modern Hindi) की अवस्था।

जिसको आधुनिक हिन्दी या अख़बारी हिन्दी कहते हैं यदि यह प्रश्न किया जाय कि बुंदेलखंड में ऐसी हिन्दी की क्या अवस्था है तो सारे बुंदेलखंड के क्षेत्र फल को विचार में लाते हुए वा उस उन्नत हिन्दी से तारतम्य करते हुए जो मध्य प्रदेश (C. P.) अथवा संयुक्त प्रदेश में है हमको कहना पड़ता और खेद के साथ कहना पड़ता है कि ऐसी हिन्दी की दशा बुंदेलखंड में संतोषजनक नहीं है। यदि आधुनिक हिन्दी के साथ प्राचीन हिन्दी जोड़कर यह प्रश्न किया जाय कि बुंदेलखंड में साधारणतः हिन्दी की अवस्था कैसी है तो कहा जा सकता है कि संतोषजनक है पर यदि निरी आधुनिक हिन्दी ही के बारे में प्रश्न है तो हम सब बुंदेलखंडियों को लज्जित होते हुए यह कहना ही पड़ता है कि इस तुलसी, केशव, वा पद्माकर की जन्मभूमि में हिन्दी की अवस्था इतनी संतोषजनक नहीं है जितनी कि होना चाहिए। सच बात तो यह है कि यहाँ हिन्दी के प्रेमी हैं ही नहीं। प्रेमी से मेरा मतलब साधारण प्रेम से नहीं है, यह नहीं कि एक आध लेख लिख मारा बस प्रेमी बन गए, यह नहीं कि हिन्दी का एक आध अख़बार मँगाने लगे बस हिन्दी के प्रेमी बन गए, यहाँ आप प्रेमी से प्राकृतिक अर्थ लीजिए, जिस तरह एक सत्य उत्कट वा अनन्य प्रेमी अपनी प्रेमिका के लिये अपने स्वार्थ को तिलांजलि दे देता है, अपना तन मारता है, मन मारता है, धन मारता है, उसके हित के लिये अपने प्राणों तक की आहुति दे देता है इसी तरह से जब हम हिन्दी के हित के लिये अपने सकल स्वार्थ को त्यागें, छल छद्ममय उसकी सेवा न करें, अपना जीवन, हिन्दी, जननी हिन्दी, मातृभाषा हिन्दी के लिये समर्पण कर दें तब हम

हिन्दी के प्रेमी कहे जा सकते हैं पर यह तो एक बड़ा ऊँचा वा कठिन व्रत है. यहाँ तो कोई सखी के लाल ऐसे तक नहीं हैं जो चंदा देने की तो बात ही क्या थोड़ा सा कष्ट उठा कर पास ही की सभा-समितियों में योग दें।

यहाँ के जो धनी मानी सज्जन हैं उनसे कहना ही क्या है वे तो अपने कान में तेल डाले बैठे हैं, उनके आनंद में, उनके भोग विलास में अंतर न पड़ना चाहिए। उनको क्या परवाह हिन्दी चाहै जीवित रहे या रसातल को चली जाय। उन्हें क्या सोच यदि उनकी मातृभाषा हिन्दी, उनकी वह भाषा जिसमें वे अपना हिसाब-किताब लिखते हैं, उनकी वह भाषा जिसमें उनके पाठ करने की पवित्र किताबें रामायण, हनुमानचालीसा, वा व्रजविलास वगैरः लिखी हुई हैं, दीन दशा में हो—वे रोशनी में, आतिशबाज़ो में, विषयवासना में, नाच-तमाशे में भले ही सहस्रों रुपया खर्च कर दें पर क्या मजाल जो मातृभाषा हिन्दी के लिये एक पैसा भी उनकी थैली से बाहर निकले। लेख लिखते लिखते २१ अकतूबर १९१० के वेंकटेश्वर में यह शुभ-समाचार पढ़कर कि श्रीमान् बड़ौदा नरेश ने अपने स्कूलों में हिन्दी की शिक्षा बाध्य (compulsory) कर दी वा श्रीमान् कोटा नरेश ने अपने दफ़तरों में हिन्दी प्रचलित कर दी, बड़ा ही आनंद हुआ। हृदय से आप ही आप शतकंठ से यह शुभवादन निकल पड़ा कि परमात्मा ऐसे नरेशों को कोटानुकोट वर्षों तक जीवित रक्खे और और नरेशों को भी ऐसी मति दे कि वे शीघ्र ही इनके उदाहरण का अनुकरण करें। देखें हमारे बुंदेलखंड में कौन श्रीमान् अपनी कचहरियों में हिन्दी का प्रचार कर के हिन्दी-साहित्य-जगत् के सबसे पहिले कृतज्ञताभाजन बनते हैं।

पिछले २५ वर्षों में बुंदेलखंड में ग्रंथ रचना।

मुझे ग्राम ग्राम की ग्रंथरचना से तो पूर्ण परिचय नहीं है। सम्भव है कि कहीं कहीं अच्छे अच्छे उपयोगी ग्रंथ लिखे गए हों और उन्होंने दिन का प्रकाश न देखा हो पर इस बातको मैं सप्रमाण वा निर्भयतापूर्वक कह सकता हूँ कि पिछले २५ वर्षों में बुँदेलखंड में यदि कुछ उपयोगी ग्रंथ रचे गए होंगे तो उनकी संख्या अँगुलियों पर ही गिनने योग्य होगी। यों तो दस दस पंद्रह पंद्रह पन्ने की सैकड़ों भजनावलियाँ, ज्ञानमंजरियाँ, रागमालायें लिखी गई होंगी पर जो पुस्तकें यथार्थरूप से साहित्य-संसार में आदर पा सकती हैं, जिनसे हिन्दी-भाषा भंडार की कुछ शोभा बढ़ सकती है, जिनको हिन्दी प्रेमी गर्वपूर्वक अपनी संपत्ति कह सकते हैं, जिनसे सर्वसाधारण का विशेष उपकार हो सकता है ऐसी पुस्तकें मुश्किल से दस बीसही बनी हों। पाठको! सोचिए तो कि जिस बुंदेलखंड में तुलसीकृत रामायण रची गई, जिस बुंदेलखंड में कविप्रिया, रसिकप्रिया, रामचंद्रिका आदि लिखी गई, जिस बुंदेलखंड में छंदार्णव, काव्य निर्णय, रससारांश वगैरः रचे गए, हाँ जिस बुंदेलखंड में जगद्विनोद, वा पद्माभरण सरीखे ग्रंथ लिखे गए हों उसी बुंदेलखंड में दस दस, बीस बीस पेज की दानलीला वा मानलीला छपे—धिक है हमारे हिन्दी प्रेम पर! धिक है हमारी साहित्य-सेवा पर! व्यर्थ है यदि केशव को हम अपना देश भाई कहें! मिथ्या है यदि पद्माकर को हम अपनी संपत्ति बतावें। ढोंग है यदि हम कहते फिरें कि तुलसीदास बुंदेलखंड के थे! क्या अब हममें अपने पूर्वज कवियों का रंचक गर्व नहीं रहा, क्या अब हमारी रगों में बुंदेलखंडी साहित्य का बिलकुल रक्त नहीं प्रवाहित होता? क्या अब हमको केवल फागें, दादरे, ठुमरी, लावनी, सैरों की रचना से संतोष हो गया है। यदि ऐसा है तो हमारा मूर्ख, बर्बर वा वन्य कहलाना ही अच्छा था और यदि नहीं तो क्यों नहीं हम हिन्दी की उन्नति को कटिबद्ध होते। क्यों नहीं उसके लिये अपने स्वार्थ को त्यागते, क्यों नहीं उसको उन्नति के ऐवरैस्ट पर पहुँचा देते। हमको हिन्दी के लिये शोर मचाना चाहिए, हमको हिन्दी के लिये मानापमान का विचार न करना चाहिए। हमको हिन्दी के लिये दर दर भिक्षा माँगनी चाहिए।

हम इस समय कुं० कन्हैयाजू वा बा० भगवानदीन ... धन्यवाद दिये बिना नहीं रह सकते कि जिन्होंने अनेक उपयोगी ग्रंथ रचकर सर्व साधारण को लाभ पहुंचाया और बुंदेलखंड के मुख से कलंक-कालिमा को छुड़ा कर उसको उज्वल किया।

बुँदेलखंड में साहित्य समाजें।

यदि सच पूछा जाय तो बुंदेलखंड में नाम लेने योग्य साहित्य की कोई सभा समिति नहीं है। मैंने चंद रियासतों में अभी हाल ही में पर्य्यटन किया है और उसी के आधार पर कह सकता हूँ कि चरखारी में कोई ऐसी सभा नहीं, अजयगढ़ में नहीं, पन्ना में नहीं, दतिया टीकमगढ़ का हाल जहाँ तक मुझे मालूम हुआ है मैं कह सकता हूँ कि यहाँ भी कोई नियम-बद्ध ऐसी समाज नहीं है। बाँदे में शायद कोई सभा हो तो हो। बिजावर में अलबत्ता मुंशी गोपीनाथ भूत-पूर्व दीवान ने कुछ रूह फूंकी थी और वहाँ कुछ दिनों काव्य की छोटी सी नदी बही पर अब उस इन्द्रोपम महापुरुष के वहां से चले जाने से यह सरिता शुष्क-प्राय हो रही है। हमारे यहां छत्रपुर में एक पबलिक लाइब्रेरी—भारती-भवन वा दो साहित्य समाजें, एक काव्यलता, वा दूसरी बालसमाज हैं—और यह येन केन प्रकारेण अपने उद्देश्यों का पालन करते हुए अपने नाम को जीवित रक्खे हुए हैं—पर यह सब होते हुए भी हृदय को संतोष नहीं होता और अन्य प्रांतों की उन्नति देख कर चित्त व्याकुल हो उठता है पर करें क्या "कहर दरवेश बर जान दरवेश" अपना जोश क्षण काल में अपने ही भीतर समाप्त हो जाता है कोई अपनी सहाय को नहीं, कोई अपना पृष्ठपोषक नहीं—पर तब भी हिम्मत न हारेंगे, भर-सक परिश्रम करेंगेही-देखें। God helps those that help themselves इस लोकोक्ति में कहाँ तक सत्यता है, चैन तो अभी होगा जब इस बुंदेल-खंड में एक बार फिर से वैसे ही तुलसी, केशव वा पद्माकर देख लेंगे। यदि हम न देखेंगे हमारी अमर आत्मा तो देखेगी।

अपने बुंदेलखंडी कविभाई वा लेखकों से दो दो बातें।

मेरा कहना यहाँ पर उन कवियों से विशेष रूप से है जो अब भी नायिका भेद के पचड़े में पड़े हुए हैं, जिनकी कल्पना का घोड़ा स्वकीया, परकीया हो के संकीर्ण चक्र के अंदर दौड़ लगाया करता है—उन लोगों के लिये यह क्षेत्र बिलकुल तंग है। इसमें अब तिल भर जगह की भी गुंजाइश नहीं। चाहे हम कैसे ही उपाय सोचें पद्माकर वा द्विजदेव वगैरः की उपमा से वे नहीं बढ़ सकतीं। हम कैसा ही अच्छा वर्णन करें, किसी पुराने कवि के वर्णन की छाया हमारे न जानते हुए भी आ जायगी अतः इस क्षेत्र में कविता करके हम कभी सुयश-पात्र नहीं हो सकते। इसलिये अब हमको कोई दूसरा क्षेत्र ही अपनी प्रतिभा वा कवित्व-कौशल दिखलाने के लिये निर्वाचित करना चाहिए। वह दूसरा क्षेत्र खुला ही पड़ा है। यह संसार बहुत ही विस्तीर्ण है। ईश्वर की सृष्टि अनन्त है। ईश्वर की ईश्वरता अपार है। यदि हमारा हृदय भावुक है यदि प्रत्येक वस्तु के देखने के लिये हम ध्यान का चक्षु रखते हैं तो हमें कविता करने के लिये बहुत मसाला मौजूद है। हम इस सुनील आकाश पर, शस्य श्यामला पृथ्वी पर, बहती हुई नदी पर, चमकते हुए तारों पर, उदय होते हुए सूर्य्य पर, अस्त होते हुए चन्द्रमा पर, कोकिल का कूज पर, कुसुमसौरभ पर, दक्षिण पवन पर, दीर्घकाय गजराज से ले कर छोटी सी चींटी पर संक्षेपतः बालू के एक छोटे से छोटे चमचमाते हुए कण पर भी हम सैकड़ों छंद में कविता कर सकते हैं।

मनुष्य की अनंत चित्तवेदना वा उच्च-आकांक्षाओं में जो एक प्रकार का महत्त्व वा सौंदर्य्य होता है, एक सच्चे कवि की कल्पना उसमें से अपने लिये जीवनोपयोगी रस चुन लेती है, इस शोभा-मयी प्रकृति की अनन्त सुखमा में, मानव-हृदय के चिर-सञ्चित प्रेम-प्रवाह में, एक भावुक कवि मन

में भगवान् के आविर्भाव का अनुभव करने लगता है। नव वसन्त के करस्पर्श से समग्र प्रकृति संजीवित हो उठती है, नवोन्योषित सौंदर्य को हिलोर से जगत् स्पन्दित हो उठता है, विहंगकूजन, सुमन-सौरभ, वा दक्षिण पवन से चारों ओर एक विचित्र वा अलौकिक आनन्द का आन्दोलन हो उठता है। पर इन सब को देख सुन कर सच्चा कवि यही कहता है कि यह सब कुछ नहीं है! भगवान् ही विश्वविमोहन भेष में जगत् के समक्ष आप उपस्थित हुआ है।

"The lark soars up and up, shivering for very joy; after the ocean sleeps; white fishing gulls flit where the strand is purple with its tribe of nested limpets; savage creatures seek their loves in wood and plain—and God renews His ancient rapture!"

एक सच्चा कवि रेत के प्रत्येक कण में वा पेड़ की प्रत्येक पत्ती में ईश्वर के मधुर रूप का ध्यान करता है। पानी की लहरों में, तारों की चमचमाहट में, पुष्पों की सुकोमल शोभा में, उसको अजब चमत्कार दिखाई देगा। अद्भुत भेद खुलेंगे। चिड़ियों के मधुर कलरव में, बालकों की तोतली बोली में वह भगवद् की बोली सुनेगा। सुन्दर वस्तु में वह ईश्वर की सुन्दरता देखेगा, दीपक की ज्योति में वह परमात्मा की ज्योतिराशि देखेगा, मलय पवन के स्पर्श को वह जगन्नियन्ता का स्पर्श समझेगा। वाटिका की सुगन्ध को वह सच्चिदानन्द के शरीर की सुगन्ध समझेगा। इस संसार में मनुष्य मात्र ही असन्तुष्ट है। राजराजेश्वर से लेकर पथ के भिखारी तक सभी अपनी अपनी अवस्था से असन्तुष्ट हैं—इस सीमाबद्ध संसार के क्षुद्र सुख में उनकी अनन्त पिपासा तृप्त नहीं होती, उसके हृदय की अनन्त सौन्दर्य्यतृष्णा पार्थिव जगत् के सर्व सौन्दर्य्य को भोग करके भी अपूर्ण रहती है। इस संसार के सुख और सौन्दर्य्य का प्रेम उसकी एक भोग्य वस्तु से दूसरी भोग्य वस्तु तक, फिर तीसरी तक, फिर चौथी तक सारांश कि इसी तरह लिए लिए फिरती है। किन्तु कभी भी उसको तृप्ति प्रदान नहीं करती, इस तरह वह अपने मन में कहने लगता है। इस संसार में तो सुख बिलकुल ही नहीं, इस तरह से संसार की अपूर्णता उसको पूर्ण-स्वरूप भगवान् के नित्यानन्द, अनन्त सौन्दर्य्य वा अतुल प्रेम के माहात्म्य की ओर खींच ले जाती है और एक कवि जो कि 'कोकिल' वा 'कमल' से कविता प्रारम्भ करता है, क्रमशः चढ़ते चढ़ते ईश्वर के ईश्वरत्व पहचानने में तथा उसका सफलतापूर्वक वर्णन करने में सिद्धार्थ होता है।

प्रकृति के सौन्दर्य्य को ध्यानपूर्वक वा कवि की आँख से देखने से भगवद् के प्रेम का हृदय में विकास होता है। प्रकृति हम को बाँध नहीं लेती। वह अंगुली से मानो बताती है कि भगवद् का प्रेम वा ऐश्वर्य्य कहाँ है। प्रकृति वर्णन करते समय हमारी कविता का उद्देश्य और हमारे मन की सर्वोपरि आकांक्षा "From Nature up to Nature's God" यह होनी चाहिये। जो हतभागा कवि केवल जगत् ही को प्रिय समझता है, केवल इस सौन्दर्य्यपूर्ण विस्मयकरी, आनंदमयी विशाल प्रकृति को प्यार करता हुआ प्रकृति की प्रेममय अंतरात्मा को नहीं देख सकता वह अभिशप्त जीव है। उसके विषय में कहा जा सकता है।

"Thou art shut
Out of the heaven of spirit; glut
Thy senses upon the world."

एक सुविख्यात फ़ारसी समालोचक का कहना है "कविता के मूलीभूत उपादन छः हैं (१) ईश्वर (२) प्रकृति (३) प्रतिभा (४) ललितकला (५) प्रेम (६) मानव-जीवन।

यदि न्यायपूर्वक कहा जाय तो निस्सन्देह पहिले उपादान अर्थात् "ईश्वर पर कविता" को छोड़ कर बाक़ी ५ पर हमारे भाषा-कविता-भंडार में बहुत ही कम कविता है और जो है वह भी "नहीं" के बराबर है, "गुप्ता" पर, "खंडिता" पर तो आप

को सहस्रों सवैये मिल जायँगे पर मानव-जीवन के गूढ़ रहस्यों पर, प्रेम पर, प्रतिभा इत्यादिक पर आप को कुछ भी नहीं मिलेगा, इसलिये आवश्यकता है कि हम हिन्दी-कविता के भंडार को ऐसी कविताओं से भरें; हमारा कर्त्तव्य है कि हम कविता के इस शून्य अंग को बहुत जल्द परिपूर्ण वा सुसज्जित करें। हाथ की कोई शोभा न रहै, यदि वह सारा आभूषणों ही से लाद वा ढाँक दिया जाय। इसी तरह हिन्दी-काव्य-शरीर की कोई शोभा न रहैगी यदि उसका एक अंग शृङ्गार रस तो कवित्त सवैयों के बोझ से लदकर झुका सा वा टूटा सा पड़े और उसके सारे अंग क़रीब क़रीब नंगे वा बिहूने ही बने रहैं। इस ... काव्य-साहित्य का उपहास नहीं है। वरन हम सब लोगों का जो उसके भक्त बनने का दावा करते हैं उसके परिष्करण में बनने का अभिमान रखते हैं। अंगरेज़ी कविता को देखो वहाँ आप को गुप्ता वा विदग्धायें न मिलेंगी, वहाँ आपको दादरों वा दूतियों की दौड़ धूप न मिलेगी। वहाँ मिलैगी आप को "गदूल के फूल की सहज शोभा" पर कविता, वहां मिलैगी आपको 'सरिता के प्रवाह' वा 'पर्वतों के मौनव्रत" पर कविता, वहां मिलैगी आपको 'जन्म-भूमि के अनुराग' 'जीवन के रहस्य वा संतोष के सूत्र पर कविता। अतः इस समय हमें पद्माकर वा ...राम को भूलकर 'वर्डसवर्थ' 'ब्राउनिंग' 'काऊपर' वा टेनिसन ही को अपना आदर्श बनाना चाहिए और नए नए फूलों से, नए नए पौधों से और नए नए गुलदस्तों से अपने काव्य-साहित्य कानन को भरना चाहिए। नायिका भेद के गुलदस्ते अब बासी पड़ गये हैं, उनमें सुगन्ध नहीं रही, उनमें शोभा नहीं रही। वे हमारे हृदय को आकर्षित नहीं करते। वे हमारे पवित्र वा उच्चभावों को जागृत नहीं करते। अतः अब हमें चाहिए कि अच्छे अच्छे फूलों को अच्छे अच्छे पौधों को और और देशों से लाकर सुन्दरता से वा चाव से उनके अच्छे अच्छे गुलदस्ते बना कर शिक्षित समाज की भेंट करैं। क्या आप नहीं जानते कि आजकल नए नए फैशन ईजाद होते हैं। हिना मोतिया आदि का इत्र कम पूछा जाता है। क़दर है लैवंडर की। क़दर है संत्रे के तेल की। ऐसा ही हाल है साहित्य-संसार का। बस हमको चाहिए कि समय के साथ साथ ही क़दम रक्खें। इसमें गिरने वा फिसलने का डर नहीं रहता। यह हम जानते हैं कि यह रुचि बहुत दिनों तक न रहेगी पर रहे या न रहे इसमें क्या विवाद। क्या हानि होगी यदि हमारे काव्य-साहित्य का एक अंग इस प्रकार की कविता से ही सुसज्जित रहे। पुराने क़िस्म की जो समस्त कविता हैं उनको आप यह समझिये कि वे अच्छे अच्छे स्वादिष्ट व्यंजन हैं, मधुर भोज्य पदार्थ हैं। पर आप जानते हैं कि मिठाई के साथ यदि थोड़ी सी खटाई खाते जायँ तो उसका स्वाद और अधिक मिष्ट हो जाता है और खाने से तबीयत उकताती नहीं। बस इसी तरह इस नए ढंग की कविता को आप उन मधुर व्यंजनों के साथ को सुन्दर चरपराती हुई नौरतनी चटनी ही समझें, या मिठाई के साथ का अच्छा थक्केदार दही ही समझें।

बुंदेलखंड में हिन्दी के प्रचार के कुछ उपाय।

(१) शिक्षा का प्रचार।
(२) हिन्दी भाषा के उत्तेजनार्थ उपदेशक नियत किए जाँय।
(३) हिन्दीहितैषिणी सभा कम से कम एक एक प्रत्येक राज्य में हो।
(४) हिन्दी के उचित साधनार्थ जो काम किए जाँय उनके व्यय-संचालनार्थ एक फंड खोला जाय।
(५) जहाँ तक हो सकै पत्र-व्यवहार हिन्दी लिपि ही में हो।
(६) बोलचाल में भी हिन्दी के शब्दों का अधिक प्रयोग किया जाय।
(७) यहाँ की जो बहुत सी हस्तलिखित पुस्तकें अप्रकाशित दशा में पड़ी हुई हैं उनके प्रकाशन का उद्योग किया जाय।
(८) राजा, महाराजों के पास एक प्रभावशाली डिपुटेशन भेज कर उनसे ज़ोर दे कर विनय

किया जाय कि वे अपने दफ़्तर वा कचहरियों में हिन्दी का प्रचार करें।

(९) जो लोग हिन्दी की उन्नति का उद्योग करें, सभा द्वारा उनका मान किया जाय।

(१०) साल भर में कम से कम एक प्रान्तीय वार्षिकोत्सव हिन्दी भाषा का हुआ करै और यह प्रतिवर्ष अपना स्थान बदला करै।

(११) हिन्दी के समाचार-पत्र अधिक मँगाए जाँय।

(१२) हिन्दीभाषा का एक समाचारपत्र जिसका नाम 'बुंदेलखंडी,' हो झांसी या बांदे से निकाला जाय और इसका विषय अधिकतर बुंदेलखंड ही हो।

बुंदेलखंड के प्रसिद्ध लेखक कवि वा उपन्यासक।

(१) श्रीयुत बाबू मैथिलीशरण गुप्त, कवि, चिरगाँव, झांसी।

(२) श्रीयुत लाला भगवानदीन, लेखक वा कवि, छत्रपुर।

(३) श्रीयुत कुँवर कन्हैयाजू, लेखक वा कवि, छत्रपुर।

(४) श्रीयुत मुंशी देवीप्रसाद, लेखक वा कवि, बिजावर।

(५) श्रीयुत कुंवर प्रतिपालसिंह, लेखक वा कवि, छत्रपुर।

(६) श्रीयुत बाबू वृन्दावनलाल वर्मा, लेखक, झाँसी।

(७) श्रीयुत बाबू चतुरभुज सहाय वर्मा, उपन्यासक, लेखक, छत्रपुर।

सम्भव है कि और बहुत से लेखक वा कवि बुंदेलखंड में हों पर मैंने इन्हीं ही के नाम सुने हैं। आशा है कि अन्य कवि वा लेखक यदि उनका नाम छूट गया हो मुझे क्षमा करेंगे।

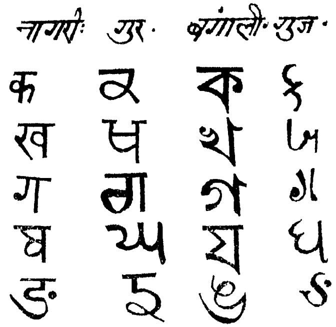
——:०:——

देवनागरी लिपि ।

[पंडित केशवदेव शास्त्री लिखित।]

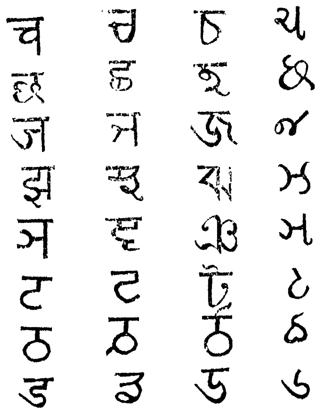
सज्जनो ! मैं पहिले भारतवर्ष की प्रसिद्ध प्रसिद्ध लिपियों पर विचार करना चाहता हूँ। दक्षिणी भाषाओं और उनकी लिपियों का देवनागरी अक्षरों से बहुत कम सम्बन्ध है इसलिये मैं आज के व्याख्यान में उनका वर्णन नहीं करूँगा। भारतवर्ष की शेष पाँचही ऐसी भाषायें मिलती हैं जिनकी लिपियों पर विचार करना, उनकी उत्पत्ति पर ध्यान देना और उनकी रचना पर ख्याल करना अत्यावश्यक है। आज मैं इस व्याख्यान द्वारा बतलाऊँगा कि किस प्रकार से विकास सिद्धान्तानुसार देवनागरी अक्षर वर्त्तमान अवस्था में आए। इन अक्षरों के सहारे कैसे कैसे और कब कब अन्य लिपियों का प्रचार हुआ और उन लिपियों के अक्षरों से कैसे ज्ञात होता है कि उनका मूलाधार भी यही देवनागर अक्षर थे। जिन पाँच भाषाओं का ऊपर मैंने संकेत किया है वे बंगाली, मरहठी, गुजराती, हिन्दी और पंजाबी हैं। उर्दू का सम्बन्ध फ़ारसी तथा अर्बी से है, इसलिये मैं उस लिपि पर भी कुछ विचार न करूँगा। मरहठी और हिन्दी भाषा की लिपियों में कुछ भी अन्तर नहीं इसलिये लिपियों की गणना में मरहठी लिपि पर भी कुछ विचार करने की आवश्यकता नहीं। इस समय हमारे सम्मुख दो प्रश्न उपस्थित हैं पहिला यह कि देवनागर अक्षर कब से प्रचलित हुए और कैसे कैसे उनमें रूपान्तर होता गया। दूसरे यह कि इन चार प्रकार की लिपियों का कैसे परस्पर सम्बन्ध है। ये दोनों प्रश्न अत्यावश्यक हैं। मैं प्रथम दूसरे प्रश्न पर विचार करूँगा और पहिले पाँच चित्रों में इन चारों लिपियों के व्यञ्जनों पर ध्यान दिलाऊँगा। इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि इन सब लिपियों की वर्णमाला समान है। गुरुमुखी में ज्ञ और क्ष नहीं मिलते जिसका कारण उच्चारण की असुविधा जानना चाहिये। यदि हम दीर्घदृष्टि से इन अक्षरों की रचना पर ध्यान देंगे तो हमें स्पष्ट रीति से ज्ञात हो जायगा कि किस भाषा की लिपि में कौन अक्षर किस शताब्दि में लिया गया है।

पहिला चित्र (१)



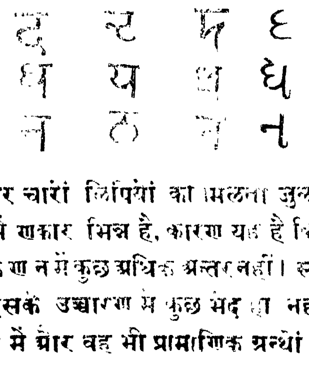
लिपियों का क्रम (१) देवनागरी (२) गुरुमुखी (३) बंगाली और (४) गुजराती है। इनमें कवर्ग का विधान है। ककार प्रायः चारों लिपियों के मिलते हैं। हाँ, रूप कुछ अवश्य बदल दिए गये हैं और भिन्न लिपि की प्रसिद्धि के लिये किसी अंश तक यह आवश्यक भी था। घकार में देवनागरी, बँगाला और गुजराती अक्षर मिलते हैं परन्तु गुरुमुखी के घकार में अन्तर है। इस अन्तर के दो ही कारण हो सकते हैं या तो देवनागरी अक्षरों का घकार उस समय ऐसा न था जब गुरुमुखी लिपि के प्रवर्तकों ने उसका अनुकरण किया या लिपि के संचालकों ने जान बूझ कर अपनी सुगमता इसकी रचना के परिवर्त्तन में समझी। गकार चारों लिपियों का मिलता है। ङकार में भी कुछ अधिक अन्तर नहीं। एक ङकार के परिज्ञान से दूसरी लिपियों के ङकार का सहसा बोध हो सकता है।

दूसरा चित्र (२)



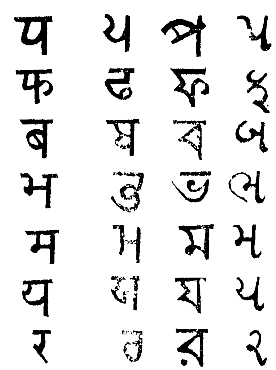
चकार बंगला का उलटा है किन्तु रूप वही है। गुजराती का जकार भिन्न है। झकार ञकार में बंगला अक्षर देवनागरी लिपि से भिन्न कर दिये गए हैं। गुरुमुखी में झकार और ञकार के भिन्न भिन्न रूप बतलाने के लिये झकार का उलटा ञकार कर दिया है। टकार, ठकार, डकार चारों लिपियों में समान ही हैं।

तीसरा चित्र (३)



ढकार चारों लिपियों का मिलता जुलता है। बंगला में णकार भिन्न है, कारण यह है कि बंगला अक्षरों के णा न में कुछ अधिक अन्तर नहीं। सर्वसाधारण तो इसके उच्चारण में कुछ भेद ही नहीं करते, हाँ, लिपि में और वह भी प्रामाणिक ग्रन्थों में नकार और णकार का अन्तर दिखलाया जाता है। गुरुमुखी और बंगला अक्षरों के तकारों में अधिक अन्तर जान पड़ता है मगर रूप का अनुकरण अवश्य ही किया गया है। थकार में गुरुमुखी अक्षरों में कुछ अन्तर है इसके परिवर्तन का कारण गुरुमुखी का खकार प्रतीत होता है, परन्तु ध्यानपूर्वक देखने से वह अन्तर भी मिट जाता है। दकार सब के एक ही से हैं। धकार गुरुमुखी का न्यारा है। इसका कारण नागरी अक्षरों के परिवर्तन स्थान से जाना जा सकता है। नकार समान ही हैं केवल गुरुमुखी में रूप कुछ बदल दिया है।

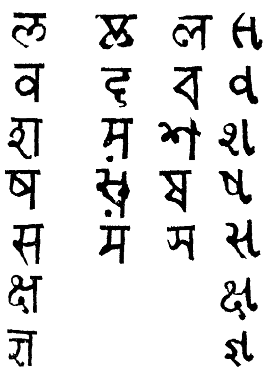
चौथा चित्र (४)



पकार बंगला लिपि का भिन्न प्रतीत होता है परन्तु ध्यानपूर्वक देखने से वह अन्तर भी मिट जाता है केवल लिपि की विलक्षणता ही मूल कारण है। फकार में केवल गुरुमुखी लिपि वालों ने अन्तर डाल दिया है। बकार, भकार भी गुरुमुखी वालों ने मिल जाने के भय से भिन्न भिन्न निर्माण किए हैं। गुजराती में बकार का ढंग विलक्षण है इसी से अन्तर बढ़ गया है। मकार, यकार सब के समान हैं। रेफ़ में गुरुमुखी और बंगला अक्षर नहीं मिलते। देवनागरी अक्षरों के वर्तमान अवस्था में आने से पूर्व रेफ़ बहुत रूपान्तरों को धारण कर चुका है। हाँ, जिस सोलहवीं शताब्दी में गुरुमुखी और बंगला भाषाओं के भाषियों ने यह अक्षर देवनागरी लिपि से

अपनी लिपियों में लिया था उस समय का रेफ इन से अधिक मिलता जुलता था। जहाँ उन लिपियों के रेफ वही रहे—नागरी के रेफ में कुछ और परिवर्तन हो गया। गुजराती लिपि के अक्षरों की अधिक समानता का कारण यह है कि यह लिपि इन लिपियों में से सबसे पीछे प्रचलित हुई।

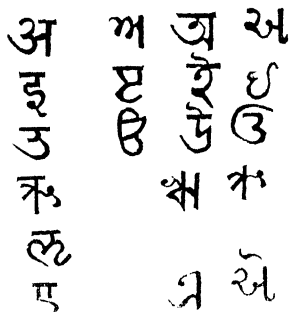
पाँचवाँ चित्र (५)



लकार सबके समान हैं। वकार गुरुमुखी का भिन्न है। गुरुमुखी में सकार, शकार का अन्तर एक बिन्दु डाल कर दिखलाया है। शकार के रूप को हटा देने का कारण अधिकतर रूपों के परस्पर मिल जाने का भय था। षकार चारों लिपियों में समान है। सकार भी मिलता सा है। क्षकार और ज्ञकार गुरुमुखी में नहीं मिलते। गुजराती में संयुक्त अक्षरों से बना लिये गये हैं। बंगाली के ज ञ को मिलाकर ज्ञ का रूप बना लिया है। मेरा विश्वास है कि यदि ध्यान-पूर्वक हम विचार करें तो हमें इन चार प्रकार की लिपियों का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध भली भाँति ज्ञात हो सकता है। इतिहास द्वारा हम बतला सकते हैं कि १३ वीं सदी में बंगला, सोलहवीं सदी में गुरुमुखी और अनुमान सत्रहवीं सदी में गुजराती लिपि का प्रचार हुआ। दशवीं सदी में इन तीनों लिपियों का पता न था, जब कि देवनागरी लिपि का सम्बन्ध आज से अढ़ाई हज़ार वर्ष पूर्व तक के अक्षरों से मिलता है, इसलिये जहाँ हम इन चारों लिपियों को परस्पर मिला जुला पाते हैं वहाँ हम भी निर्भय होकर अनुमान से कह सकते हैं कि इन लिपियों की रचना देवनागरी अक्षरों के आधार पर हुई है। अब मैं स्वरों द्वारा बतलाऊँगा कि उन में कितना सम्मिलान है।

स्वरों और मात्राओं का वर्णन।

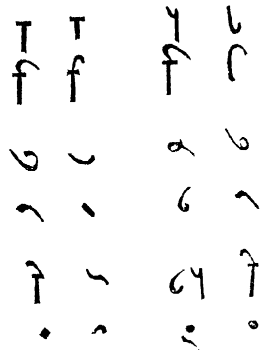
छठा चित्र (६)



इन चारों लिपियों का परस्पर इतना घनिष्ठ सम्बन्ध है कि प्रायः सबके दीर्घ समान हैं। अकार चारों लिपियों का मिलता जुलता है। बँगला लिपि में एक रेखा कम कर दी गई है। गुरमुखी के अकार में रूप को रखते हुए भी किंचित् अन्तर दिखलाया गया है। इकार में भी उसी नियम का अनुकरण किया गया है। गुजराती में उलटा रूप दिखलाया है। गुरुमुखी में नीचे की रेखा ऊपर जोड़ कर भेद बना दिया है। बँगला के इकार को सुगम बनाने के लिए एक भाग हटा दिया है। उकार चारों के समान हैं। ऋकार में भी कुछ अन्तर नहीं। यही हाल ऌ का है। एकार में बँगाली लिपि विपरीत है। गुजराती अक्षरों में अकार पर एकार की मात्रा बढ़ाकर काम ले लिया है। इस चित्र द्वारा भी स्पष्ट है कि चारों लिपियों की वर्णमाला एकसी है और देवनागरी अक्षरों में कहीं कहीं परिवर्तन कर स्वरों को बना लिया है।

सातवाँ चित्र (७)

हिन्दी गुरु०   बंगाली गुज०



जैसा कि ऊपर स्वरों का पारस्परिक सम्बन्ध बतलाया है ठीक उसी प्रकार से मात्राओं में भी सम्बन्ध ज्ञात होगा। यहाँ मात्राओं को भी उनके ह्रस्व रूपों में लिया गया है। अकार, इकार की मात्राओं में लेश भी अन्तर नहीं, हाँ लेख-प्रणाली में बँगला और गुजराती अक्षरों में सौन्दर्य्य के लिये रेखा बढ़ा दी गई है। उकार में बँगला लिपि के संचालकों ने अन्तर दिखलाया है और ह्रस्व उकार को दीर्घ उकार का रूप दे दिया है। ऊकार में बंगला अक्षर फिर भिन्न है। गुरुमुखी लिपि में नियम वही है ; हाँ, रेखा को कम कर दिया है। ओकार में देवनागरी अक्षर और गुजराती समान् हैं। गुरुमुखी में ऊपर की रेखा से ही काम ले लिया है। बँगला में उसका रूप विभक्त करके दिखलाया है। अनुस्वार सबके समान हैं। इस चित्र से भी स्पष्ट है कि यह चारों लिपियाँ एक ही नियम पर चलाई गई हैं।

सज्जनो! यहाँ तक तो मैंने अपने व्याख्यान के पहिले भाग को समाप्त किया है । इन चित्रों से मुझे इतना ही सिद्ध करना अभीष्ट था कि बँगला, गुजराती तथा गुरुमुखी लिपियों का मूलाधार देवनागरी अक्षर हैं। व्यंजनों, स्वरों, मात्राओं और हिन्दसों में इन तीनों लिपियों के संचालकों ने देवनागरी अक्षरों का समय समय पर अनुकरण किया है मैंने इस विषय पर अभी बहुत अधिक विचार नहीं किया और न मेरे पास ऐतिहासिक सामग्री है पर मेरा दृढ़ विश्वास है कि कुछ काल के पश्चात् हमें पता लग जायगा कि किस शताब्दी में किस देशवालों ने अपनी लिपि देवनागरी लिपि में से बनाई है। देवनागरी अक्षरों की रचना में परिवर्तन होता रहा है और आगे के पाँच चित्रों द्वारा मैं बतलाऊँगा कि महाराज अशोक के समय से आज तक इस लिपि के अक्षरों में क्या क्या परिवर्तन हुए। भारतवर्ष में जो सबसे पुरानी किताबें मिली हैं अथवा जितने खुतबे मिले हैं उनकी वर्णमाला से यह पाँच चित्र लिए गए हैं। इनके आदि-रूप और विकाससिद्धान्तानुसार उनके रूपान्तरों का दिग्दर्शन-मात्र इन चित्रों में कराया गया है।

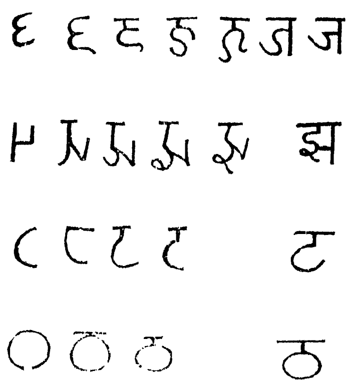
आठवाँ चित्र (८)



इस चित्र में ग घ च और छ ये चार अक्षर दिखलाए गए हैं, आदि रूप वे हैं जो महाराज अशोक के समय में थे, और अन्तिम रूप वे हैं जो आजकल हम लिखते हैं। आपको यदि दूसरे चित्र के बँगला चकार का ध्यान हो तो आप तत्काल ही पहिचान लेंगे कि इस चित्र के चकार का द्वितीय रूप ही बँगला का चकार है अर्थात् बँगला लिपि उस समय निर्माण की गई थी जिस समय देव-नागरी अक्षरों का चकार ऐसा था। मैंने यहाँ केवल चार चार, पाँच पाँच रूप दिखलाये हैं वस्तुतः इस से कहीं अधिक हैं। जिन्हें इस विषय में अधिक

परिज्ञान की उत्कण्ठा हो वे श्रीयुत गौरीशंकरजी ओझा का बनाया नक़शा देखें। अस्तु। शताब्दियों के परिवर्तन के पश्चात् आज देवनागरी लिपि का रूप सुन्दरता को प्राप्त हुआ है। पुरानी लिपि के अक्षर भद्दे और बेडौल थे।

नवाँ चित्र (९)



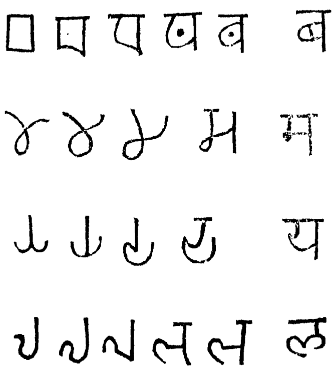
नवें चित्र में ज झ ट ठ ये चार अक्षर दिखलाए हैं। चारों लिपियों में आज भी टकार, ठकार प्रायः समान ही हैं और प्राचीन काल की लिपियों से इनका पारस्परिक सम्बन्ध भी अधिक है मगर जकार और झकार में कहीं कहीं अन्तर है। बंगला झकार को समझने के लिये जिसे दूसरे चित्र में दिखलाया था, इस नवें चित्र के ६ झकारों में से चौथे पर ध्यान देना उचित होगा। इसकी एक नीचे की रेखा को ऊपर लेजाकर सुन्दर बनाने के भाव से बदल दिया है। बंगला लिपि का जकार भी सातों जकार के रूपों में से चौथा जकार है। इन्हीं कारणों से मेरा विश्वास यह है कि नवें चित्र में जकार के सात और झकार के जो ६ रूप दिखलाए हैं उनमें से जिस शताब्दी में चौथा जकार और चौथा झकार ऐसे थे उसी शताब्दी में बँगला लिपि का निर्माण हुआ।

दसवाँ चित्र (१०)



ऊपर चारों लिपियों के अक्षरों में डकार की समानता दिखलाई गई है। तकार में अन्तर अवश्य है। गुरमुखी का तकार इस चित्र के तीसरे तकार से बनाया गया है; हाँ, रेखा कुछ अधिक बढ़ा दी गई है। थकार में अधिक अन्तर था। गुरुमुखी का थकार और इस चित्र के ६ थकारों में से चौथे थकार को देखिये। कैसे परस्पर मिल जाते हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि जिस समय गुरुमुखी लिपि बनी थी उस समय देवनागरी लिपि का थकार ऐसा न था जैसा कि अब है, वरन गुरुमुखी के थकार के समान था। यह समय अनुमान सत्रहवीं शताब्दी का प्रारम्भ काल था। इन अढ़ाई शताब्दियों में बहुत अन्तर पड़ गया। दकार चिरकाल से वर्त्तमान रूप को धारण कर चुका था, इसी लिये सभी लिपियों में उसके रूप एक समान हैं। इस चित्र से और भी स्पष्ट होता है कि ये चारों लिपियाँ देवनागरी अक्षरों से निकली थीं।

ग्यारहवाँ चित्र (११)



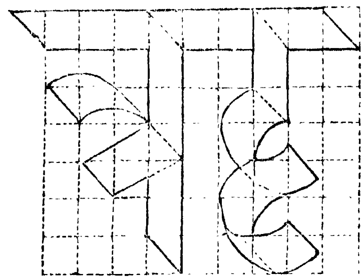
इस चित्र में अक्षरों की रचना का बोध भली भाँति हो सकता है। वकार के रूप को सुन्दर बनाने के लिये कितने साधन किए गए। भकार और मकार कैसे आरम्भिक रूपों को लेकर उठे और किस प्रकार से अन्त में जाकर एक दूसरे के सदृश बन गए। यकार और लकारों की उत्पत्ति विकाससिद्धान्त के अनुसार उसी क्रम से बनी है। मकार, यकार, लकार सभी लिपियों के समान हैं जो किंचित् अन्तर भी है वह इस चित्र द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है। केवल गुरुमुखी के वकार का रूप नहीं मिलता। उसका कारण कदाचित् असुविधा के विचार से परिवर्तन कर देना हो।

बारहवाँ चित्र (१२)



इस चित्र में केवल वकार, षकार और सकार तीन अक्षर दिखलाए गए हैं। गुरुमुखी के वकार में केवल अंतर है शेष सब लिपियों के वकार, षकार सकार मिलते हैं। यदि गुरुमुखी लिपि में रेफ उपस्थित न होता तो वकार को रूपान्तर में ले जाने की आवश्यकता न पड़ती। सुगमता के बिना और इसका विचार भी क्या हो सकता है?

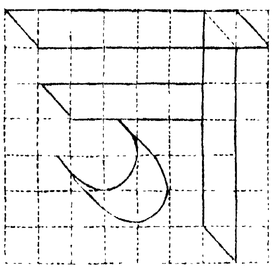
तेरहवाँ चित्र (१३)



सज्जनो! ऊपर के पाँच चित्रों से मैं ने दूसरे प्रश्न का भी उत्तर दे दिया है। यदि आप भी दीर्घ दृष्टि से मेरे समान इन चित्रों पर विचार करेंगे तो आप को ज्ञात हो जायगा कि जहाँ सभी अन्य लिपियों की वर्णमाला देवनागरी अक्षरों से ली गई है, वहाँ इन लिपियों के बनने का काल भी हमें ज्ञात हो सकता है। चारों लिपियों के जिन अक्षरों में परस्पर समानता है उनको छोड़ कर अन्य अक्षरों पर ध्यान देने से आपको ज्ञात हो जायगा कि किस समय में देवनागरी अक्षरों का क्या रूप था और उनसे कैसे अन्य लिपिवालों ने अपनी अपनी वर्णमाला बनाई। इस प्रकार हम एक एक अक्षर की उत्पत्ति पर विचार कर सकते हैं मगर समय के अभाव तथा ठीक ठीक सामग्री के न मिलने के कारण हम इस विषय को आज यहीं विश्राम देते हैं। इस समय मैं आप के सन्मुख सात चित्र ऐसे और रक्खूँगा जिनसे आपको पता लग जायगा कि इन अढ़ाई हज़ार वर्षों में क्यों इतना वर्णमाला में परिवर्तन हुआ। विकास सिद्धान्त का नाम मैं ने कई बार पहिले भी लिया है। संक्षेपतः इसका भाव यह है कि जन्म दिन के पश्चात् प्रत्येक शक्तिसम्पन्न वस्तु अपने आप को बाहर फैलाती है। फैलने में आकार, वर्णादि सभी सृष्टि

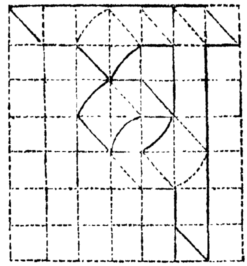
क्रमानुसार सुन्दरता को उपलब्ध करना चाहते हैं। यन्त्रालयों द्वारा इस विषय में नित्य नई से नई वर्ण-माला बनती जाती है। अँगरेजी अक्षरों में आज सैकड़ों प्रकार की वर्णमाला हैं जिन्हें सुन्दर अलंकारों से सुभूषित और सुसज्जित किया जाता है। हिन्दी समाचारपत्रों तथा यन्त्रालयों के द्वारा देवनागरी अक्षरों में भी सुन्दरता तथा लावण्य आता जाता है। इस चित्र में अकार को क्रमबद्ध करने के लिये एक चार-कोनी आकृति बनाई गई है। उसमें बिन्दुओं द्वारा रेखाएं डाली गई हैं ताकि उसको सुडौल बनाने में एक शृंखलाबद्ध क्रम बन जाय, इस शैली को (Drawing) कहते हैं।

चौदहवाँ चित्र (१४)



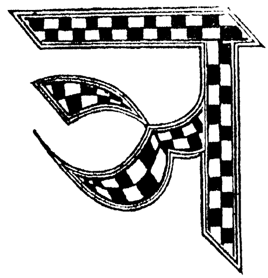
इस चित्र में जकार की आकृति दिखलाई है। जिस प्रकार स्वरों में अकार दिया गया है ऐसे व्यंजनों में जकार है। इस क्रमबद्ध नियम से समानता, रूपादि का सहसा परिचय होता है। रचना क्रम को जानने से लिखने में सुगमता तथा सुन्दरता का भाव उत्पन्न होता है। बस, इसी क्रम से वे वर्ण जो किसी समय बेडौल और भद्दे थे आज सुडौल और सुन्दर दीख पड़ते हैं।

पन्द्रहवाँ चित्र (१५)



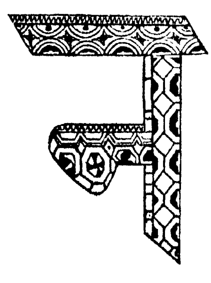
इस चित्र में धकार की रचना का क्रम दिया गया है. इसी क्रम के अनुसार हम इसे (Ornamental) अलंकृत करके आगे दिखलावेंगे जिससे ज्ञात होगा कि शृंखलाबद्ध नियमों में लाने से साधारण से साधारण अक्षर भी मनोरंजक बन सकता है।

सोलहवाँ चित्र (१६)



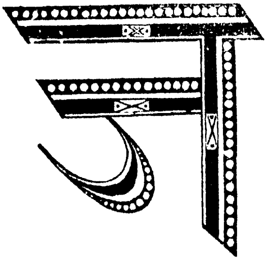
इस चित्र में अकार को पहिले रचनाक्रम से एक व्यवस्थित रूप में लाया गया है उसके पश्चात् उसमें दो प्रकार के रंगों से एक चित्र बनाया गया है जिससे उस का सौन्दर्य्य अतिशय बढ़ गया है।

सत्रहवाँ चित्र (१७)



इस चित्र में भी वही क्रम रक्खा गया है। केवल इसकी चित्रकारी न्यारी बनाई गई है। भिन्न भिन्न रंग भर दिए गए हैं और उन्हें ऐसे क्रम से सजाया है कि आंखों को भला जान पड़ता है।

अठारहवाँ चित्र (१८)



यह चित्र १४ वाँ चित्र है। वहाँ केवल काली स्याही से Drawing की गई थी। मगर इस चित्र में भिन्न भिन्न चित्रकारी के संग संग दो रङ्गों को मिला दिया है और एक रङ्ग को प्रधानता देकर चित्र को सजा दिया गया है।

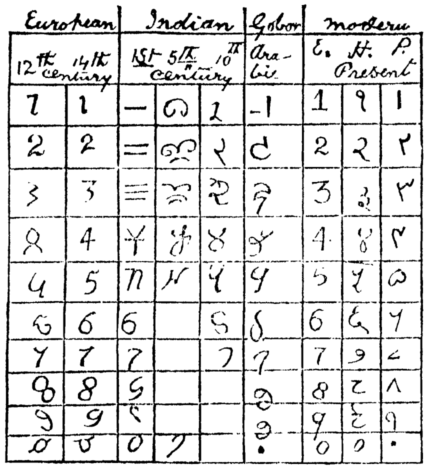
उन्नीसवाँ चित्र (१९)



यह चित्र पन्द्रहवें चित्र का प्रतिबिम्ब है। उसमें साधारण रचनाक्रम का प्रदर्शन था। इसमें विविध रंगों की छटा है और तिस पर चित्र विचित्र बेलों से अलङ्कृत करके दिखलाया गया है।

इन सात चित्रों से आपको विदित होगा कि वर्त्तमान समय में अक्षरों को उत्तम बनाने और अलङ्कृत करने की जो सामग्री हमारे सम्मुख उपस्थित है वह आज से दो हज़ार वर्ष पूर्व न थी। महाराज अशोक के समय की वर्णमाला में एक भी अक्षर ऐसा नहीं मिलता जो सौन्दर्य्य और लावण्ययुक्त हो। इन चित्रों के दिखलाने और अढ़ाई अज़ार वर्ष के अक्षरों को बार बार बतलाने का केवल अभिप्राय यह है कि ये सभी अक्षर क्या आकार, क्या रूप और क्या सुन्दरता सबमें क्रमशः उन्नत होते आये हैं।

बीसवाँ चित्र (२०)



यह चित्र बड़ी कठिनाई से प्रस्तुत किया गया है। इसमें बहुत सी अन्वेषणा की सामग्री मिलेगी। सबसे पहिले आप दूसरे खाने में पहिली, पाँचवीं और दसवीं शताब्दी के अङ्कों पर विचार कीजिए। आपको स्पष्ट ज्ञात होगा कि पहिली शताब्दी में एक अङ्क के लिये एक रेखा, दो के लिये दो और तीन के लिये तीन रेखाएँ थीं। चार के लिये चार रेखाओं को परस्पर मिला दिया था। परन्तु पाँचवीं शताब्दी में यह क्रम बदल दिया गया। रेखाओं में अर्द्धचन्द्र के समान गोल घेरे दिए गए—और दसवीं शताब्दी में उन्हीं गोल घेरों से १, २, ३ अङ्क बन गए। मैं पहिले बतला चुका हूँ कि बङ्गला, गुजराती और गुरुमुखी लिपियों की

वर्णमाला देवनागरी अक्षरों से प्रवाहित हुई है। अब मैं बतलाऊँगा कि न केवल इन लिपियों के संग संग देवनागरी अङ्क गए हैं परन्तु अर्बी, फ़ारसी ग्रैार अँगरेज़ी लिपियों में भी देवनागरी अंकों से अंक लिए गए हैं। इंगलैंड आदि देशों में चैादहवीं शताब्दी से पूर्व १, २, ३ अंकों के लिखने का क्रम वही था जो पहिली शताब्दी में भारतवर्ष में था। अर्थात् तीन को बतलाने के लिये तीन रेखा लिखनी पड़ती थीं।

दसवीं शताब्दी के अंकों को पहिले खाने के पहिले अंकों से मिलाकर देखिए। ये वे अङ्क हैं जो १२ वीं शताब्दी में मिश्र देश में थे ग्रैार वहाँ से यूनान ग्रैार इटली पहुँचे। अब इन १२ वीं शताब्दी के अंकों को चैादहवीं शताब्दी के अंकों के साथ मिलाकर जाँच कीजिए। इनमें आप बहुत थोड़ा अन्तर पावेंगे। अब आप भारतवर्ष की दसवीं शताब्दी के अंकों ग्रैार मिश्र देश के बारहवीं शताब्दी के अंकों ग्रैार इंगलैंड के चैादहवीं शताब्दी के अंकों को मिलाइए। आपको बहुत थोड़ा अन्तर मिलेगा।

इधर दसवीं शताब्दी में जो अंक भारतवर्ष की देवनागरी लिपि में थे उनका दसवीं शताब्दी की अर्बी लिपि के अंकों के साथ जोड़ कर देखिए। कितने मिलते जुलते हैं। अर्बी लिपि से ही वर्त्तमान फ़ारसी लिपि निकली ग्रैार उसके वहाँ से ही अंक आए। अब मैं आपका ध्यान इस चित्र के तीसरे खाने की ग्रोर दिलाता हूँ। इसमें अँगरेज़ी, देवनागरी ग्रैार फ़ारसी अंकों को दिखलाया गया है। जितना अधिक ध्यान देंगे, आपको उतना ही अधिक निश्चय होगा कि इनका परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है ग्रैार वे सब देवनागरी अंकों से लिए गए हैं।

इक्कीसवाँ चित्र (२१)



Picture-writing by red Indians on Lake Superior.

सज्जनो! आज के व्याख्यान का यह अन्तिम चित्र है। मैंने इस चित्र को दिखलाने की ज़रूरत इस लिये समझी है कि आज कल के वैज्ञानिक सज्जनों का विश्वास है (ग्रैार कोई बुद्धिपूर्वक हेतु इसके विपरीत भी नहीं दीखता जिससे हम उनके कथन का विश्वास न करें) कि प्राचीन समय में प्रायः सब देशों में Figure या Picture writing का नियम था। चीन ग्रैार अमेरिका में तो इसके अनेक चिह्न मिले हैं। भारतवर्ष में अभी तक बहुत प्रमाण नहीं मिले। उनमें से भी एक ऐसा पत्थर मिल गया है जिसमें एक गोपाल की कहानी, गैाग्रों का वर्णन, एक राज-कन्या को दुष्टों के हाथ से बचाने के लिये युद्ध करना आदि लिखे हैं। यह सारी कहानी चित्रों में दी हुई है ग्रैार मुझे मेरे मित्र श्रीयुत गैारीशंकर ग्रोझा (Curator Rajputana Museum अजमेर) ने समझाया था। यह पत्थर अजमेर में विद्यमान है। जहाँ तक मुझे पता मिला है यह ऐसा पत्थर है जिससे इस विषय का विद्यमान होना भी ज्ञात होता है। सारनाथ में भी ऐसे पत्थर उपस्थित हैं जिनमें जातकों का वर्णन ग्रैार बुद्ध के उपदेश चित्रों द्वारा मिलते हैं। अब मैं इस चित्र की कहानी बतलाता हूँ। अमेरिका के उत्तर में एक बड़ी झील है जिसे लेक सुपीरियर कहते हैं। इस झील के समीप एक पर्वत की कन्दरा में यह पत्थर मिला था। उस देश के वासियों का राजा जिसका नाम किंग फिशर था अपनी सेना को लेकर उस पर्वत की ग्रोर युद्ध करने आया। वह एक ऐसे दूर देश से आया था

जिसके आने में उसे पूरे तीन दिन लगे और एक ऐसे मार्ग से आया था जिसमें नदी पार करनी पड़ी थी। उसके संग इक्यावन मनुष्यों की सेना थी और वह सेनापति बन कर एक घोड़े पर चढ़ कर आया था, इत्यादि। अब यह सारी कहानी इसी चित्र से निकल सकती है। राजा का नाम किंग फिशर था। यह एक पक्षी का नाम भी है, जिसका चित्र ऊपर दिया गया है। वह घोड़े पर सवार था। वह नदी से किश्तियों द्वारा गुजरा। पाँच किश्तियों में जितने मनुष्य बैठे थे लकीरों से ज्ञात होगा कि उनकी संख्या पूरी ५१ थी। कछुआ नदी का उपलक्षण है। एक दिन तब पूरा होता है जब सूर्य्य उदय होकर अस्त हो। आकाश को गोल बना कर तीन गोल गोल गेंद सूर्य्य के आकार को बतलाते हैं। पर्वत में सेना तब ही पहुँची जब शत्रुसेना को परास्त कर दिया। जिस प्रकार से यह कहानी बनाई गई है, इसी प्रकार शिलाओं से आज कल वैज्ञानिक तत्ववेत्ता प्राचीन काल का इतिहास निकालते हैं और इस प्रकार की शिलाएं समय समय पर भारतवर्ष में बहुत मिलेंगी। मगर यह जानना अभी कठिन है कि जिस समय शिलाओं पर चित्र बनाए गए थे उस समय भारतवासियों की कोई लिपि न थी, या यह कि अन्य देशों के समान इन्हीं चित्रों से भारतवासियों ने अपनी लिपि की वर्णमाला का निर्माण किया।

सज्जनो! इन चित्रों से आप अपने प्राचीन सभ्यता के गौरव, अपनी प्रसिद्ध प्रसिद्ध भाषाओं की लिपियों के संमेलन को भली भाँति जान गए होंगे। यदि मेरे इस व्याख्यान से देवनागरी अक्षरों की लिपि में आप की श्रद्धा हो गई हो और आप को अपने देश के कल्याण के लिये इस लिपि को राष्ट्रीयता का रूप देना अभीष्ट प्रतीत होता हो तो मैं समझूँगा कि मेरा परिश्रम निष्फल नहीं गया।
